Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम संदेश

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

G. K. V.
LIB.
HARIDWAR

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080458

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080458

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080458

राम सन्देश

तमाम दुनियाँ है खेल मेरा, मैं खेल सब को खिला रहा हूँ।
किसी को बे खुद बना रहा हूँ, किसी को ग़म में रुला रहा हूँ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम समाचार

(१) नवम्बर मास के पत्र में लिखा गया था कि साधना कोर्स की सूचना दिसम्बर मास में दी जावेगी। साधना कोर्स का कार्य स्वामी जी पर निर्भर है क्योंकि वह दिसम्बर और जनवरी मास में आश्रम कार्यों में अधिक व्यस्त रहेंगे, इसलिए जनवरी मास के अन्तिम में सप्ताह या फरवरी मास के पहले सप्ताह में साधना कोर्स किया जावेगा। जो कि आश्रम पर या प्रयागराज (इलाहाबाद) में करने का विचार है। इसका पूर्ण कार्यक्रम जनवरी मास के राम सन्देश पत्रिका में पढ़ियेगा।

(२) आश्रम के बिलकुल सामने ५० गज की दूरी पर एक देहाती पाठशाला है वह मकान कुछ समय से खाली पड़ा था वह देहाती सरपंच (नम्बरदार) से आश्रम कार्यों के लिये माँग लिया गया है, ६०-७० रु० व्यय करके खिड़कियां दरवाजे और फर्श लगवा लिया है जो कि बाहर से आनेवाले राम भक्त स्त्री शरीरों के लिए है। देहात में कार्य क्षेत्र और परोपकार दृष्टि से पुरुष शरीर और स्त्री शरीर सब एक रूप हैं। केवल दोष दर्शी लोगों की टीका टिप्पणी (नुक्ताचीनी) और साधकों के पतन के भय से व्यवहार में कुछ अन्तर रक्खा गया है भोजन सत्संग, स्नान आदि के लिए दिन भर स्त्री शरीर आश्रम में ही रहते हैं, रात्री को स्त्री और पुरुष का पृथक् पृथक् निवास में वास करना ही उचित है साधना और सदाचार की दृष्टि से यह नियम अत्युत्तम है जो कि पुरुष, यात्री दोनों के लिये एक मकान है।

मन्त्री
श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम राजपुर
देहरादून

प्रश्नोत्तर

१ प्रश्न—हमारे पथ प्रदर्शक गुरु या देश नेता स्वयं ही अज्ञानपथ पर हैं या हम लोग विपरीत मार्ग पर जा रहे हैं, क्योंकि भारतवर्ष अन्य देशों से विज्ञान और अध्यात्म दृष्टि से बहुत पीछे है।

उत्तर—गुरु या देश नेता या तो परमात्मा की ओर से हैं, या परमात्मा का स्थूल शरीर है। देश वासियों के जैसे कर्म होते हैं वैसे ही उनको मार्ग भी दिखाया जाता है, जैसी हमारी भावना होती है वैसा ही हमारा देव भी होगा, अर्जुन को लड़ने की, दुर्योधन को मरने की, विदुर को तप करने की और राधा को प्रेम के सागर में निमग्न रहने की प्रेरणा करने वाला भगवान कृष्ण एक ही था। (Current) शक्ति एक ही है इसी से हीटर हम जलाते हैं, वस्तुओं को पकाते हैं कमरा गर्म करते हैं इसी से पंखा चलाते हैं, कमरा ठंडा करते हैं। Current एक शक्ति है हमारा जैसा भी Instrument होता है वैसी ही शक्ति कार्य करती है, परमात्मा तथा गुरुदेव एक शक्ति है अन्तःकरण रूपी (Instrument) इसे पृथक्-पृथक् रूप में दिखा रहा है।

२ प्रश्न—सबसे महान नीच कौन है ?

उत्तर—जो दूसरों के दोष या अवगुण देखता रहता है।

३ प्रश्न—आत्मदर्शन किसे होगा ?

उत्तर—जो अपनी वृत्ति या मन को आत्मस्वरूप बना लेगा।

४ प्रश्न—ईश्वर प्राप्ति का उत्तम साधन क्या है ?

उत्तर—सत्संग, सत्यासत्य का जहाँ निर्णय हो।

५ प्रश्न—वह कौनसा एक साधन है जिससे इस जन्म और पूर्व जन्म केमहापाप धुल जावें और मनुष्य निर्भय होकर धर्मराज का खाता रद्द करदे ?

उत्तर—आत्मदर्शी गुरु की सेवा और उनकी कृपा।

नोट—यदि आपके मन में कुछ संशय हो तो प्रश्न के रूप में लिख दिया करें। उनका उत्तर दिया जावेगा।

Printed by M. Ram Narayan Vedik Dharam Bhushan
at the "Hira Lal Printing Works," Aligarh. Except Title Cover

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

प्रथम इसे पढ़कर फिर आगे चलिये—

१—आप इस पत्र को साक्षात राम आज्ञा अनुभव करेंगे, तत्काल अन्तःकरण का मल दूर होगा, इसके मनन से विक्षेप दोष की निवृत्ति होगी, यदि इन सिद्धान्तों और युक्तियों को अपने आचरण से स्वीकार करेंगे तो आपकी हृद् भूमी में आत्म ज्ञान का सुन्दर पुष्प खिल उठेगा। यह निश्चय रूप से सत्य ही जानिये।

२—यह स्वाभाविक सिद्ध है कि प्रत्येक वनस्पति पौदा को बहारखज़ां शीत उष्ण का मुख देखना पड़ता है। यदि खाद और जल मिलता रहे और शीत उष्ण से कुछ दिन रक्षा की जावे तो पौदा इन ऋतुओं से सदैव सुरक्षित रहकर अपनी वास्तविक शक्तियों का सुखोपभोग करता अपनी सुन्दरता और फल से अनेक जीवों का प्राणाधार बनकर अपनी आयु को सन्मान पूर्वक परोपकार दृष्टि से व्यतीत करता है; यही हाल साधारण जीव का है जोकि संसार रूपी बन में दुख, सुख, यश, अपयश, अमीरी ग़रीबी, बीमारी और काल रूपी द्वंद्वों द्वारा आयु पर्यन्त स्वाभाविक ही पीड़ित और विक्षिप्त होता रहता है, यदि सत्य उपदेश रूपी जल विश्वास की खाद तथा आत्मदर्शी महात्मारूपी सूर्यप्रकाश हृदय भूमी को प्राप्त होता रहे तो जीव सभी द्वन्द्वों व तापों से रहित होकर अपने जीवन को सुख शान्ति से व्यतीत करने में समर्थ हो जाया करता है।

३—इस भयानक युग में चूल्हे, चौके और छूत छात जाति पाति की चार दीवारी में घिरे हुए धर्म और सम्प्रदाय हमको उन्नति के शिखर तक न पहुँचा सकेंगे, भौतिक साइन्स को परास्त कर देने वाला केवल आत्म बल ही है।

४—इस निश्चय के बल पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि अध्यात्म विद्या को समझना और समझाना प्रत्येक विद्वान् या सन्त का काम नहीं है। वर्तमान युग की संकट श्रृंखलाओं से मुक्त होने का उपाय केवल अद्वैत सिद्धान्त तथा अभेद दृष्टि वेदान्त दर्शन ही है। इस कारण उपनिषद् ज्ञान का समर्थन करने वाले ऋषि महर्षि अवतारों तथा वर्तमान समय के आत्मवेत्ता महानातमाओं के ही अमृत वचन व श्रुतियों द्वारा ज्ञान रूप से आप की सेवा का निश्चय करके यह पत्र आरम्भ किया गया है।

५—यह ज्ञान प्रदीप किसी व्यावहारिक दृष्टि से नहीं किन्तु राम इच्छा से आत्म ज्ञान के पतंगों की तड़प को अनुभव करते हुए प्रज्वलित किया गया है।

यद्यपि हमारा संकल्प सदैव ही निष्काम ही रहेगा, तदपि आप ३—४ रु० वार्षिक के बदले या आलस्य प्रमाद के कारण इन राम वचनों और आध्यात्मिक फ़िलासफ़ी से वंचित रह जावेंगे तो स्मरण रखिये और नोट कर लीजिये कि आपका हृदय अविद्या रूपिणी सर्पिणी के विष से मृतप्राय हो चुका है।

आओ! महा मन्त्र ओ३म् और राम उपदेशरूपी अमृत पान कर पुनः नव जीवन धारण कर प्रकृति के वास्तविक सौन्दर्य और सुख का उपभोग करें।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥
भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१. भूमिका	आरम्भ में
२. स्वामी राम का विचित्र जीवन ...	१
३. Heart of Rama (रामहृदय) ...	३
४. उपनिषद् ज्ञान	४
५. विश्वशान्ति और वेदान्त ...	६
६. श्री शंकराचार्य कृत विवेक चूड़ामणि ...	८
७. आराम राम सन्देश में है ...	१०
८. प्रश्नोत्तर ... कवर टाइटिल की पुश्त पर	
९. आश्रम समाचार ,, ,,	
१०. उर्दू लेख	१—८
११. अंग्रेजी लेख	१—४
१२. श्रीकृष्ण पञ्चक ... कवर टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर	
१३. हरि गीत ,, चौथे ,,	

सम्पादक—: हरिओ३म्, सेवक श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम, राजपुर देहरादून ।
सहायक सम्पादक:—पं० ऋषिराम भूतपूर्व प्रिंसीपल, ब्रह्म महाविद्यालय, लाहौर ।
वार्षिक मूल्य ३ रु०, मासिक प्रति ४ आना:-

नोट:—हम एक वर्ष तक आप की निष्काम सेवा करेंगे ।
इस का मूल्य भेजना तथा न भेजना आप की श्रद्धा पर निर्भर है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् , पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय , पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ओ३म्

जाग्रदादि त्रयोन्मुक्तं जाग्रदादिमयं तथा ।
ओङ्कारैक सुसंवेद्य यत्पदं तन्नमाम्यहम् ॥

राम सन्देश

प्रथम वर्ष | दिसम्बर १९५० | अङ्क २

"स्वामी राम का विचित्र जीवन"

स्वामी राम कहा करते थे, जीव प्रकृति मेरे हाथ का खिलौना है । सूर्य, चाँद, सितारे, मेरी ही आज्ञा का पालन कर रहे हैं। सप्तद्वीप, नौखण्ड पृथ्वी मेरे अद्भुत विस्तार का एक दृश्य है ।

मुझे स्वयं शंका उठी कि कहाँ गोस्वामी हीरालाल का पुत्र १८७३ ई० में जन्म लेने वाला और कहाँ सूर्य चाँद सितारे अनादि काल की प्राकृतिक शक्तियाँ।

मेरा शरीर १९४५ ई० में जब टिहरी गया तो उसी गोल कोठी में ठहरा जहाँ स्वामी राम रहते थे और अन्त में शरीर छोड़ा । मुझे दो वृद्ध शरीर मिले, उन्होंने बताया कि हम लोग नित्यप्रति राम के सत्संग पर आया करते थे । राम जब कहते कि आज बहुत गर्मी है ५-७ मिनट के पश्चात् निर्मल आकाश मेघों से ढक जाता था और शीतल वायु के साथ वर्षा होने लगती थी राम जब कभी कहते आज दालान में पत्ते अधिक बिखर गये हैं, तो एक वायु का झोंका आता और झाड़ू का काम कर जाता था।

राम के मुख से निकला हुआ कोई ऐसा वाक्य न होता था जिसमें ॐ का प्रयोग न होता हो, जब वे मौन रहते थे तो नामी में निवास करते थे जब बोलते थे तो नाम उनका आधार बना रहता था । वह कहा करते थे ॐ रूपी संजीवनी बूटी का जिसने सेवन कर लिया है वह एक विचित्र नशे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बे होश रहता है। काल निराश के भय से परे हो जाता है।

जब राम प्रोफ़ेसर थे तो गर्मियों की छुट्टियों में ३०–३५ शरीरों के साथ वह हरद्वार गये, संकल्प था कि कुछ समय वहाँ व्यतीत किया जाय उन शरीरों में ब्रह्म लीन आर. ऐस. नारायण स्वामी और गोस्वामी बृजलाल जी (यह रिटायर्ड तहसीलदार हैं और अभी इनका शरीर जीवित है) मंडली में थे, एक निर्जन और एकान्त स्थान में डेरा लगा दिया गया राम की आज्ञा हुई कि जो कुछ साथ लाये हो सब रुपया पैसा मेरे सामने ढेर करदो ऐसा ही हुआ तत्पश्चात् राम ने सब धन उठाकर गंगाजी के भेंट कर दिया, एक कहका लगाकर हँसने लगे फिर मौन हो गये एक मस्ति भरी आवाज में बोले अब देखें तुमको कहाँ से सहायता प्राप्त होती है राम सत्संग की अमर गंगा में गोते लगाने लगे और सब सत्संगी श्रोता गण भी प्रभावित हुए ब्रह्म भावना में तल्लीन थे, एक घंटा पश्चात् एक रईस वृद्ध आदमी हाथ में छड़ी नौकर सहित वहाँ पहुँचा राम की अद्भुत वाणी और प्रत्यक्ष तेज के दर्शन पाकर मुग्ध हुआ प्रार्थना करने लगा महाराज! जब तक आप और आपकी मंडली गंगावास करें भोजन दूध फल आदि का प्रवन्ध मेरी ओर से होगा राम ने एक दृष्टि से उसकी पवित्र भावना को स्वीकार किया डेढ़ दो मास रात दिन उसी का ही लंगर चल रहा था।

कालिज खुलने में दो तीन दिवस ही रह गये थे इसलिये राम ने मंडली सहित लाहौर के लिये प्रस्थान किया। रेलवे स्टेशन की ओर चलतो दिये परन्तु एक कौड़ी भी किसी के पास न थी, गोस्वामी बृजलाल जी जो कि कुमार अवस्था के थे राम के निकट जा कर कहने लगे महाराज! टिकटों के लिए रुपये कहां से लेंगे। राम के मुख से ॐ की ध्वनि निकली वायुमंडल गूँज उठा हँसकर बोले जिसने भोजन दिया वह लाहौर भी पहुँचायेगा। क्या देखते हैं कि एक नागा साधु तेजी से राम की ओर आ रहा है हाथ की थैली राम के चरणों पर रखकर दण्डवत्प्रणाम किया और नेत्रों में अश्रु धारा बहा कर प्रार्थना की महाराज! यह धन मुझे कोई दे गया है मैं क्या करूँगा कृपया आप इसे स्वीकार कीजिये राम ने उसकी श्रद्धांजलि को स्वीकार किया एक सत्संगी साथी को आज्ञा दी इस थैली को उठा लो स्टेशन पर जाकर सबके लिए लाहौर के टिकटें खरीद करो लाहौर पहुँच कर कुछ रुपये शेष बच गये थे। ये था राम का ईश्वर पर विश्वास और ऐसी थी राम पर ईश्वर की कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन श्री आर० ऐस० नारायण स्वामी द्वारा स्वामी राम के ग्रन्थों से चुने हुए

अमूल्य वचनामृत

Heart of Rama

Get every son of India stand for the service of the whole, seeing that the whole, of India in embodied in every son.

नं० १ रामहृदय—यह अनुभव करके कि सारा भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है। प्रत्येक भारत सुपूत को सम्पूर्ण भारत की सेवा में तत्पर रहना चाहिये।

व्याख्या—साधारण लोग धर्म से या देश भक्ति से इस कारण वंचित रह जाते हैं, वह यह विचार करते हैं कि मेरा अल्पज्ञ और एक देशीय शरीर सम्पूर्ण भारतवर्ष की कैसे सेवा कर सकता है अपनी निर्वलता और असमर्थता का ही अनुभव करते मृत्यु तक पहुँच जाते हैं। वह परोपकार और देशभक्ति का पुण्य लाभ न करते हुए स्वयं ही अपना पतन कर लेते हैं। इस तथ्य पर विचार करते हुए स्वामी राम कहते हैं कि प्रत्येक भारतवासी को सारा भारतवर्ष समझकर उससे व्यवहार करना चाहिये।

यदि आप अंश से प्रेम करेंगे और सहायता करेंगे तो एक दिन अवश्य अंशी तक पहुँचेंगे। जैसे जल की एक लहर में फेंका हुआ मिश्री का टुकड़ा सागर की सभी तरंगों में रम जाता है। इसी न्याय दृष्टि से एक व्यक्ति की यदि आप सहायता करेंगे तो पूर्ण देश आप द्वारा कृतकृत्य होगा। प्रत्येक नर नारी को उचित है कि वह तन, मन, धन से अपने निकट वासियों की सेवा करता हुआ भारत माता का सच्चा सुपूत बने।

One peranal and local Dharma must never be placed higher than the national Dharma. The keeping of Right prapor-tions only Secures felicity.

नं० २ राम हृदय—व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को किसी प्रकार राष्ट्रीय धर्म से ऊँचा स्थान न देना चाहिये। इनके यथोचित सामंजस से ही सुख मिल सकता है।

व्याख्या—देश की वृद्धि से ही प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक स्थानीय धर्म की उन्नति की सम्भावना की जाती है यदि राष्ट्रीय धर्म निर्दोष और अटल है तो राष्ट्र के सभी धर्मों को पुष्टि मिलती रहेगी। प्रत्येक शाखा को केन्द्र की सहायता के लिये ही तत्पर रहना चाहिये।

एक वार हस्त, मुख, नाक, जिह्वा आदिकों ने अपने अपने स्थान पर विचार किया कि कमाने, लाने और खाने का परिश्रम तो हम करें और उदर (पेट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विना प्रयत्न के ही चुप चाप सब कुछ हज़म कर जाता है, इस विचार के आधीन उदर के सभी विरोधी होगये, भीतर रस पहुँचाना बन्द कर दिया, अन्त में परिणाम यह हुआ कि समस्त शरीर के अंग निर्बल और निस्तेज होने लगे। अन्त में मस्तिष्क ने समझाया कि मूर्खो जो आप कमाते और खाते पीते हैं, वह उदर में पहुँचकर दिल और जिगर द्वारा रक्त तथा शक्ति बनकर तुमको ही शक्तिशाली और कार्य करने के योग्य बनाता है, सब अंगों ने उदर भगवान को नमस्कार किया और प्रायश्चित्त करते हुए फिर से अपने अपने धर्मों में निमग्न होगये।

प्यारे पाठकगण! अपने राष्ट्र तथा आत्म अनुभव और शान्ति की ओर ले जानेवाली धार्मिक शक्तियाँ का यथाशक्ति अधिक से अधिक सन्मान कीजिये और इनकी वृद्धि के लिये हर प्रकार की बलि देने के लिये तत्पर रहिये! यही सर्वोच्च श्रेष्ठ धर्म है।

उपनिषद् ज्ञान

लेखक—पं० ऋषिरामजी भूतपूर्व प्रिंसीपल दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय लाहौर व्याख्याता भारतीय संस्कृति फिलासफी तथा धर्म

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषे च्छतꣳ समाः।
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अन्वयार्थ=कर्माणि=शास्त्र नियत कर्मोंको।
कुर्वन्=(ईश्वर पूजार्थ) करते हुए।
एव=ही।
इह=इस जगत् में।
शतंसमाः=सौ वर्षों तक।
जिजीविषेत्=जीने की इच्छा करनी चाहिये।
एवम्=इस प्रकार (त्याग भाव से परमेश्वर के लिये)।
कर्म=किये जाने वाले कर्म।
त्वयि=तुझ।
नरे=मनुष्य में।
न लिप्यते=लिप्त नहीं होंगे।
इतः=इससे (भिन्न)।
अन्यथा=अन्य कोई प्रकार अर्थात् मार्ग।
न अस्ति=नहीं है जिससे कि मनुष्य कर्म से मुक्त हो सके।

शब्दार्थ—करता हुआ ही कर्मों को जीने की इच्छा करे सौ वर्ष इस प्रकार तुझ में इससे भिन्न कोई और उपाय नहीं, नर में कर्म चिपटेंगे नहीं।

ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र में इस संसार तथा जीवन का आधार निश्चित किया गया कि एक विश्वात्मा इस सब में ओत प्रोत है वही स्वामी और शासन करने वाला है। इसलिये स्वामी बनकर नहीं प्रत्युत त्याग से भोग करो और लालच मत करो। अब इस आधार के साथ तुम्हें काम करने की स्वतन्त्रता है अन्यथा नहीं। इस मन्त्र में उपदेश दिया गया कि सौ वर्ष जीने की इच्छा तथा यत्न करो, परन्तु कर्तव्य कर्मों को करते हुए ही आप इस संसार में स्वतन्त्र रहोगे नहीं तो यहाँ बँध जाओगे।

उस आत्मा का नियम ही विश्वइच्छा के रूप में काम कर रहा है और वह इच्छा सब का कल्याण करनेवाली है, मैं भी इस विश्व का एक अंग हूँ पृथक् नहीं। इसलिये मेरा कल्याण भी उस विश्वइच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार चलने में है। यही सच्ची स्वतंत्रता है। जिस कर्म मार्गसे मुझे दुःख हो अथवा बन्धन हो जावे स्वतन्त्रता कहलाने के योग्य नहीं। जब एक व्यक्ति अपनी दिनचर्य्या को नियमित करता है समय पर सोना समय पर उठना तथा नियत समय भोजन तथा काम करता है तो वह सुखी होता है। उसको आरोग्य प्राप्त होता है। आरोग्य के साथ लम्बी आयु मिलती है और मन सदा प्रसन्न रहता है, क्यों कि इस नियमित जीवन में सच्ची स्वतन्त्रता है। परन्तु जब एक आदमी कहता है कि मैं ऐसा नियम क्यों करूँ, मैं जब मर्जी हो तब खाऊँ तथा अपनी उच्छृंखल इच्छा के अनुसार ही सोना और जागना करूँ तो थोड़े दिन में ही वह रोग ग्रस्त हो जावेगा और वह अपने जीवन से तंग हो जावेगा। इसलिये सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये स्वयं कुछ बन्धन लगाने होते हैं। सितार की तारें यदि ढीली करदी जावें। तो एक प्रकार से उन को स्वतन्त्रता दी गई है परन्तु अब उनमें से मधुर स्वर नहीं निकलता। अधिक खींच दी जावें तो भी स्वर नहीं निकलता। ठीक यही हाल मनुष्य जीवन का है। यदि मन, इन्द्रियों और शरीर को खुला छोड़ दिया जावे तो थोड़े काल में ही जीवन का आनन्द जाता रहेगा। इनको संयम में रखना अत्यन्तावश्यक है इसलिये इस मन्त्र में उपदेश दिया गया कि कर्तव्य कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। कर्तव्य कर्म उस विश्व इच्छा के अनुसार चलना है। रेलगाड़ी को पटरी पर तो दौड़ने की स्वतन्त्रता है परन्तु यदि उसने पटरी को छोड़कर दौड़ना आरम्भ किया तो शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होना है। मनुष्य के लिये ईश्वरेच्छा ही पटरी हैं जब कोई व्यक्ति परिवार या जाति स्वार्थान्ध होकर अभिमान वश अपना बल प्राप्त करके इस मार्ग को छोड़कर अपनी मनमानी करते हैं तो निश्चय ही देर में या शीघ्र पतन की ओर जाते हैं इतिहास इन्हीं घटनाओं से भरा हुआ है। बड़े २ साम्राज्य इसी कारण नाश हो जाते हैं। यह कर्तव्य कर्म क्या हैं सब सत् शास्त्र इनका उपदेश देते हैं। अपनी स्वयं आतमा भी इनका निर्देश करती हैं। सत्संग का मुख्य उद्देश्य यही है कि हमें महापुरुषों के सत्संग से अपने करने योग्य कर्मों का ज्ञान प्राप्त हो। यह ज्ञान कठिन है। बड़े २ लिखे पढ़े भी किसी २ स्थिति अथवा सन्देह में पड़ जाते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिये। उनकी अल्प बुद्धि निश्चय नहीं कर सकती उस समय शास्त्र तथा सदाचारी मनुष्यों की आवश्यक्ता प्रतीत होती है कि वह हमें मार्ग दिखावें कि किसी विशेष स्थिति में हमारा कर्तव्य क्या है।

कर्मों का चिपटना क्या है ? जब कोई कर्म हमारे आन्तरिक सौन्दर्य, माधुर्य तथा नेकी को प्रगट न करे लोभ मोह या अभ्यास वश वह मशीन के समान चल रहा हो और जीवन का कोई यथार्थ प्रयोजन न सिद्ध कर रहा हो तो समझो वह हमें चिपट गया है। एक आदमी शराब को पीना अपने लिये हानिकारक समझ रहा है परन्तु आदत इतनी जबरदस्त होगई है कि वह छोड़ नहीं सकता। एक सफल वकील या व्यापारी का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है उसको विश्राम की आवश्यकता है परन्तु वह लोभ वश विश्राम नहीं लेता और अकाल मृत्यु का ग्रास बनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस मन्त्र के अनुसार मनुष्य की साधारण आयु १०० वर्ष कही है उससे पूर्व मरना किसी दोष का कारण है। प्राय: जानवरों की आयु भी नियत है और वह उस आयु के प्रथम चतुर्थ भाग की समाप्ति पर यौवन को प्राप्त करते हैं बैल की आयु यदि २० वर्ष की है तो ५ वर्ष की आयु में वह जवान हो जाता है मनुष्य की सौ वर्ष की आयु है वह २५ वर्षमें यौवन अवस्था को प्राप्त होता है। इसलिये हमें उपनिषद् के अनुसार १०० वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिये यदि हमारी आयु कम है तो हमारे रहन सहन का दोष है हमारे देश में औसतन आयु २७ वर्ष है परन्तु योरुप और अमरीका में यह औसतआयु ५० वर्ष से ऊपर है क्योंकि वह स्वास्थ्य के नियमों का अधिक पालन करते हैं।

मनुष्य का स्वभाव स्वतन्त्रताप्रिय है जब वह लोभ मोह काम क्रोध वश होकर कर्तव्य कर्मों को छोड़कर निषिद्ध कर्मों को करता है वह बन्धन में पड़ जाता है यह कामना ही बन्धन है। अन्यथा वह इस जीवन में ही मुक्ति का आनन्द ले सकता है। इसके लिये कर्तव्य कर्म ही एक मात्र साधन है।

विश्वशान्ति और वेदान्त

लेखक—एक राम भक्त

आज समस्त जगत् दुःख की भयंकर ज्वाला में भस्मीभूत होने के लिये धधक रहा है, चारों ओर जिधर भी हम देखते हैं दुःख और विनाश के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। मानव अपने स्वरूप को भूलकर दानव बन बैठा, दूसरे के अस्तित्व को मिटाकर अपना ही अधिकार सारे संसार में देखने का स्वप्न देखा करता है। अपने से दुर्बलों की स्वतन्त्रता छीनकर अपनी भोग लिप्सा का विस्तार तथा दूसरों का संहार कर आधिभौतिक सुखों को ही सुख का साधन मार्ग समझ रक्खा है जिसके परिणाम स्वरूप समस्त मानव जगत् भौतिक दुःखों के दावानल में भस्म हो रहा है।

कुछ विचार करने पर मालूम होता है कि आज का संसार अपनी अद्वैतभावना छोड़कर अर्थात् समानता भूलकर द्वैतवादी बन गया है। जहाँ द्वैतभावना है वेदान्त उसे दुःख के सिवाय और कुछ नहीं देखता। क्योंकि द्वैत में ही दुःख प्रतीत होता है। जहाँ द्वैत भावना अपना कार्य करती है वहीं पर अनेकानेक दुःख भी रहा करते हैं। या यों समझना उचित होगा कि मानव मात्र के सम्पूर्ण दुःखों की जननी द्वैत भावना ही है। जब तक यह विषम भावना जगत् में अपना नृत्य दिखाती रहेगी कभी भी मनुष्य को सुख प्राप्ति न हो सकेगी।

हमने इस विशाल सर्वात्म भावना "सर्वं वासुदेव मयंजगत्" "समः सर्वेशु भूतेशु" "ईशावास्य मिदंसर्वम्" "सर्वंखल्विदंब्रह्म" इस पवित्र सर्वात्म भावना का तिरस्कार कर अपने अस्तित्व को माया से सम्बन्धित होने के कारण एक छोटे से परिवार को अपना मानकर उसके पालन पोषण के लिये दूसरों का शोषण करते हैं। जितना प्रेम हम अपने परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रेमी जनों से करते हैं उतना दूसरों से नहीं। जब कि वेदान्त हमें "सर्वेभवन्तु सुखिनः" माकश्चिद्दुःख भाक्भवेत् की शिक्षा देता है वहाँ हम उनके लिये कल्याण की भावना भी नहीं रख सकते। किसी में आत्म भावना और किसी में परात्म भावना कार्य करती है यह सब क्यों? आत्मा ने अपने सच्चे स्वरूप को भुलाकर मायावेष्ठित जीव मान लिया है बस यही दुःख का प्रधान कारण है।

इसी सर्वात्म भावना को भक्ति शिरोमणि प्रह्लाद ने जब दृढ़ कर लिया तो उन्हें सर्प. विच्छू, अग्नि आदि का भय न रहा, उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इन बड़े भयंकर विष वाले सर्प और विच्छुओं में तथा शरीर को भस्म कर देने वाले अग्निदेव में भी तेरी ही सत्ता कार्य करती है। तेरा ही प्रकाश अग्नि में प्रकाशित हो रहा है, तू ही उग्र विष धारण करने वाले नाग के स्वरूप में दिखाई दे रहा है। मत्तः परतरं नान्यत्—तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। फिर भय किससे जबकि सब कुछ तेरा ही स्वरूप है, तुझ से भिन्न कुछ भी नहीं स्वामी रामतीर्थ जैसे महात्मा भी बन, पर्वत, नदी, चन्द्र, सूर्य में अपनी ही झलक देखते थे, "जिधर देखता हूँ उधर तु ही तू एक तू है" अपनी मस्ति में अपने से भिन्न कुछ भी दिखाई न दे रहा था। वे ब्रह्ममय थे अहं ब्रह्माऽस्मि की दृढ़ भावना थी। संसार के लिये उनका यह सदुपदेश था कि जब तक जीव एक दूसरे की ओर आकर्षित नहीं होते तब तक सांसारिक झगड़ों तथा वाद विवादों का अन्त होना प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। नियमाकर्षण को एक मात्र वेदान्त ही सिद्ध कर सकता है, इस कारण राष्ट्र वासियों के मन बुद्धि में जब तक एक ही सार वस्तु का प्रकाश न होने लगे, तब तक परस्पर के विरोध मिटकर शान्ति का राज्य स्थापित होना असंभव है।

यही घोषणा वेदान्त के स्वरूप में अनादि काल से ऋषि महर्षि करते चले आते हैं जिसका विवेचन इस शताद्वि के सर्वोच्च फ़िलास्फ़र स्वामी राम ने पश्चिमीय देशों में भी पहुँचाकर केवल भारत ही नहीं विश्व के लिये विश्व के सन्मुख शान्ति और सुख का उपाय रक्खा।

मानव ने अपने लक्ष्य प्राप्ति का साधन श्रेय अर्थात् सत्य मार्ग को छोड़कर प्रेय मार्ग को अपनाया है अर्थात् आज की पश्चिमीय सभ्यता और विलासता को ही सुख का साधन मान लिया है। भोग लिप्सा पूर्ण करने के लिये बड़े २ इन्द्र भवनों की सृष्टि दिखाई देती है। फिर भी मानव जगत में शान्ति व सन्तोष नहीं द्वैत भावना को लेकर ही दूसरों के विनाश के लिये परमाणु बम तक की सृष्टि हुई फिर भी मानव सन्तुष्ट नहीं। "न जातु कामः कामानांमुप भोगेन शाम्यति। हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवा भिवर्धते॥ कभी भी मानव की तृप्ति विषय भोगों से न होगी और न कभी शान्ति ही मिलेगी। इसलिये जब तक संसार के प्राणि मात्र में आपकी आत्म-भावना न होगी और वेदान्त के शान्तिमय छत्र के नीचे विश्राम करने के लिये पारस्परिक विरोधी भावना का परित्याग कर एक होकर नहीं आजाते। संसार में शान्ति का राज्य स्थापित नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीशंकराचार्यकृत विवेक चूड़ामणि

(ले० पं० वासुदेव उपाध्याय भालू बिजनौर निवासी)

श्री जगद्गुरु परम पूज्य शंकराचार्य भगवान का नाम संसार में हिन्दु (आर्य) जाति के लिये किसी से छिपा नहीं है। शंकराचार्य भगवान का अद्वैतवाद उस पर किए सूत्र भाष्य, उपनिषद् भाष्य और गीता-भाष्य आदि अमेरिका, इंग्लैंड, फ्राँस, जर्मनी आदि पश्चिमीय विद्वानों के भी हृदय में विशेष स्थान रखता है।

शंकराचार्य जैसा दर्शन शास्त्रों का ज्ञाता आज तक संसार में नहीं मिल सका, उन्होंने बौद्धों के प्रभाव को निस्तेज कर चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये यह जगत प्रसिद्ध है। उन्होंने बद्रिकाश्रम में बैठकर १६ भाष्यों का निर्माण किया, जो कि संसार में अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित कर चुके हैं।

यह उन्हीं का लिखा हुआ "विवेक चूड़ामणि" नामक ग्रन्थ है, जिसमें सब भाष्यों का सारॉंश लेकर उत्तम मुमुक्षु तथा जिज्ञासुओं के लिये उपदेश किया गया है, अतः पाठकों के मनोरंजनार्थ तथा आध्यात्मिक शिक्षा के निमित्त इस ग्रन्थ के अनुवाद को क्रम से रामसन्देश पत्रिका में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि जिज्ञासुजन इससे अच्छा लाभ उठावेंगे।

——:०:——

हरिः ओ३म्

संगलाचरणम्

सर्व वेदान्त सिद्धान्तगोचरं तमगोचरम्। गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुंप्रणतोऽस्म्यहम् ॥१॥

भाषार्थः—जो अज्ञेय होकर भी सर्व वेदान्तों के वाक्यों से जाने जाते हैं, उन परमानन्द स्वरूप सद्गुरु देव श्री गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

अन्वयः—अगोचरं=जो दृष्टि का विषय नहीं है अर्थात् अज्ञेय है। सर्ववेदान्त = सबवेदान्तके। सिद्धान्तगोचरं = सिद्धान्तोंद्वारा जानने योग्य। तम् = उस परमानन्दं = अतिशय आनन्द स्वरूप। सद्गुरुं = सद्गुरुदेव। गोविन्दं = गोविन्द इन्द्रियों के प्रकाशक भगवान को। अहम् =मैं। प्रणतोऽस्मि= प्रणाम करता हूँ।

इन्द्रियों का प्रकाशक या आधारस्वरूप जैसी देव परमात्मा में भक्ति हो उतने ही पवित्र भाव से सद्गुरुदेव के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति होने पर जिज्ञासु के हृदय में वेद सिद्धान्तों का पूर्ण प्रकाश हो सकता है।

व्याख्याः—सम्पूर्ण उपनिषद् जिसका एक स्वर से निरूपण करते हैं, तथा उपनिषद् वेद्य होने पर भी जो वस्तुतः किसी भी प्रमाण का विषय नहीं है, जो सर्वोत्तम आनन्द और सत्यस्वरूप हैं (अर्थात् सर्वदा नित्य हैं) जो नाम से गोविन्द हैं (श्री शंकराचार्य के सद्गुरु हैं। और कार्य से भी गोविन्द हैं (इन्द्रियों के नियामक हैं) उन सद्गुरुदेव जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य यह है कि सद्गुरु को साक्षात् ईश्वर बुद्धि से उपासना करना श्रुतियों में वर्णन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

यह श्वेताश्वतर उपनिषद् का वचन है

अर्थात् जिस साधक की परमात्मदेव में जैसी परम भक्ति होती है उसी प्रकार अपने सद्गुरु में भी श्रद्धा तथा भक्ति होती है। उसी महापुरुष के हृदय में उपदेश किए हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

ब्रह्म निष्ठा का महत्त्व

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता।
तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम्॥
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मनासं-
स्थितिर्मुक्तिर्नो शतकोटिजन्मसु कृतः पुण्यैर्विना
लभ्यते॥२॥

अन्वयार्थः—जन्तूनां = जीवों को = नरजन्म = मनुष्य जन्म = दुर्लभम् = कठिनता से प्राप्तव्य है अतः = इससे भी = पुंस्त्वं = पुरुषत्व अधिक उत्तम है = ततो = उस पुरुष शरीर से भी = विप्रता = ब्राह्मण जन्म दुर्लभ है = तस्माद् = उस ब्राह्मण तन से भी = वैदिक धर्म मार्गपरता = वेद प्रदर्शित मार्ग में रत होना अर्थात् वेद विहित यज्ञादि करने वाला श्रेष्ठ है = अस्मात् = इस से = विद्वत्त्वं = विद्वत्ता परं = उत्तम है (यह सब कुछ होने पर भी) आत्मा-नात्म विवेचनं = आत्मा और अनात्मा का विवेक = स्वनुभवो सम्यक् अनुभव = ब्रह्मात्मना ब्रह्मत्व भाव में = संस्थिति अच्छी प्रकार स्थिति मुक्तिः = यह प्रतिपादित मुक्ति = शतकोटिजन्मसु = सैकड़ों करोड़ जन्मों के किये गये = पुण्यैः = शुभकर्मों के = विना = अतिरिक्त = न = नहीं = लभ्यते = प्राप्त होती है।

भावार्थः—जीवों को प्रथम तो नर जन्म ही दुर्लभ है। उससे भी पुरुषत्व और उससे भी ब्राह्मणत्व का मिलना कठिन है, ब्राह्मण होने पर भी वैदिक धर्म का अनुगामी होना, और उससे भी विद्वत्ता का होना कठिन है, यह सब कुछ होने पर भी आत्मा और अनात्मा का विवेक, सम्यक् अनुभव ब्रह्मात्म भाव में स्थिति और मुक्ति ये तो करोड़ों जन्मों में किये हुए शुभकर्मों के परिपाक के विना प्राप्त हो ही नहीं सकते।

व्याख्याः—इस दूसरे श्लोक में ब्रह्म निष्ठा की महानता का वर्णन किया गया है, सर्व प्रथम तो पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि योनियों में यह मनुष्य शरीर इस कारण श्रेष्ठ है कि दूसरे जीवों को उतने सुखोपभोग तथा इन्द्रियों की सामर्थ्य प्राप्त नहीं है, जितनी कि मनुष्य शरीर में है। नारी की अपेक्षा पुरुष श्रेष्ठ है, क्योंकि नारी को गर्भ धारण तथा रजस्वला होना इत्यादि अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। वे पुरुष शरीर में नहीं हैं, इसलिये पुरुष, स्त्री से उत्तम है।

पुरुषों में भी ब्राह्मण शरीर श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मण शरीर में इतनी उत्तमता है कि शूद्रादिकों का यज्ञोपवीतादि वेद विहित संस्कार नहीं होता, तथा क्षत्रिय, वैश्य, कर्मकाण्ड कर तो सकते हैं परन्तु यज्ञादि कर्म नहीं करा सकते, ब्राह्मण को कर्मकाण्ड करने और कराने का अधिकार प्राप्त है, इसलिये ब्राह्मण शरीर अन्य क्षत्रियादि शरीरों से श्रेष्ठ है, ब्राह्मण शरीर में भी वह उत्तम है जो वेदोक्त धर्म का पालन करता है, अर्थात् बहुत से ब्राह्मण वेद विहित अग्नि होत्रादि कर्म नहीं कर पाते, अतः वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादित कर्म (निष्काम = सकाम) करने वाला ब्राह्मण शरीर ही श्रेष्ठ माना गया है, इस प्रकार के ब्राह्मणों में भी वह अधिक उत्तम है जो कि विद्वान भी हो, विद्वान ब्राह्मणों में भी वह अधिक उत्तम है जो कि आत्मा अनात्मा पर विचार करने की योग्यता रखता हो, आत्मा-अनात्मा (सदसद्वस्तु) का विचार करने वाले ब्राह्मणों में वह ब्राह्मण श्रेष्ठ है जो आत्म स्वरूप में हो क्योंकि आत्म स्वरूप में स्थत रहने वाला अनात्म शरीर से अपने को भिन्न समझता है अर्थात् दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानवाला ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों से उत्तम है। परन्तु यह स्वस्वरूपावस्थानरूप मुक्तिसुख लाखों करोड़ों जन्मों के पुण्यों के बिना नहीं मिल सकती है।

अतः वही ब्राह्मण सर्व श्रेष्ठ है जो इस जीवन में ही आत्म साक्षात्कार का लाभ प्राप्त कर चुका है!

आराम राम के सन्देश में है

१—अपनी दृष्टि को एकाग्र करो, भविष्य की ओर तुम क्या होना चाहते हो? तुम्हारा इष्ट क्या है? इस विश्वास की दृढ़ता में तुम्हारे यथार्थ स्वरूप का परिचय छिपा है।

२—पुरातन जीवन पूर्व जन्म-की बात सोचने विचारने की कोई आवश्यकता नहीं, भुलादो उस सबको, तुम क्या थे, इसके द्वारा तुम्हारे अन्तरात्मा का परिमाप नहीं किया जायेगा।

३—कर्म अपने आप में तनिक भी दिव्य अथवा अदिव्य नहीं हाता, कर्म दिव्य अथवा अदिव्य हो उठता है, कर्म कर्ता की अन्तर भावना के प्रभाव से।

४—जिस कर्म की नींव कर्म कर्ता की निष्कामता अनासक्ति, निर्ममत्व, समर्पण पर होती है वही दिव्य कर्म बन जाता है, जिसे अर्जुन ने आरम्भ में घोर कर्म मानकर त्याग करना चाहा था, उसको अन्त में भगवत् कर्म के रूप में ग्रहण करना पड़ा।

५—समस्त व्याधियों की महा औषधि है स्थिरता और शान्ति।

६—सत्य आपको सीमित नहीं किन्तु असीम विश्व के साथ अभेद रूप से देखना चाहता है।

७—कर्तव्य धर्म तथा आत्मा की ओर निर्भय होकर आगे ही आगे बढ़ना यही सत्य पर चलना है।

८—रिश्वतखोरी, ब्लेक मारकीट, (चोर बाजार) ये केवल अविद्या के ही कार्य हैं। स्वतन्त्रता के पाँव में जंजीर लगाकर जकड़ देने वाले ये वही लोग हैं जो ईश्वरीय ज्ञान से अनभिज्ञ हैं।

९—जिस जाति या देश ने शरीर और इसके सुख भोगों को ही अपना लक्ष्य बनाया था या बना लिया है। उनके सर्वनाश और पतन को ब्रह्मा भी नहीं रोक सकता। यह अटल और अमिट सिद्धान्त है।

१०—संसार एक स्वप्न है जो अज्ञान की निद्रा में सत्य भासता है और ज्ञान काल में असत्य हो जाता है।

११—परोपकार और आत्म दर्शन सदैव एक दूसरे के संग संग रहते हैं। यदि इनकी प्राप्ति में तुझे महान् दुःखों का सामना करना पड़ता है। तो ईश्वर तेरे पक्ष में है ये उच्च भाग्य के लक्षण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

॥ तेरा ही अन्तरात्मा हरि ओ३म् ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Foreword

(1) When you come to realise that these words are an interpretation of the commands of Rama, your Heart will be cleansed ; a concentrated contemplation thereof will calm the vacillations of the Mind. If you adapt your mode of life in conformity with these principles and formulae, the Bud of Atma Jnan (Divine knowledge) in your heart will blossom forth into a fragrant flower.

(2) It is the law of Nature that a plant has to face & pass through the vicissitudes of weather summer, winter, autumn and spring. If it is duly watered and properly nourished with manure, and protected from the extremes of heat & cold, its inherent vitality displays its natural characteristics and the plant gives nourishment and life to innumerable living beings and ends its span of life in complete usefulness. Similar is the case of the Individual Soul. In the jungle of the Universe, the Individual comes across Pleasure and Pain, Glamour and Ignominy, Affluence and Poverty, Disease and Death, which make him happy and miserable respectively. If the field of his heart receives light from the rays of the Sun of some Elevated Soul, and is watered by the streams of of Truth, and manured by Faith, the Soul freed from the pairs of Opposites attains its full stature and enjoys the Peace and Bliss which is its birthright.

(3) In this Age of gloom and terror, encircled by the walls of untouchability, Communalism and Clannishness the innumerable Divisions of Society and Dharma are obstacles in our rise to the apex of Development. The only weapon to fight and allay the fear generated by the instruments of materialistlic science is Soul Force.

(4) With this back ground, it is my firm conviction that it is not every man of letters or Sadhu who has the proper grasp of Adhyatmic (Spiritual) knowledge, nor can every man make others understand this deep philosophy. To cast off the fetters of ignorance in the present times, the principles of Advait Vedanta and one Universal Self have to be understood and applied. Therefore, after sitting at the feet of the Masters of Upanishad Gyan, and imbibing the truth enunciated by Maharishis and Avatars, the writer of these words has made a bid for serving you through this Paper.

(5) This lamp of Jnan has not been lit with any ulterior motive, but motivated by Rama's will and in order to satisfy the hunger of the Seekers of Spiritual knowledge, this step has been taken. Our endeavour will be to serve you selflessly, but Remember, that if due to slothfulness or idleness you deprive yourself of the benefits of Rama's

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

words and gems of Adhyatmic philosophy to save a petty sum of 3/- or 4/- yearly, the Demon of Ignorance will cut away at the vitals of your life.

Let us, therefore, recite the supreme lord Om and drink the nectar of Rama's message, and thereby rejuvenate our lives and enjoy the Beauty and Bliss of the universe in full measure.

Om Shanti, Shanti, Shanti.

Your Own Self

Hari Om

PEACE AND BLISS ARE EMBODIED

IN

RAMA SANDESH

(Message of Rama)

1. Fix your vision onto the Future. What do you want to become ? What is your Goal ? The picture of your true self is lying hidden beneath the firmness of your Faith.
2. There is no call to ponder over your past lives. Forget all this Past. Your Inner Self will not be weighed according to this measure.
3. Karmas (Actions) in themselves are neither good nor bad. Their nobility or evilness depends upon the inner structure of the Doer's mind.
4. If the Doer (karta) is free from selfishness, attachment and egoism, the Act becomes noble. At the commencement of the battle, Arjuna shied from fighting, considering war to be an evil, but in the end resorted to it, when he realised it to be his Duty.
5. The supreme remedy for all maladies is steadfastness and shanti (equanimity).
6. Truth breaks the bounds of narrowness and makes you one with the universal whole and the Infinite.
7. To do your Duty fearlessly and march onwards towards Dharma & Atma is another name for treading the path of Virtue & Truth.
8. Avidya (Ignorance) is the cause which actuates Bribery and Black Marketting. Such persons devoid of the blessing of Divine knowledge are forging shackles around the feet of our Freedom.
9. A Nation or Community whose ultimate Aim is the gratification of personal & materialistic desires only is heading straight towards destruction. No power on earth can prevent the catastrophe. It is the unalterable law of Nature.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. The world is a Dream, which appears to be Reality while one is steeped in the sleep of Ignorance. It disappears when one wakes into the consciousness of Gyan.

11. Selfless service of Humanity and Realisation of self exist side by side. While in their pursuit you may have to encounter innumerable troubles, rest assured, God is on your side. Such obstacles are mere indications that the day of your good fortune is dawning.

Your Self
HARI OM.

The Lord's Pledge.

By L Sewa Ram Makhija B.A., LL.B., (Gold Medallist), Advocate Delhi.

The entire human race is yearning for peace, happiness, freedom and fullness. This is also the aim and object of human life. Salvation is its other name; it is also called yoga, *i.e* the merger of the Atma in Parmatma. In the Gita, Yoga has also been described as दुःख सयोग वियागः *i.e.* to be away from the contact of pain. The means to attain this Yoga is the fixation of one's vision on God with an all-embracing universal Love. All the religions and creeds which have appeared on the face of the earth from time to time have had this very goal in view. In my opinion, the foundation of all these Faiths is based on the teachings and philosophy of the Gita, as all these religions came into existance after the Mahabharata. The teachings and philosophy of the Gita are universal. This is the only book with which all faiths and communities can identify, themselves, and under whose banner all nations can come together.

The Gita shows the best way of promoting good will and unmoving mutual hatred. It lights the path of erring humanity to peace and happiness out of the darkness of materialism and illusion. Marching on the path of Duty, the reader is encouraged at every step and guided with true advice. The last sloka of the Gita describes the majesty of the scripture.

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मय ॥

Translation.

Wherever, there is Krishna, the Lord of Yoga and Arjuna, the mighty warrior, I declare with conviction that prosperity, victory, happiness, firm policy, and righteousness abound there. It means that when you meet a teacher of the calibre of Lord Krishna, and a pupil like Arjuna, and the subject taught is the Jnan embodied in the Gita, all these blessings are bound to be there.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In 1930, Mahatma Gandhi paraphrased this sloka as under:—I have faith in the righteousness of our cause and the purity of our weapons. Where the means are pure, there God uudoubtedly is present with his blessings, and where the two combine, there, defeat is an impossibility.

Swami Rama in his book "Rama upasana" writes : "In the middle of the Gita, the sloka which holds the 2 beams of the balance even on either side, with God as the centre of Gravity is:—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषाँ नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

Bhagwat Gita Adhyaya 9 Sloka 22.

"This pledge of the Lord will never come untrue, even if fire begins to shoot down words instead of the flame always rising upwards, and even if the Sun rises in the West and sets in the East.

Friend, having attained human existence, it is a great shame that you should be beset with grief and perplexity. This is the lot of only those people, whose parents die. Your Rama is alive for all time. Why should you sorrow? See the fun. Renounce all desires and wants. Give up worrying about your Body. Don't have any expectations from any one. Keep your eye fixed on Atma. All the gods will knuckle under to you.

"When your vision is centred in Atma, disease, pain and death dare not come near. The self becomes omniscient and attains everything.

The translation of the Sloka is:—"Ever thinking of Me alone, and of no one else, My devotees worship Me. To those ever harmonious, I bring full security".

Once you Surrender yourself completely unto Him, the responsibility thereafter fairly and squarely rests upon His shoulders.

The Bible puts it in this way:—"Seek ye first the kingdom of Lord and His righteousness, and all these things shall be added unto you".

Radha Swami Dayal says in his *Sar Bachan*. "Recite the name of the Guru. Enshrine the Guru in your heart. Have faith in the Guru, and have no regrets or anxiety".

Alexander pope in his "Universal Prayer" writes : 'Let this day be bread and peace my lot, All else beneath the Sun, Thou knowest if best bestowed or not, But let THY will be done".

Ever thinking of Me alone, of no one else my devotee, worship Me. To those ever-harmonious I bring full security.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اور اِستری شریر سب ایک رُوپ ہیں۔ صرف دوشس ورشٹی لوگوں کی نکتہ چینی اور سادھکوں کے پتن (گِراوٹ) کے بھے سے بوہار میں کچھ فرق رکھا گیا ہے۔ بھوجن۔ ست سنگ۔ اشنان وغیرہ کے لئے دن بھر اِستری شریر آشرم میں ہی رہتے ہیں۔ راتری کو اِستری اور پُرش کا الگ الگ مکان میں رہنا ہی اُچت ہے۔ سادھنا اور سداچار کی درشٹی سے یہ نیم اُتّم ہے۔ جو کہ پُرش یا استری دونوں کے لئے ایک سمان ہے۔

سیکریٹری

شری رام تیرتھ مشن آشرم

راج پور ڈیرہ دون

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اُتّر - ست سنگ - ستیہ استیہ کا جہاں نرنے ہو۔

پرشن ۵ - وہ کون سا ایک سادھن ہے۔ جس سے اس جنم اور پورو جنم کے مہاں پاپ ڈھل جاویں۔ اور منش نربھے ہو کر دھرم راج کا کھاتہ ردّ کر دے۔

اتّر - آتم درشی گورو کی سیوا اور اُن کی کرپا۔

(نوٹ) اگر آپ کے من میں کوئی شک شبہات ہوں۔ تو پرشن کے روپ میں لکھ دیا کریں۔ اُن کا جواب دیا جاوے گا۔

آشرم سماچار

(۱) ماہ نومبر کے پتر میں لکھا گیا تھا۔ کہ سادھنا کورس کی سوچنا ماہ دسمبر میں دی جاوے گی۔ سادھنا کورس کا کاریہ سوامی جی پر منحصر ہے۔ چونکہ وہ ماہ دسمبر اور جنوری آشرم کاریوں میں زیادہ مشغول رہیں گے۔ اس لئے ماہ جنوری کے آخر ہفتہ یا ماہ فروری کے پہلے ہفتہ میں سادھنا کورس کیا جاوے گا۔ جو کہ آشرم پر یا الہ آباد (پریاگ راج) کرنے کا وچار ہے۔ اس کا مکمل پروگرام ماہ جنوری کے رام سندیش پتر میں پڑھئے گا۔

(۲) آشرم کے عین سامنے ۵۰ گز کی دوری پر ایک دیہاتی اسکول ہے۔ وہ مکان کچھ سمے سے خالی پڑا تھا۔ وہ دیہاتی سرپنچ نمبردار سے آشرم کاریوں کے لئے مانگ لیا گیا ہے۔ ۶/۲ روپیہ خرچ کر کے کھڑکیاں دروازے اور فرش لگوا لیا ہے۔ جو کہ باہر سے آنے والے رام بھگت استری شریروں کے لئے ہے۔ ادھیاتمک کاریہ کھشیتر اور پروپکار درشٹی سے پُرش شریر

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

پرشن و اُتّر

پرشن ۱ ہمارے رہبر یا لیڈر خود ہی گمراہ ہیں۔ یا ہم لوگ گمراہ ہیں۔ کیونکہ بھارت ورش باقی دیشوں سے وگیان اور ادھیاتم درشٹی سے بہت پیچھے ہے۔

اُتّر۔ رہبر یا لیڈر۔ پرماتما کی طرف سے بھیجے جاتے ہیں۔ یا پرماتما کا اِستھول شریر ہیں۔ دیش واسیوں کے جیسے کرم ہوتے ہیں ویسا ہی اُن کو رستہ بھی دِکھایا جاتا ہے۔ جیسی ہماری بھاونا ہوتی ہے۔ ویسا ہی ہمارا دیو بھی ہوگا۔

ارجن کو لڑنے کی۔ دُریودھن کو مرنے کی۔ بدُر کو تپ کرنے کی اور رادھا کو پریم کے ساگر میں ڈوبے رہنے کی پریرنا کرنے والا بھگوان کرشن ایک ہی تھا۔

Current ایک ہی ہے۔ اسی سے Heater ہم جلاتے ہیں۔ اشیا کو پکاتے ہیں۔ کمرہ گرم کرتے ہیں۔ اسی سے پنکھا (Fan) چلاتے ہیں۔ کمرہ ٹھنڈا کرتے ہیں۔ Current ایک شکتی ہے۔ ہمارا جیسا بھی Instrument ہوتا ہے۔ ویسا ہی شکتی کام کرتی ہے۔ پرماتما تتھا گورو دیو ایک شکتی ہے۔ انتھہ کرن روپی Instrument اسے الگ الگ روپ میں دکھا رہا ہے۔

پرشن ۲۔ سب سے بڑا نیچ کون ہے۔

اُتّر۔ جو دوسروں کے دوش یا اوگُن دیکھتا رہتا ہے۔

پرشن ۳۔ آتم درشن کیسے ہوگا۔

اُتّر۔ جو اپنی وِرتی یا من کو آتم سروپ بنائے گا۔

پرشن ۴ ایشور پراپتی کا اُتّم سادھن کیا ہے۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

آرام رام کے سندیش میں ہے

(۱) اپنی درشٹی کو لگادو مستقبل کی طرف۔ تُم کیا ہونا چاہتے ہو۔ تمہارا اِشٹ کیا ہے۔ اس وِشواس کی دِرڑھتا میں تمہارے یتھارتھ سروپ کا حُلیہ چھپا ہے۔

(۲) پُرانے جیون۔ گذشتہ جنم کی بات سوچنے وِچارنے کی کوئی آوشیکتا نہیں۔ بُھلادو اُس سب کو۔ تُم کیا تھے۔ اُس کے دُوارا تمہارے انتر آتما کا ماپ نہیں کیا جاوے گا

(۳) کرم اپنے آپ میں ذرا بھی دِوّیہ اتھوا اَدِوّیہ نہیں ہوتا۔ کرم دِوّیہ اتھوا اَدِوّیہ ہو اُٹھتا ہے۔ کرم کرتا کے اَنتر بھاوُنا کے پربھاؤ سے۔

(۴) جس کرم کی بُنیاد کرتا کی نشکامتا۔ اناسکتی۔ نِرممتو۔ سمرپن پر ہوتی ہے۔ وہی دِوّیہ کرم بن جاتا ہے۔ جیسے ارجُن نے آرمبھ میں گھور کرم مان کر تیاگ کرنا چاہا تھا۔ اُسکو اَنت میں بھگوت کرم کے روپ میں گرہن کرنا پڑا۔

(۵) سمست وِیادھیوں کی مہا اوشدھی ہے۔ سِتھِرتا اور شانتی۔

(۶) ستیہ آپ کو محدود نہیں۔ بلکہ لامحدود وِشو جگت کے ساتھ ابھید روپ سے دیکھنا چاہتا ہے۔

(۷) کرتویہ۔ دھرم اور آتما کی طرف نِربھے ہو کر آگے ہی آگے بڑھنا ہی ستیہ پر چلنا ہے۔

(۸) رِشوت خوری۔ بلیک مارکیٹ یہ سب اَوِدّیا کے ہی کاریہ ہیں۔ سُتنترتا کے پاؤں میں زنجیر لگا کر جکڑ دینے والے یہ وہی لوگ ہیں۔ جو ایشوری گیان سے بے بہرہ ہیں۔

(۹) جس جاتی یا دیش میں شریر اور اُس کے سُکھ بھوگوں کو ہی اپنا لکش بنایا تھا۔ یا بنا دیا ہے اُن کے سروناش اور پتن کو برہما بھی روک نہیں سکتا۔ یہ اَٹل اور اَمِٹ سِدّھانت ہے۔

(۱۰) سنسار ایک سُوپن ہے۔ جو اگیان کی نِدرا میں ستیہ بھاستا ہے۔ اور گیان کال میں اَست ہو جاتا ہے۔

(۱۱) پرمادپکار اور آتم درشٹی یہ دونوں بات ہمیشہ ایک دوسرے کے انگ سنگ رہتے ہیں۔ اگر انکی پراپتی میں تجھے اینک مہا دُکھوں کا سامنا کرنا پڑتا ہے۔ تو ایشور تیرے پکش میں ہیں۔ یہ اُوچیہ بھاگیہ کے لکشن ہیں۔

تیرا انتر آتما

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ہری اوم

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اب دیکھیں تم کو کہاں سے سہایتا پراپت ہوتی ہے۔ رام ست سنگ کے امر گنگا میں غوطہ لگانے لگے۔ سب شردتا گن ست سنگی بھی پربھاوت ہوئے۔ برہم بھاونا میں لین تھے۔ ایک گھنٹہ کے بعد ایک رئیس بردھ آدمی ہاتھ میں چھڑی لئے ہوئے نوکر سمیت وہاں پہنچا۔ رام کی ادبھت بانی اور دیہ تیکش تیج کے درشن پاکر مگھد ہوا۔ پرارتھنا کرنے لگا۔ مہاراج جب تک آپ اور آپ کے منڈلی گنگا واس کریں بھوجن۔ دودھ۔ پھل وغیرہ کا انتظام میرے ذمہ ہوگا۔ رام نے ایک درشٹی سے اس کی پوتر بھاونا کو سویکار کیا۔ ڈیڑھ دو ماہ رات دن اسی کا ہی لنگر چل رہا تھا۔ کالج کھلنے میں چند دن ہی رہ گئے تھے۔ اس لئے رام منڈلی سمیت لاہور کے لئے سٹیشن کی جانب چل دئے۔ چل تو دئے لیکن ایک کوڑی بھی کسی کے پاس نہ تھی۔ گوسوامی برج لال جی جو کہ کماراوستھا کے تھے۔ رام کے پاس جا کر کہنے لگے۔ مہاراج ٹکٹوں کے لئے روپیہ کہاں سے لیں گے۔ رام کے مکھ سے اوم کی دھونی نکلی۔ وایو منڈل گونج اٹھا۔ ہنس کر بولے۔ جس نے بھوجن دیا وہ لاہور بھی پہنچا دے گا۔ کیا دیکھتے ہیں کہ ایک ناںگا سادھو تیزی سے رام کی جانب آرہا ہے۔ ہاتھ کی تھیلی رام کے چرنوں میں رکھ کر ڈنڈوت پرنام کیا۔ آنکھوں میں آنسو بھر کر شردھا پورک پرارتھنا کی۔ مہاراج یہ دھن مجھے کوئی دے گیا ہے۔ میں کیا کروں گا۔ کرپا کر کے آپ اسے سویکار کیجئے۔ رام نے اس کی شردھانجلی کو سویکار کیا۔ ایک ست سنگی ساتھی کو آگیا دی۔ اس تھیلی کو اٹھالو۔ سٹیشن پر جا کر سب کے لئے ٹکٹ خرید کرو۔ لاہور پہنچ کر بھی کچھ روپیہ باقی بچ گئے تھے

۵۔ یہ تھا رام کا ایشور پر بشواش اور ایسی تھی رام پر ایشور کی کرپا۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

رام کا وچتر جیون

۱- رام کہا کرتے تھے - پرکرتی میرے ہاتھ کا کھلونا ہے - سورج - چاند - ستارے - میری ہی آگیا کا پالن کر رہے ہیں - سپت دیپ نو کھنڈ پرتھوی میرے ادبھوت وستارہ ایک درشیہ ہے -

۲- مجھے خود شک ہوا کہ کہاں گوسوامی ہیرالال کا پتر ۱۸۷۳ء میں جنم لینے والا اور کہاں یہ سوریہ چاند - ستارے انادی کال کی پراکرت شکتیاں - میرا شریر ۱۹۴۵ء میں جب ٹیہری گڑھوال گیا - تو اسی گول کوٹھی میں ٹھہرا - جہاں سوامی رام رہا کرتے تھے اور انت کو شریر چھوڑا - ٹیہری کے رہنے والے دو بردھ شریر مجھے ملے انہوں نے بتایا کہ ہم لوگ نتیہ پرتی رام کے ست سنگ پر آیا کرتے تھے - رام جب کہتے تھے کہ آج بہت گرمی ہے تو پانچ سات منٹ کے بعد نرمل آکاش بادلوں سے ڈھک جاتا تھا اور ٹھنڈی ہوا کے ساتھ بارش ہونے لگتی تھی - رام جب کبھی کہتے تھے - آج صحن میں پتّے کافی بکھر گئے ہیں تو ایک وایو کا جھونکا آتا - اور جھاڑو کا کام کر جاتا -

۳- رام کے مکھ سے نکلا ہوا کوئی ایسا واکیہ نہ ہوتا تھا - جس میں اوم منتر کا پریوگ نہ ہوتا ہو - جب وہ مون رہتے تھے تو نامی میں نواس کرتے تھے - جب بولتے تھے - تو نام ان کا آدھار بنا رہتا تھا - وہ کہا کرتے تھے - اوم روپی سنجیونی بوٹی کا جس نے سیون کر لیا ہے - وہ ایک وچتر نشے میں بے ہوش رہتا ہے - کال نراش کے بھے سے پرے ہو جاتا ہے -

۴- جب رام پروفیسر تھے تو گرمیوں کی تعطیلات میں ۳۰ - ۳۵ شریروں کے ساتھ ہردوار گئے - سنکلپ تھا کہ کچھ سمے وہاں گزارا جاوے - ان شریروں میں برہم لین آر - ایس نارائن سوامی اور گوسوامی برج لال جی ریٹائرڈ تحصیلدار (یہ رام کے بھتیجے ہیں اور جیوت ہیں) بھی اس منڈلی میں تھے - ایک نرجن اور ایکانت استھان میں ڈیرہ لگا دیا گیا - رام کی سب کو آگیا ہوئی - جو کچھ ساتھ لائے ہو - سب روپیہ پیسہ میرے سامنے ڈھیر کر دو - ایسا ہی کیا گیا - اس کے بعد رام نے سب دھن اٹھا کر گنگا جی کی بھینٹ کر دیا - رام قہقہہ لگا کر ہنسے - پھر مون ہو گئے - ایک بار مدھر شبد سے بولے -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

۵ - یہ گیان دیپک کسی دو مارک درشٹی سے نہیں بلکہ رام اِچھا سے آتم گیان کے پروانوں کی تڑپ کو محسوس کرتے ہوئے یہ شمع جلائی گئی ہے - خواہ ہمارا سنکلپ ہمیشہ ہی نشکام رہے گا تو بھی اگر آپ تین چار روپیہ سالانہ کے بدلہ میں یا آلس پرماد کے کارن اِن رام وچنوں اور ادھیاتمک فلاسفی سے محروم رہ جاویں گے ۔ تو یاد رکھئے ۔ اور نوٹ کر رکھئے کہ آپ کا ہردیہ اودیا روپی سرپنی کے وِش سے مردہ ہو چکا ہے -

آؤ مہا منتر اوم اور رام اُپدیش روپی امرت کو پان کر پھر نو جیون کو دھارن کر پرکرتی کے واستوک سوندریہ اور سُکھ کا آپ بھوگ کریں -

اوم شانتی شانتی شانتی

آپ کا آتم سروپ
ہری اوم

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

بھومِکا

۱۔ اس تیر کو ساکشات رام آگیا انو بھو کریں گے تو انتہہ کرن کا مَل دور ہوگا۔ اس کے منن سے دکشیپ دوش کی نورتی ہوگی۔ اگر ان سدھانتوں اور یکتیوں کو اپنے آچرن سے سویکار کریں گے تو آپ کے ہردیہ بھومی میں آتم گیان کا سندر پُشپ کھِل اُٹھے گا۔ یہ ست جانیئے۔

۲۔ یہ سوبھاوِک سِدّھ ہے کہ ہر ایک بناسپتی پودے کو بہار۔ خزاں۔ گرمی۔ سردی۔ کا منہ دیکھنا پڑتا ہے۔ اگر کھاد، پانی ملتا رہے اور گرمی سردی سے کچھ دن محفوظ رکھا جائے تو پودا اِن موسموں سے ہمیشہ بچ کر اپنی اصلی شکتیوں کا سُکھ آپ بھوگ کرتا اپنی سندرتا اور پھل سے انیک جیوؤں کا پران آدھار بن کر اپنی آیو کو سمان پوروک پراوپکار درشٹی سے بھوگتا ہے۔ یہی حال سادھارن جیو کا ہے۔ جو کہ سنسار روپی بن میں۔ دُکھ۔ سُکھ۔ ہرش۔ اَپ یش امیری، غریبی۔ بیماری اور کال روپی دوندوں سے تمام عمر سوبھاوِک ہی پیڑت اور دکھی سُکھی ہوتا رہتا ہے۔ اگر ستیہ اُپدیش روپی جل۔ وشواش کی کھاد۔ اور آتم درشی مہاتما روپی سورج کا پرکاش ہردیہ بھومی کو پراپت ہوتا رہے۔ تو جیو سبھی دوندوں اور تاپوں سے رہت ہو کر اپنے جیون کو سُکھ سے وتیت کرنے میں سمرتھ ہو جایا کرتا ہے۔

۳۔ اس بھیانک یگ میں چو طے۔ چوکے۔ چھوت۔ چھات۔ جات۔ پات کی چار دیواری میں گھیرے ہوئے دھرم اور سمپردائیں۔ ہم کو کامیابی یا اُنتی کی چوٹی تک نہ پہنچا سکیں گی۔ بھوتک سائنس کو جیت لینے والا صرف آتم بل ہی ہے۔

۴۔ میرا وشواش ہے کہ ادھیاتم ودیا کو سمجھنا اور سمجھانا ہر ایک وِدوان اور سادھو کا کام نہیں ہے۔ وقت کی چال اور نزاکت کو سمجھنا بڑے دور درشی مہاتماؤں کا کام ہے۔ موجودہ زمانہ کی سنکٹ کی زنجیر سے رہائی پانے کا اُپائے صرف ادویت سدھانت اور ابھید درشٹی ویدانت درشن سے ہے اس لئے اپ نشد گیان کا سمرتھن کرنے والے رشی، مہرشی۔ اوتاروں اور موجودہ وقت کے آتم وِیتا مہان آتماؤں کے ہی امرت وچن وشرتیوں دوارا گیان روپ سے آپ کی سیوا کا نشچہ کر کے یہ تیر جاری کیا ہے۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण पञ्चक

(छन्द हरिगीति)

ले० पं० वासुदेव उपाध्याय

सबका नियन्ता भक्ति के वश पार्थ का यन्ता बना ।
उसकी अहन्ता का अमल उपदेश से हन्ता बना ॥
मन्तव्य जो था श्रौत वचनों से वही मन्ता बना ।
गन्तव्य जो था सर्व जन का बस वही गन्ता बना ॥ १ ॥

ध्यातव्य जो था योगियों का अब वही ध्याता बना ।
जो ज्ञेय था षड्विध प्रमाणों से वही ज्ञाता बना ॥
चेता वही संसार के उपदेश को नेता बना ।
आदेश जिसका कायरों को वीर है देता बना ॥ २ ॥

गीतोपदेशक कर्मयोगी कृष्ण अपना देव है ।
सच पूछियेगा तो हमें हरदेव ही हरिदेव है ॥
यह "वासुदेव" समस्त जग का एक देव उपास्य है ॥
हमको न अन्य अभीष्ट कुछ भी इष्ट उसका दास्य है ॥ ३ ॥

निष्काम मति से कर्म करना कामनाएँ छोड़कर ।
मतसोच लाभ अलाभ समता योग का अभ्यासकर ॥
जब कर्म छूट सकते नहीं तो कर्म को क्यों छोड़ना ।
आसंग को ही छोड़ना यह कृष्ण की है सूचना ॥ ४ ॥

यह कृष्ण पञ्चक निष्प्रपञ्चक बोध में उपयुक्त है ।
आरोप से अपवाद का अवबोध श्रुति से युक्त है ॥
एक अद्वैत ही वाद अन्य समस्त वाद विवाद हैं ।
जिसकी कृपा से आज हम सविषाद भी अविषाद हैं ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिगीत

जो हम भले बुरे सो तेरे !
तुम्ही हमारी लाज बचाई ।
विनती सुन प्रभु मेरे ॥
सब तजि तुव सरनागत आयो,
निज कर चरन गहे रे ।
तुव प्रताप बल बढ़त न काहू,
निडर भये घर चेरे ॥
और देव सब रंक भिखारी,
त्यागे बहुत अनेरे ।
"सूरदास" प्रभु तुम्हरि कृपा ते,
पाये सुख जु घनेरे ॥ १ ॥

——:०:——

साधो मनका मान त्यागो !
काम क्रोध संगत दुर्जन की ।
ताते अहनिस भागो ॥
सुख दुख दोनों सम करि जाने,
और मान अपमाना ।
हर्ष शोक ते रहे अतीता,
तिन जग तत्त्व पिछाना ॥
अस्तुति निन्दा दो त्यागे,
खोजे पद निर्वाना ।
जन "नानक" यह खेल कठिन है,
कोउ गुरु मुख जाना ॥ २ ॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम सन्देश

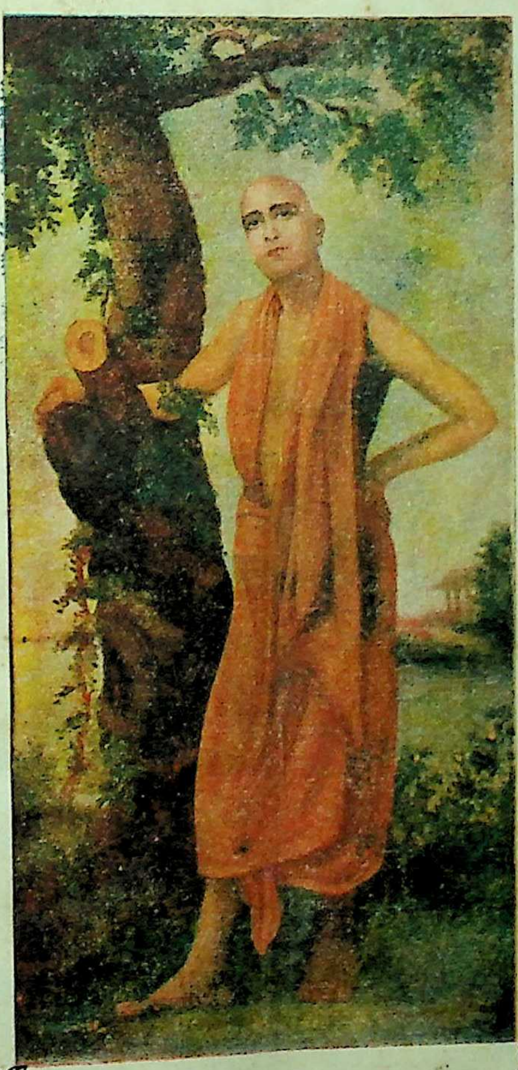

वार्षिक मूल्य ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक :—
हरिओ३म् जी
सेवक श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम,
राजपुर देहरादून

सहायक सम्पादक :—
पं० ऋषिराम जी
भूतपूर्व प्रिंसीपल,
ब्रह्म महाविद्यालय, लाहौर।

नोटः—हम एक वर्ष तक आप की निष्काम सेवा करेंगे।
इस का मूल्य भेजना तथा न भेजना आप की श्रद्धा पर निर्भर है।

Printed by M. Ram Narayan Vedik Dharam Bhushan
at the "Hira Lal Printing Works," Aligarh.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Except Title Cover

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचना

नं० १—कई राम भक्तों ने धन द्वारा राम सन्देश पत्रिका प्रारम्भ करने से पूर्व सहायता प्रेषित की थी, उनके शुभ नाम फ़रवरी मास १९५१ ई० के रामसन्देश में आप पढ़ेंगे। हम उनके अति धन्यवादी हैं। राम उनको इस योग्य बनाये रक्खें कि वे शुभ कार्यों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते रहें। परन्तु कुछ राम भक्त शरीर ऐसे हैं जिन्होंने धन के अतिरिक्त तन, मन और समय की अत्यधिक सहायता दी है। जिनके नाम से सूचित कर देना आवश्यक है—(१) श्रीमती माता सुशीलादेवी जी भंडारी देहरादून (२) श्रीमती राजकुमारीदेवी जी देहरादून (३) कुमारी सन्तोष जी मेहदीरत्ता देहरादून (४) श्रीमान् रायसाहब नन्दलाल जी मनचन्दा ई० ए० सी० रिटायर्ड देहली (५) श्रीमान् सेठ फूलचन्द जी हीरालाल प्रिंटिंग वर्क्स अलीगढ़। इन शरीरों का श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम अति आभारी है। प्यारे राम से प्रार्थना है कि इनका जीवन शुभकार्यों में और इसके फल स्वरूप इनको सुख शान्ति प्राप्त हो।

नं० २—आप यह तृतीय राम सन्देश पत्र पढ़ रहे हैं। हिन्दी भाषा जोकि राष्ट्र भाषा हो चुकी है, कई महानुभाव इससे अनभिज्ञ हैं। अध्यात्म विद्या से हर किसी को जानकारी होना आवश्यक है। जोकि मनुष्य मात्र का उच्च और सर्वोत्तम ध्येय है। इस कारण कुछ लेख उर्दू और अंग्रेज़ी में लिखे जा रहे हैं।

क्या आप तीन पैसे का पोस्टकार्ड लिखकर हमें सूचित कर सकेंगे कि उर्दू अंग्रेज़ी में उपदेश भेजे जायें या इनकी कोई आवश्यकता नहीं हैं। यदि इनसे आपको या आपके इष्ट मित्रों को लाभ हो तो अत्युत्तम, अन्यथा कागज़ तथा समय का दुरुपयोग क्यों किया जाय और इससे बचा हुआ धन मिशन के किसी अन्य कार्य में व्यय किया जाय। १५ जनवरी सन् १९५१ तक आपकी ओर से उत्तर अवश्य मिलना चाहिये। आपके किंचित कष्ट से हमारा अत्यधिक लाभ होगा।

आपका अपना आप हरिः ओ३म्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥
भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१. आवश्यक सूचना	आरम्भ में
२. स्वामी राम का विचित्र जीवन ...	१
३. Heart of Rama (रामहृदय) ...	३
४. उपनिषद् ज्ञान	४
५. श्री शंकराचार्य कृत विवेक चूड़ामणि ...	६
६. जीव के लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य साधन क्या है ?	८
७. अनूठा परिवर्त्तन ...	१०
८. प्रश्नोत्तर ...	१३
९. आश्रम समाचार ...	१४
१०. अंग्रेजी लेख ...	१—४
११. उर्दू लेख	१—८
१२. मन्जिले मक़सूद कवर टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर	
१३. राम भजन नं० १ ,, चौथे ,,	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् , पूर्णात् पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय , पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ओ३म्

जाग्रदादि त्रयोन्मुक्तं जाग्रदादिमयं तथा ।
ओङ्कारैक सुसंवेद्य यत्पदं तन्नमाम्यहम् ॥

राम सन्देश

द्वितीय वर्ष | जनवरी १९५१ | अङ्क १

"स्वामी राम का विचित्र जीवन"

[स्वामी राम की पौराणिक—खोज]

स्वामी राम शिकागो (अमेरिका) में व्याख्यान दिया करते थे । एक दिन विज्ञान के प्रोफ़ेसर ने प्रश्न किया कि क्या आप हिन्दू हैं ? राम ने उत्तर दिया मैं क्या नहीं हूँ, मैं सब कुछ हूँ । सब धर्म मेरे हैं । अतः मैं हिन्दू भी हूँ ! प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया आप हिन्दू न हों परन्तु आप हिन्दू दर्शन शास्त्र का प्रचार करते हैं ।

राम ने कहा आप समझे नहीं, मैं सत्य अर्थात् असीम सत्य का प्रचारक हूँ । जिसे कोई समाज बन्दी नहीं बना सकता । उसे कोई भी अपना सकता है । हिन्दू ऋषियों ने उसे प्राप्त किया, इसका यह तात्पर्य नहीं कि सत्य को हिन्दू धर्म की दीक्षा दे दी गई ।

प्रोफ़ेसर महोदय बोलेः—स्वामी जी क्या आपके पूर्वजों ने संसार में पौराणिक असत्य कल्पनाओं का निर्माण नहीं किया । क्या ऐसे लोग कभी सत्य का दर्शन कर सकते हैं ?

राम ने स्वाभाविक सरलता के साथ हँसकर कहा—मेरे प्यारे, क्या उनकी किसी झूठी कल्पना को बतला सकते हो ? सम्भव कि है मैं आपको बतलादूँ कि वह कल्पना नहीं किन्तु असीम सत्य को शब्दों के भीतर लाने का उचित प्रयास है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोफ़ेसर ने कहा ! हाँ, हाँ मैं उनकी अनेक निराधार कल्पनाओं को बतला सकता हूँ। स्वामी राम हँसते हुए बोले। किसी एक को तो बतलाओ ? यदि तुमने हिन्दू पुराणों के साथ-साथ हिन्दू दर्शनों का भी अध्ययन किया होता बीच में ही प्रोफ़ेसर ने कहा। क्या यह असत्य है कि पुराण पृथ्वी को शेषनाग के ऊपर स्थित बतलाते हैं। विज्ञान के प्रकाश के सामने इन कल्पनाओं को क्या आप सत्य मानते हैं और इनके निर्माण कर्ताओं को आप सत्य सेवी कहते हैं।

राम ने उत्तर दिया—यदि इस विषय पर सत्यासत्य का निर्णय करना चाहते हो तो कल एक संस्कृत कोष और आधुनिक विज्ञान की कोई पुस्तक जोकि यह बतला सके कि पृथ्वी किस पर स्थित है। लेकर मेरे पास आजाइये। विश्वास करो आपकी शंकाएँ दूर होजायेंगी। प्रोफ़ेसर साहब दूसरे दिन पुस्तक लेकर स्वामी राम के पास आये। प्रोफ़ेसर साहब से बोले। आओ मेरे शेषनाग पृथ्वी नहीं ब्रह्मांड तुम पर स्थित है। प्रोफ़ेसर साहब इसे एक चुटकला समझ कर बैठ गये। राम ने निकट बैठे हुए सभी प्रेमियों की ओर देखकर कहा। प्रश्न यह है कि क्या पृथ्वी शेषनाग के ऊपर स्थित है। प्रोफ़ेसर साहब की ओर देखकर बोले कि विज्ञान के अनुसार यह पृथ्वी किस पर स्थित है ? प्रोफ़ेसर महोदय ने शीघ्र ही उत्तर दिया कि आकाश और आकर्षण पर। स्वामी जी ने हँसते हुए कहा, प्यारे ! संस्कृत कोष को देखो, शेष और नाग शब्दों के क्या अर्थ हैं। कोष खोला तो प्रोफ़ेसर साहब ने आश्चर्य पूर्वक देखा कि शेष और नाग के अर्थ आकाश और आकर्षण ही हैं। प्रोफ़ेसर साहब ने क्षमा माँगी। फिर प्रोफ़ेसर साहब ने यह स्वीकार करते हुए कि पृथ्वी शेषनाग पर स्थित है, आदर पूर्वक पूछा कि ऐसे रूप देने की क्या आवश्यकता थी। इसपर राम ने कहा कि शक्ति सहस्र धाराओं में ही प्रवाहित होकर आकर्षण आदि का कार्य करती है और उस की गति सदैव सर्पाकार लहरियों में ही प्रवाहित होती रहती है। फिर स्वामी राम ने कहा। अब बतलाओ क्या यह पृथ्वी शेषनाग पर स्थित है या नहीं, यह सुनकर प्रोफ़ेसर साहब मौन होगये।

प्रत्यक्ष अवतार भावना—अमरीका में राम भाषण दे रहे थे तो एक पौराणिक अंग्रेज फ़िलास्फ़र ने प्रश्न किया कि पुराणों में लिखा है भगवान् कृष्ण की सोलह हज़ार एक सौ आठ रानियाँ थीं क्या योग और भोग एकत्रित रह सकते हैं ? राम ने कहा। इस का उत्तर कल दिया जावेगा। दूसरे दिन राम के भाषण में सहस्रों नर नारी एकत्रित थे, राम भाषण देते हुए स्टेज से कूदकर दो फ़र्लाङ्ग की दूरी पर एक दूसरे चौक में जाकर खड़े होगये, सब नर नारी दिवानों की तरह चलते-दौड़ते-भागते इस प्रकार राम के चारों ओर जाकर खड़े होगये। जैसे पतंगे दीपक के गिर्द आजाते हैं। राम ने सँभलकर कहा यह कल के प्रश्न का उत्तर है। भगवान् कृष्ण के समय की गौ, गोपिकायें इसी प्रकार उनके पीछे दिवाने होकर भागते थे जैसे आज तुम मेरे पीछे भाग रहे हो। जब शमा रोशन होती है तो परवानों को खींच लेती है। इसी तरह जिस हृदय में ज्ञान की ज्योति जगमगा उठती है तो स्त्री, पुरुष, जीव, जन्तु प्रेम सहित अपने कल्याण के लिये स्वयं ही खिंचे चले आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तत्व दर्शन को भूलकर हम अनेक प्रकार के दोषों और पापों के भागी बन जाते हैं। जिन बहू बेटियों को सत्संग में, जाते देखकर हम अनेक प्रकार के लाँछन लगा देते हैं, हम स्वयं उन्हीं को अपने साथ रंग, तमाशे, सिनेमा आदि पर बड़े शौक और गौरव से साथ ले जाते हैं। यह नियम है कि जिस धूल को हम दबायेंगे वह उड़कर सिर पर पड़ेगी। मन की इच्छाएँ दबाने से नहीं दबतीं विवेक और सत्संग ही प्रबल इच्छाओं के दाँत खट्टे करने का एक मात्र साधन है, अपने चरित्र का निर्माण कीजिये, फिर बिना बोले ही आपकी शिक्षा दूसरों पर काम करेगी। यदि बिना विचारे दोषवक्ता बने रहोगे तो आपका अनिष्ट अवश्य होगा ही परन्तु आप द्वारा समाज और जाति को भी हानि अवश्य पहुँचेगी।

ओ३म् शान्तिः। शान्तिः॥ शान्तिः॥।

ब्रह्मलीन श्री आर० ऐस० नारायण स्वामी द्वारा स्वामी राम के ग्रन्थों से चुने हुए

अमूल्य वचनामृत

Heart of Rama

No. 4 Daing anything to pramate the well being of the Nation is Serving the casmic powers, devas, or gods.

रामहृदय—राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिये प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

व्याख्या—ये शब्द राम की देशभक्ति के सूचक हैं, शास्त्रों में वर्णित उपासनाकांड और कर्मकांड के उन्नतर भावार्थों को किस रीति से यथार्थ रूप में बुद्धि के तराजू पर तोला था। तेतीस करोड़ देवी देवताओं का यथार्थ स्वरूप आपके देश वासी ही हैं। देवऋण से मुक्त होने का एक मात्र उपाय राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिये प्रयत्न करना ही है। यदि प्रत्येक भारतवासी के हृदय में आत्मज्ञान तथा परमात्म विश्वास की ज्योति चमक उठे तो आधिभौतिक—आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार से उत्पन्न हुए दुःख निवृत्त हुए बिना नहीं रह सकते। धर्म परायण होकर अपने आपको ईश्वर के हाथ का यन्त्र अनुभव करते हुए तन, मन, धन से राष्ट्र सेवा करना ही, देवताओं की सच्ची आराधना करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

No. 5 To Realize god, have the sanny as a spirit, i, e., entire Renunciation of self-interest, making the little self absolutely 'at one' with the great self of Matter India.

ईश्वर अनुभव के लिये आवश्यकता होती है, संन्यास भाव की अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्यागकर इस परिच्छिन्नात्मा को भारत माता की महान् आत्मा से बिलकुल अभिन्न कर दिया जाय।

व्याख्या—उपनिषद् ज्ञान तथा वेद भगवान् की ऋचाओं से स्पष्ट है कि संन्यास हुए विना ईश्वर का साक्षात् नहीं होता। निम्न श्रेणी के साधु समाज और सम्प्रदायों ने अनेक प्रकार की शारीरिक क्रियाओं भगवे वस्त्र, भभूति, नग्न रहना, अग्नि आदि का न छूना आदि को ही जोकि प्रथम शारीरिक साधनायें थीं, परमात्म अनुभूति का प्रमाण पत्र समझ लिया, भगवान् वसिष्ठ योग तथा उपनिषद् फ़िलास्फ़ी के अनुसार भगवद्गीता के आशय को स्मरण करने तथा अनुभव करते स्वामी राम स्वार्थ-त्याग काम्य कर्मों को विस्मृत कर परिच्छिन्नात्मा को विश्वात्मा में अभेद करते हुए प्राणीमात्र तथा राष्ट्र सेवा को ही पूर्ण संन्यास योग का स्वरूप वर्णन करते हैं। ऐसी महानात्माओं द्वारा ही स्वदेश का निर्माण होता चला आया है। ऐसे संन्यासी को जिसकी आत्मा महानात्मा का अनुभव करके विश्व प्रेम विजयी हो चुकी हो कोटिशः दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो। ऐसे संन्यस्त व्यक्ति की खोज स्वयं महेश्वर भी करते हैं, और देवगण भी सेवा के लिये तत्पर रहते हैं। ऐसे संन्यासियों की कृपा दृष्टि के पात्र बनकर स्वयं अभेद रूप से राष्ट्र के लिये अपनी इच्छाओं का बलिदान दो।

उपनिषद्-ज्ञान

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥३॥

निश्चय करके वह असुरों के लोक हैं और गाढ़ अन्धकार से भरे हुए हैं। जो लोग आत्मा का हनन करते हैं अर्थात् आत्मा की उपेक्षा करके अनात्म जीवन व्यतीत करते हैं, वह मरने के पश्चात् उन लोकों को प्राप्त होते हैं।

इस उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में इस संसार और जीवन का आधार एक विश्वात्मा बतलाया है, जो इसका मालिक है और सब वस्तुओं में ओत प्रोत है, दूसरे मन्त्र में बतलाया कि मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। अब तीसरे मन्त्र में यह बतलाते हैं कि जो लोग इस आत्मा के ज्ञान तथा सम्बन्ध से शून्य रहते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल शारीरिक, मानसिक तथा इन्द्रियों की कामना पूर्ति में लगे रहते हैं, वह निश्चय करके मरने के पश्चात् उन योनियों को प्राप्त होते हैं, जहाँ बुद्धि का विकाश नहीं और केवल पशुओं के समान जीवन है।

असुर शब्द का अर्थ प्राणों में रमण करनेवाला है, अर्थात् जो केवल अन्नमय और प्राणमय कोष में जाग्रत है, जिसका जीवन पेट भरना और इन्द्रियों के स्थूल भोगों को भोगना है, पशु लोक इसी प्रकार का लोक है। एक गौ या घोड़े के अन्दर कभी यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता कि इस जीवन का क्या प्रयोजन है, क्या हम अच्छे कर्म करके आगे बढ़ सकते हैं, उसमें यह बुद्धिशक्ति नहीं है, उसके स्थान में वहाँ अन्धकार है, वह चारा खाता है, पानी पीता है, निद्रा भी करता है। और बच्चे भी पैदा करता है तथा मर जाता है, यह उसका पूर्ण जीवन है, आप उससे अधिक आशा नहीं करते वह जैसी अवस्था में ५०० वर्ष पहले था आज भी उसी अवस्था में है, वहाँ आत्मबोध या आत्मोन्नति का प्रश्न ही नहीं। परन्तु यदि एक मनुष्य भी ऐसा ही जीवन व्यतीत करे जिसमें खाना पीना सोना और बच्चे पैदा करना ही हो तो उसमें और पशु के जीवन में कोई भेद नहीं रहता। पशु को भूख लगती है और वह अनाज की टोकरी में मुख डालता है, दुकानदार पत्थर मारता है और वह हट जाता है परन्तु १० मिनट के पश्चात् फिर वह उसमें मुख डालता है उसके सामने दो ही प्रश्न हैं उसको भूख है और खाने की वस्तु मौजूद है परन्तु एक मनुष्य भूखा है और बाजार में खाने की चीजें रक्खी हैं परन्तु वह गौ के समान उन पर हाथ या मुख नहीं डालता, क्योंकि उसके सन्मुख तीसरा प्रश्न पैदा हो गया है। उसको भूख है, वस्तु भी विद्यमान है, परन्तु तीसरा प्रश्न कहता है कि "मुझे यह चीज़ लेनी चाहिये या नहीं। उसको भूख है परन्तु वह चोरी करके दूसरे की वस्तु नहीं लेना चाहता। इससे प्रमाणित हुआ कि उसका जीवन केवल इच्छापूर्ति का नहीं प्रत्युत उसके जीवन के सन्मुख कुछ और उद्देश्य और प्रयोजन हैं, उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह भूखा रहता है, कष्ट उठाता है और किसी समय प्राण तक दे देता है। परन्तु आपने कभी नहीं देखा कि कोई पशु ऐसा करता हो यह उद्देश्य कर्तव्य कर्म की पूर्ति है कर्तव्य कर्म आत्मा के अस्तित्व को प्रगट करता है और आत्मा के जीवन को पैदा करता है यह आत्मा जीवन, सत्य, आनन्द, प्रेम और सबके प्रति एकता के भाव से युक्त है सब शास्त्र इस जीवन का विस्तार के साथ वर्णन करते हैं। गीता में भक्त कर्म योगी और स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में इसका सुन्दर वर्णन है।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धावतो ऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति। ४।

वह गति नहीं करता है, एक है, मन से भी वेगवान है मन और इन्द्रियाँ इसको प्राप्त नहीं कर सकते यह उनसे पूर्व ही वहाँ विद्यमान है। वह ठहरा हुआ भी दूसरे दौड़ते हुओं को उलाँघ जाता है उसमें ही जीवात्मा कर्मों को धारण करता है।

जिस आत्मा का पहले मन्त्रों में उल्लेख किया है अब उस आत्मा का निरूपण करते हैं उसका विस्तार के साथ वर्णन करते हैं कि वह कैसा है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह स्थिर और अचल है, और वह एक ही है अन्तिम सत्ता एक ही है यद्यपि उसके नाना रूप हैं। मनुष्य का मन बहुत घूमने वाला है, यह जागते हुए दूर जाता है और सोते हुए उससे भी अधिक इसकी गति होती है परन्तु वह आत्मशक्ति इस मन से अधिक वेगवान है इसका प्रभाव मन से कहीं अधिक है। बड़े-बड़े बुद्धिमान दार्शनिक तथा कवि अपनी मानसिक शक्ति से जो रचना करते हैं वह संसार में बहुत प्रभाव डालती है। परन्तु जो आत्म ज्ञानी होते हैं और जब उसमें आत्मा के गुणों का प्रकाश होता है तो उसका प्रभाव संसार के दूरस्थ भागों में पहुँचता है। इन्द्रियाँ इस आत्मा को नहीं पा सकतीं वह स्थिर होता हुआ भी दूसरे भागतों को उलाँघ जाता है। देहधारी प्राणी उसमें निवास करते हैं और कर्म करते हैं। इसका प्रत्यक्ष परीक्षण इसलिये नहीं हो सकता कि किसी वस्तु को उससे पृथक् करके नहीं दिखाया जा सकता, केवल अलंकार से ही समझा सकते हैं। योगमार्ग इसीलिये उस आत्मा के साक्षात् का मार्ग बताया गया है जिसमें मन और बुद्धि निश्चेष्ट हो जाते हैं और तब उस स्वयं प्रकाश आत्मा का अनुभव होता है अथवा द्वैत के अनुसार मनुष्य आत्मा उस परमात्मा को देखता है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

विवेक चूड़ामणि

ले० आयुर्वेद भास्कर वैद्य रामकृष्ण शास्त्री (भरद्वाज)

(गतांक से आगे)

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥३॥

अर्थ—श्री भगवत्कृपा ही जिनकी उपलब्धि का हेतु है, वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होने की इच्छा) और सन्त, महात्मा, विद्वान् पुरुषों का सत्संग ये तीनों ही परम दुर्लभ हैं।

व्याख्या—मनुष्य जन्म की दुर्लभता तथा महानता क्यों है, और वह कितनी कठिन है, इस पर भी उत्तरोत्तर अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करता हुआ जीवात्मा की जीवनमुक्त होने की इच्छा का प्रादुर्भाव होना कितना दुष्कर है, यह द्वितीय श्लोक में भली प्रकार प्रदर्शित कर दिया गया है।

यद्यपि अनन्त काल से संसारागार में पड़े हुए असंख्य प्राणी अनन्त स्वरूपों में अपने-अपने पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभ कर्म विपाक को भोग रहे हैं, तथापि अज्ञानावृत इस जीव को मायिक पदार्थों में ही सुख की प्रतीति होती है। यद्यपि ये क्षणिक सुख अन्त में दुःखरूप ही हैं तो भी इन्हीं नश्वर (नाशवान्) भौतिक सुखों को सुखरूप समझता है, परन्तु विचार पूर्वक मनन किया जाय तो धन, दारा, पुत्रादि में सत्य सुख नहीं है, क्योंकि :—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एवते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
गी० अ० ५ श्लोक २२।

इन्द्रिय तथा अनेकानेक विषय जन्य जितने भी भोग हैं। वे यद्यपि विषयी पुरुषों को भोगकाल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखरूप प्रतीत होते हैं, तथापि निस्सन्देह वे सब दुःख के ही कारण हैं। अर्थात् आदि अन्त वाले होने से अनित्य हैं। अतः विचारशील पुरुष इन क्षणिक सुखों में नहीं रमते।

इस प्रकार जब जीव संसार के समस्त पदार्थों को नश्वर, क्षणिक और दुःखद समझता है तो वह जगत् से उपराम हो जाता है, और उसके हृदयन्तराल में यह भव्य भावना जाग्रत होती है कि कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः॥ अर्थात् तू कौन है मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ कौन मेरे माता और पिता हैं। मेरा क्या स्वरूप और क्या कर्तव्य है। किस प्रकार से मुझे अपने स्वरूप की उपलब्धि होगी। इस प्रकार संसारागार से विमुक्त होने की अनन्य भावना के उदय होने का नाम ही मुमुक्षुत्व कहलाता है।

इस पवित्र चिरशान्ति प्रदायिनी, आनन्ददात्री, शुभ भावना का उदय होना अनेक जन्मों के पुण्यफल के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। जब हृत्पटल पर मुमुक्षुत्व की यह जिज्ञासा मयी मनोहर मोहर लग जाती है तो संसार दावानल से संतप्त जीवात्मा प्रतिक्षण अपनी मुक्ति की इच्छा करता हुआ विकल हो जाता है, और विचार करता है कि मैं किस प्रकार अनन्त दुःखरूप संसार सागर से पार जाकर अखण्ड अनन्त आनन्द को प्राप्त करूँ, तदनन्तर उसे अपने उद्धार का एक ही मार्ग विचार विनिमय के पश्चात् दृष्टिगोचर होता है कि उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत। उठो और जागो वीत राग, तत्ववेत्ता महापुरुषों की शरण में जाओ और उनसे अमृतत्व का विमल उपदेश श्रवण कर आत्म स्वरूप पहचानो।

इस विचारधारा के अनुसार वह आत्मसाक्षात्कार के लिये महापुरुषों की पवित्र सेवा में पहुँचता है। राजा रहूगण को उपदेश करते हुए परमहंस महाराज जड़ भरत जी कहते हैं कि :—

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा न छन्दसा नैव जलाग्निभिर्वा। न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा विनामहत्पादरजोऽभिषेकम्। (श्री मद्भागवत)

हे राजन्! उस परम तत्व की प्राप्ति सहस्रों वर्षों की तपस्या तथा योग समाधिः द्वारा भी नहीं होती, और न बड़े बड़े अग्निष्टोम, अश्वमेधादि विधि विहित यज्ञों के करने से ही उस परमपद की प्राप्ति होती है। न वेद, शास्त्रों के विधिपूर्वक अध्ययन से तथा जल, अग्नि, सूर्य आदि देवताओं की उपासना से भी नहीं। इसी प्रकार शास्त्र विहित गृहस्थ धर्म के कर्मों का परित्याग कर घर छोड़ बन में जाकर तपस्या करने से भी उस परम तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, जब तक कि ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की सेवा द्वारा उनके पावन चरण रज को अपने शिर पर धारण कर अन्तःकरण को पवित्र नहीं कर लेता। इन ब्रह्मदर्शी ज्ञानी पुरुषों के दर्शन तभी सुलभ होते हैं जब मनुष्य के अनेक जन्मों के पुण्य उदय होते हैं।

पुण्य पुञ्ज बिनु मिलहिं न सन्ता।
सत् संगति संसृति कर अन्ता॥ (रामायण)

सत्संगतिरूपी तीक्ष्ण असि धार ही जीव की प्रकृति जन्य जड़ग्रन्थि को काटकर पुनरपि जननं पुनरपि मरणम् के दुःखरूप चक्र से बाहर निकाल कर इसे शुद्ध चेतन सत, चित्, आनन्दमय, ब्रह्मस्वरूप बना देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* हरिः ओ३म् *

जीव के लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य साधन क्या है ?

ले० आयुर्वेद भास्कर वैद्य रामकृष्ण जी शास्त्री (भरद्वाज)

अपने संकल्प से ही जीवात्मा संसार सागर में पुनः जन्म लेकर त्रिविध (सात्विक्-राजस्-तामस्) कर्म करता हुआ चौरासी लक्ष के चक्र में नियम बद्ध होकर घूम रहा है, क्योंकि जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्यादि योनियों में जन्म लेता और मरता है, भगवान् श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं। कि—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"

भगवान् की जीव के लिये आज्ञा है कि तू कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फलाकाँक्षा में सर्वथा परतन्त्र ही है। जब तक जीव को यह ज्ञान नहीं कि मेरा लक्ष्य प्राप्ति का साधन क्या है, तब तक इसी चक्र में घूमता रहता है।

जिस समय भगवान् इस जीव पर अहैतुकी कृपा करते हुए मनुष्य शरीर का चोला इसे पहना देते हैं क्योंकि "कबहुँक करि करुणा नर देही। देत ईस बिनु हेत सनेही।" मनुष्य शरीर धारण कर सत्संग और वेदान्तादि सद्शास्त्रों द्वारा इसके हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि तू जीव नहीं है। तू तो ज्ञान स्वरूप अविद्या से परे चैतन्यरूप है। इसलिए माया से परिच्छिन्न जीव तेरा स्वरूप किसी अवस्था में नहीं, तथा सद्गुरु के उपदेश द्वारा यह पूर्ण ज्ञान प्राप्त होजाता है कि (तत्त्वमसि) तत्=त्वं=असि वह तू है। जिसकी ज्योति सूर्य, चन्द्र तारागणों में चमक रही है, समुद्र की उत्ताल तरंगों में बिजली की चमचमाहट तथा नदी के प्रवाह में जंगलों की मनोहारिणी हरियाली और प्राणिमात्र में जो चैतन्यता है, वह तेरा ही स्वरूप है, तुझसे भिन्न कुछ भी नहीं, अखिल ब्रह्माण्ड में तेरी ही सत्ता कार्य करती है, तू ही ब्रह्म है।

परन्तु इस परम ज्ञान और परमपद की प्राप्ति मनुष्य को किस प्रकार हो सकती है। इस पर विचार करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। जीवात्मा का सम्बन्ध जड़ (प्रकृति) के साथ होने से जन्म लेना पड़ता है, और जड़ होने के नाते जीव शरीर को ही आतमा मान लेता है। शरीर को आत्मा मान लेना ही महापाप है। इसी जड़ ग्रन्थि जिसमें कि जीव बद्ध है, जो कि जन्म जन्मान्तरों से अत्यन्त दृढ़ (मज़बूत) हो गई है। इस ग्रन्थि के खुलने का नाम हीं परम पद की प्राप्ति है। जिसे प्राप्त किये बिना जीव निरन्तर संसार समुद्र में गोते खाता रहता है, अर्थात् जन्मता और मरता रहता है। जन्म मरण के चक्र से इसका छुटकारा होता ही नहीं, अन्त समय ब्रह्म भावना होने से जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो सकेगा। जड़ चेतन को पृथक् करने के कारण ही महापुरुष परमहंस कहलाते हैं।

यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

तात्पर्य यह है कि जीव मनुष्य देह छोड़ते समय जैसा-जैसा संकल्प करता हुआ शरीर त्याग करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसी संकल्प (वासना) के अनुसार यह द्वितीय शरीर धारण करता या मोक्ष पद प्राप्त करता है। यदि मरते समय प्रकृति की तरफ इसका झुकाव हुआ अर्थात् किसी भी साँसारिक भोग्य वस्तु में कामना रह गई तो संकल्प के अनुसार इसका जन्म लेना निश्चित है। यदि भावना दृढ़ और गुणातीत में परिवर्तित हो चुकी है सर्वोत्तम ब्रह्म भावना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। तो जीव माया के बन्धन से छूटकर जीवनमुक्त हो गया संसार के आवागमन के चक्र से सर्वदा के लिये छूट जाता है।

इस परमपद को प्राप्त करना ही जीव का पुरुषार्थ है। यह बात सत्य है कि इसी पुरुषार्थ के लिये हमें यह परम दुर्लभ मनुष्य शरीर भगवान् ने दिया है। मनुष्य इस समय संसार रूपी चौराहे पर खड़ा हुआ देखता क्या है कि उसके सामने तीन मार्ग दिखाई देते हैं। वह विचार करता है कि किस मार्ग से मुझे चलना चाहिये, इसका निश्चय कुछ भी नहीं कर पाता। इतने में उसे एक पथ प्रदर्शक दृष्टिगोचर होता है। प्रश्न करने पर पथ प्रदर्शक तीनों मार्गों का परिचय इस प्रकार देता है—यह (१) प्रथम मार्ग देवपुरी अर्थात् स्वर्ग लोक को जाता है, जहाँ जाकर जीव कुछ काल तक बड़े आनन्द से नाना प्रकार के दिव्य भोगों को भोगता है, और भोग समाप्त होने पर फिर यहीं लौट आता है।

(२) दूसरा मार्ग नीचे की ओर जारहा है इसमें भी अनेक प्रकार की (यातनायें) दुःख उठाकर रोते पीटते प्राणी फिर इसी स्थान पर आजाता है।

(३) तीसरा मार्ग जो यह सामने जारहा है इसपर चलने में अनेक प्रकार की कठिनाइयां तो अवश्य हैं, यदि आप शनैः शनैः सब कष्टों को सहन करते हुए मंजिल पर मंजिल मार्ग तय करते जायेंगे तो आप अपने निश्चित स्थान पर पहुँच जायेंगे, और फिर आपको इधर आने की आवश्यकता ही न होगी।

संसार रूपी चौराहे पर सद्गुरु रूपी पथ प्रदर्शक खड़े होकर तीनों मार्गों का परिचय देते हैं। उनपर चलना या न चलना मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है. क्योंकि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। अपनी प्रकृति (जन्म जन्मान्तरों) के संस्कारों के अनुसार उन मार्गों का अनुसरण करता हुआ उनपर चलता है। जीव के लिये ये तीनों मार्ग इस प्रकार हैं—(१) पहला पथ स्वर्ग लोक का है। द्वितीय मार्ग नरक (यमपुरी) अर्थात् दुःख का है। तृतीय मार्ग वैकुण्ठ धाम, ब्रह्म लोक को जाता है।

स्वर्ग लोक में वही जा सकेगा जिसने वेद शास्त्रानुसार दान, धर्म, यज्ञादिक शुभकर्म किये हों, दीन दुखियों की सहायता और उन की सेवा की हो, अनेक प्रकार के पुण्यकर्म करनेवाला जीव ही, कुछ काल तक स्वर्ग सुख भोगने के अनन्तर फिर इसी मृत्यु लोक में आजायेगा, जबकि उनके पुण्यकर्मों की पूँजी समाप्त हो जायेगी। "ते तं भुक्त्वास्वर्गलोकं विशालम् क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति"॥ उस विशाल स्वर्ग लोक के सुख को भोगकर पुण्य समाप्त हो जाने पर जीवात्मा को मनुष्यलोक में कर्म करने के लिये फिर आना पड़ता है।

दूसरा यमपुरी का मार्ग है। इसमें भाँति २ की यातनाएँ जीव को सहनी पड़ती हैं। जो जीव अनेक प्रकार के आसुरी कर्म करते हुए वेदादि धर्म शास्त्र विरोधी भावनाओं से युक्त होकर धर्म और ईश्वरीय आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं।

(शेष फिर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनूठा परिवर्तन

पाँच बज चुके हैं, भोजन लाईये कमला, फिर जाना भी है। हरीश ने कहा।

कमला—कहाँ जाने का प्रोग्राम है आज—क्लब ?

हरीश—प्रकाश टाकी में जगत् खेल देखने के लिये, क्या आप भी चलेंगी कमला ?

कमला—अर्द्धांगिनी क्या पीछे रहेगी।

(दोनों भोजन कर मोटरकार पर प्रकाश टाकी पहुँचते हैं।)

हरीश—कलाकारों ने कमाल किया है सुरैया और मोहिनी का नृत्य देखते-देखते दिल भरता ही नहीं, कल फिर आयेंगे कमला।

(रात साढ़े दस बजे कोठी पर पहुँचते हैं और दोनों सो जाते है)

कमला—उठिये साढ़े आठ बज चुके हैं, आप को आफिस जाना है, और प्रथम स्नानादि से निवृत्त हो कर भोजन भी करना है।

हरीश—साढ़े नौ बजे तक सब काम से निवृत्त हो जाऊंगा, मोटर कार पर दस मिनट का मार्ग दफतर पहुँचने का है।

(हरीश आफिस चला गया)

कमला—आज आप सवा चार बजे ही दफ़्तर से आ गये हैं।

हरीश—बस जगत् खेल आजकल मेरा आवश्यक कार्य है।

कमला—भोजन कीजिये, कपड़े बदल लीजिए, मैं तैयार हूँ चलिए।

(भोजन कर हरीश सिगरेट सुलगा रहा है, टन-टन की आवाज सुन कर, कमला बाहर देखिये हरीश ने कहा।)

कमला—भक्त जी हैं, भक्तजी, वह जो मां बेटा राय बहादुर जोधामल के कार्टरों में रहते हैं।

हरीश—कह दो कल प्रातः साढ़े नौ बजे दफ़्तर जाने के वक़्त मुझे बाहर मोटर गिराज के पास मिले, बेचारा किसी नौकरी के लिये आया होगा।

साहब बहादुर ! मैं भीतर ही आगया हूँ, आप को बाहर आने का कष्ट न हो, मेरा नाम ऊधोराम है (M.S.C.) करके आज कल अध्यात्मविद्या का अध्यन कर रहा हूँ।

कमला—आप की माता को देख कर मुझे बहुत दया आती है, वह बेचारी बाहर से छोटी २ लकड़ियाँ लाती, नहर पर कपड़े धोती, मैंने कई वार सैर करते मोटर कार से उसे देखा है।

ऊधोराम—हाँ हाँ ! यह माता की पवित्र कमाई का ही फल है कि मुझे एम. ए. (M.A.) तक शिक्षा दिलवाई और पश्चिमी शिक्षा से शिक्षित होने पर भी मेरे विचार सत्य परमात्मा की खोज कर रहे हैं। वरना मेरे पिता तो एक साधारण क्लर्क थे और जब मैं पांच वर्ष का था वह स्वर्ग सिधार गये थे।

हरीश—(रिस्ट वाच को देखकर) भक्त जी हमें एक आवश्यक कार्य के लिये जाना है फिर मिलेंगे, आप मेरे स्टैनो से कह जाईए जो आप का काम होगा प्रयत्न करूँगा।

ऊधोराम—नहीं नहीं भगवन् मुझे आप से कोई कार्य नहीं और न ही आप भी किसी आवश्यक कार्य के लिये जा रहे हैं। आपके ड्राईवर ने अभी मुझसे कहा था कि आप सिनेमा जा रहे हैं।

हरीश—हाँ तो ऐसा ही होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊधो—कल प्रातः से एक आध्यात्मिक तत्वज्ञ परमात्मा की खोज करनेवाले सदाचारी सन्त माडेल टाऊन के समाज हाल में पधारे हुए हैं। वह केवल तीन दिन ही यहाँ ठहरेंगे। हम कुछ व्यक्तियों की प्रार्थना पर अभी आठ से नौ बजे तक उनका मनोहर व्याख्यान होगा।

कमला—तो फिर।

ऊधोराम—आप मुहल्ले के बड़े आदमियों में से हैं। ईश्वर की कृपा आप पर भरपूर है। आप भी समाज हाल में दर्शन देवें और धर्म कार्य में हमें उत्साह प्रदान करें।

हरीश—धर्म कार्य से हमें क्या लाभ होगा।

ऊधो—हृदय में सत्य की जाग्रति होगी और सत्य प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होगी।

कमला—भक्त जी, क्या सत्य प्राप्ति के बिना काम नहीं चलेगा।

ऊधो—यह दुखी, दरिद्री, अस्पृश्य, रोगी, शोकी वही लोग हैं, जिन्होंने कभी सत्य का अपमान किया था। सत्य का स्वागत करो यह भी तुम्हारा स्वागत करेगा।

हरीश—दुखी को किसी सुखी का आश्रय लेना चाहिये। दरिद्री को नौकरी या कारोबार करना चाहिए, और रोगी को किसी औषधालय में जाना चाहिए। हम तो इतना ही जानते हैं। क्षमा कीजियेगा भक्तजी, हमारा संसार इससे भिन्न है।

ड्राईवर—हजूर! पौने छः हो चुके हैं कार तैयार है।

(हरीश और कमला मोटर कार पर आरूढ़ हो जाते हैं, नौकर बाहर आँगन की बिजली बुझा देता है और स्वयं भीतर चला जाता है।)

ऊधोराम—प्रभु तेरी जैसी इच्छा, जिसको तू चाहे उसी को अपनी सेवा में लगाये।

(ड्राईवर दोनों को प्रकाश टाकी छोड़ कर वापिस आ जाता है, क्या देखता है कि ऊधोराम बरामदे की सीढ़ियों के पास बेहोश पड़ा है और मुख रक्त से लथपथ हो रहा है)

ड्राईवर—घबराकर कोई है! कोई है! भक्त जी बेहोश और रक्त में लथपथ हो रहे हैं।

(मुहल्ले के लोग एकत्रित हो जाते हैं डाक्टर बुलाया जाता है)

डाक्टर—जरा सिर पर चोट आई है और दो दाँत टूट गये हैं, थोड़ी देर में होश आजायगा घबराने की कोई बात नहीं है।

ऊधोराम—(धीरे से) राम! राम! प्रभो तेरी महान् कृपा।

माँ—मेरा पुत्र! मेरा बेटा, मेरी आँखों का तारा, मेरा जिगर, मेरे प्राण, क्या हुआ था, पुत्र बता तो सही।

ऊधोराम—(संभलकर) माँ तेरे दूध ने मेरी नस-नस में राम का प्रेम भर दिया है। कुछ दिन हुए मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मुहल्ले के अमीर घरानों में जा जाकर अविद्या के रंग में रंगे हुए दिलों को धर्म तथा उपकार की ओर आकर्षित करने, इस पुरुषार्थ और निष्काम सेवा की कृपा से मेरे हृदय में आत्म ज्योति जगमगा उठेगी, और मेरा मनुष्य जीवन प्रभु की इच्छा में समाकर नव जीवन का विलक्षण आनन्द अनुभव कर जगत् के रोम रोम में राम के दर्शन कर इस भवसागर से पार हो जायेगा।

डाक्टर—भक्त जी चोट मामूली है, यह दवाई पी कर दाँतों पर यह टिंचर लगाते रहना शीत जल से परहेज करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(डाक्टर चला जाता है)

(आठ से नौ बजे तक महर्षि सत्यदेव परमात्म प्राप्ति की आवश्यकता पर उपदेश कर चुकने के बाद ऊधोराम से पूछते हैं)

बेटा क्या हुआ था. कहाँ चोट आई है महर्षि ने पूछा।

ऊधोराम—महाराज हरीश बाबू और कमला ज्योंही कार पर बैठे, नौकर ने बिजली बुझादी, मैं बरामदे की सीड़ियों से उतर रहा था आप तक पहुँचने की धुन सवार थी, कुछ और लोगों को भी सत्संग के लिये कहना था, अन्धकार और शीघ्रता के कारण पाँव सीढ़ी से छूट गया और मैं गिर पड़ा। महाराज! कोई बात नहीं है। सत्य परमात्मा सब कुछ देख रहे हैं, वास्तव में वह आप ही सब कुछ करवा रहे हैं। यह भी मेरी परीक्षा थी।

महर्षि—ओ धर्म दिवाने! परमात्मा के सच्चे प्रेमी, तू धन्य है, तेरी जननी धन्य है, तेरा कुल धन्य और महान् है।

ऊधो—महाराज आपके आशीर्वाद की कृपा से मेरा साहस और प्रतिज्ञा धर्मकार्यों उपकार और ईश्वर प्राप्ति के लिये पूर्ण हो।

महर्षि—ऐसा ही होगा बेटा, भगवान् अपने भक्त के योग क्षेम के स्वयं वाहक हैं।

ऊधो—महाराज मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि निष्काम सेवा और परमात्म समर्पण बुद्धि के लिये यदि मेरे प्राण भी चले जाएँ, तो भी मेरी प्रसन्नता पूर्णरूप से बनी रहे।

महर्षि—ओ भोले ठाकुर! वह प्रभु प्राणनाथ जब तेरे पक्ष में होगा तो फिर तेरे प्राण हरण करने वाला संसार में कौन हो सकता है। अर्जुन की तरह अपने जीवन की बागडोर भगवान् के हाथों में सौंप इस धर्म क्षेत्र में युद्ध कर, अधर्म का नाश कर तीन लोक का विजयी हो।

(ऊधो दूसरे दिन प्रातः संध्या से निवृत्त होकर समाचार पत्र देख रहा है)

(चौंककर) ऊधो ने कहा माँ माँ।

माँ—क्यों बेटा क्या हुआ सुख तो है।

ऊधो—माँ मैं जरा हरीश बाबू की कोठी तक जा रहा हूँ, रात को जब वह सिनेमा देखकर मोटर कार से वापिस कोठी पर लौट रहे थे तो मोटर कार की टक्कर एक बिजली के खंभे से हो गई। हरीश बाबू को गहरी चोट आई है। देखो समाचार पत्र में लिखा हुआ है मां।

(इतने में क्वार्टर के बाहर मोटर कार आकर खड़ी हो जाती है)

कमला—भक्त जी! ऊधोराम जी! कृपा कीजिए, जरा हमारी कोठी तक चलिये, बाबू जी आपको याद कर रहे हैं।

ऊधो—देवी कमला! मैं तो जाने को तैयार हो ही रहा था, अभी माँ से कह रहा था, समाचार पत्र से समाचार पाकर दिल बहुत दुखी हो गया है।

(कमला और ऊधो दोनों कोठी पर पहुँच जाते हैं)

ऊधोराम—क्या हरीश जी सो रहे हैं या कि नींद का इंजेक्शन दिया हुआ है और यह घटना कैसे हुई।

कमला—(आँखों में आँसू भरकर) साढ़े दस बजे रात्रि को जगत् पिक्चर देखकर लौट रहे थे तो बाबूजी कहने लगे, सर्दी की वजह से मेरे हाथ सुन्न हो रहे हैं, कार तुम चलाओ। मैं साथ ही सीट पर बैठी हुई थी आजकल के फैशन के अनुसार चलती कार में सीट बदलने का प्रयत्न किया, शीत के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे हाथ भी कांप रहे थे। बिजली के खंभे से टक्कर हो गई मोटर कार तो चूर-चूर हो गई, ये उसी वक्त से बेहोश पड़े हैं मैं इस दुःख को देखने के लिये बच गई हूँ। शहर के प्रसिद्ध डाक्टर बारी-बारी आ रहे हैं। किसी की समझ में नहीं आ रहा है। बाबूजी बड़बड़ाते रहते हैं। न जाने किस संसार में भ्रमण कर रहे हैं।

(हरीश बेहोशी में फिर बड़बड़ाने लगा)

ओ· · ·नादान! यह सुख, ऐश्वर्य, कोठी, मोटर-कार, नौकर चाकर, सुन्दर शरीर, दिव्य यौवन, और धन तुझको इसलिये दिया था कि अपना अमूल्य समय मिथ्या जगत् की छाया को देखने में व्यतीत करे, राम सन्देश लानेवाले के साथ यह बर्ताव कि वह विचारा बरामदे में ही है और रोशनी बिजली बन्द, जिस राम की कृपा से तू इतना भाग्यशाली बना है, उस राम नाम की इस कदर बेकदरी। तू नहीं जानता यह दुखी दरिद्री भिखारी रोगी और शोकी वही लोग हैं जिन्होंने सत्य ईश्वर और ईश्वर के प्यारों की किसी समय बेकदरी की थी। संसार की असारता और मिथ्या जगत् के जंजाल में फंसकर भी जगजाल को अनुभव नहीं करता, प्रायश्चित्त और उपकार के लिये तेरे पास समय ही नहीं है। उठ रामगुण गायन कर, जो सब दुःखों का नाशक और सर्व सुखों की खान है।

कमला—भक्त जी! यही हाल सारी रात से हो रहा है प्रति दस मिनट के पश्चात् यही शब्द बेहोशी में बारम्बार दुहराये जाते हैं आप कृपा कीजिये और बाबू जी को भयानक संसार से छुड़ाकर अपनी दिव्य मूर्ती का दर्शन दीजिए, मैं आपके पांवों पड़ती हूँ।

(शेष फिर)

आपका

अन्तरात्मा हरि ॐ

प्रश्नोत्तर

प्रश्न नं० १—उत्तम साधना कौनसी है?

उत्तर—उत्तम व सात्विक् साधना वह है जो विचार के आधार पर की जावे। जिस विषय की ओर आपके मन की प्रवृत्ति विशेष हो उस विषय की इन्द्रिय को निग्रह कीजिये। उदाहरण—आपका मन रूपाभिकांक्षी है तथा निरन्तर इसका चिन्तन करता रहता है। तो विवेक पूर्वक जानिये कि रूप विषय है और इसकी इन्द्रिय नेत्र है। पुनः नेत्र को रूप दर्शन से निरोध कीजिये। पिछले रूप जो मन में रम गये हैं वे शनैः शनैः स्वयमेव ही नष्ट होजायेंगे और आप इस इन्द्रिय के स्वामी बन जायेंगे। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के प्रति भी समझ लीजिये। इस प्रकार की साधना ही उत्तम साधना है।

प्रश्न नं० २—अध्यात्म साइन्स के आधार पर साधना की आवश्यकता बताइये?

उत्तर—जैसे एक जल कोष (टैंक) के चारों ओर ५ छिद्र हों और जितना जल कोष में आवे वह छिद्रों द्वारा बाहर निकल जावे तो आवश्यकता होने पर कोष में से जल का अभाव हो जायगा। इसी प्रकार मनोकोष में आत्म शक्ति संचित है। ५ इन्द्रियें इस कोष के ५ छिद्र हैं। इन्द्रिय मार्ग द्वारा मन की शक्ति प्रति क्षण क्षीण होती रहती है। इसी कारण मन आत्मिक शक्ति से रिक्त रहता है। यदि इन्द्रिय रूपी छिद्रों को अवरुद्ध कर दिया जाय तो मन शक्ति से परिपूर्ण हो जायगा। ऐसा साधक अपने मनोबल द्वारा जगत् के महान् कार्यों को पूर्ण कर जाता है। यदि आपको भी संसार में महान् पुरुष बनना है तो अवश्य साधक बनिये।

प्रश्न नं० ३—नाम कौनसा जपना चाहिये?

उत्तर—जो सतगुरु ने बताया हो या जिस ईश्वरीय नाम में दृढ़ विश्वास हो।

प्रश्न नं० ४—मैं मुक्त कब हूँगा?

उत्तर—जब तुम शरीर और इसके धर्मों से अनासक्त या मुक्त हो जाओगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sardar Patel Passes away

INDIA PLUNGED IN GLOOM.

Bharat has lost one of the brightest jewels in her diadem. A man of vision, a statesman and diplomat of an enceptionally high calibre, with a force ful and realistic personality, a valiant fighter for the freedom of his motherland, and her best organiser in time of peace. Valour as high as the mountain, and will power as strong as steel, he was a true Karam Yogi.

Air to air, water to water and earth to earth, he has cast off the seventy five year old garment; but the imperishable Atma will continue to shower blessings on his people. The Sardar is dead, long live the Sardar.

सरदार पटेल के देहावसान से भारतवर्ष

शोक सागर में निमग्न

भारत माता फिर एक बार अपने सुयोग्य पुत्र के अवसान पर शोक विह्वल हो बैठी। देश अपनी माला में से एक अनमोल रत्न खो बैठा। वे उच्च कोटि के नीतिज्ञ और तेजस्वी थे। वे मनुष्य जाति में एक चमकीले मोती सिद्ध हुये, स्वतन्त्रता के युद्ध में बलशाली तथा निर्भीक योद्धा बन कर लड़े। शान्ति के समय में देश को अपनी सच्ची सेवायें प्रदान कर उन्होंने भारत को पुनर्जीवित करने का अथक प्रयत्न किया। एक सच्चे कर्म योगी की भाँति वे अपने कर्त्तव्य पर पर्वत के समान अडिग थे। इस्पात से भी दृढ़ उनकी इच्छा शक्ति थी।

यद्यपि उनका पचहत्तर वर्षीय शरीर पंचतत्त्वों में समा गया है, परन्तु उनकी अमर ज्योति-मयी आत्मा अपने देश वासियों पर सदा अमृत वर्षा करती रहेगी।

सरदारजी इस संसार सागर से विलुप्त हो चुके हैं, ईश्वर उनकी भावनाओं को अमर रक्खे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम समाचार

नं० १—प्रति मास के प्रथम रविवार की तरह रविवार ७ जनवरी १९५१ को प्रातः ९॥ बजे से ११॥ बजे तक आश्रम पर सत्संग होगा। रेलवे स्टेशन से सवा आठ बजे प्रातः मँसूरी बसों पर टिकट मिल जाते हैं। आश्रम के लिये अपर क्लास ।।) आना, लोअर क्लास का ।=) किराया है। ई०सी०, द्वारका स्टोर और इम्पीरियल बैंक से आश्रम के लिये बस तैयार होकर प्रातः ८॥ बजे चलती है, बारह बजे इन्हीं बसों पर सत्संगी देहरादून लौट आते हैं।

नं० २—दिसम्बर मास के राम सन्देश पत्रिका में लिखा गया था कि अन्तिम जनवरी या फ़रवरी १९५१ के प्रथम सप्ताह में साधना कोर्स किया जायेगा। राम भक्त और साधना के इच्छुक महानुभावों के पत्र भी आरहे हैं। दिसम्बर मास तथा जनवरी, फ़रवरी तीन मास का कार्य क्रम, तथा प्रति मास के १५ दिन स्वामी जी का बाहर उपदेश यात्रा पर जाने का निश्चित हो चुका है। प्रति वर्ष की भाँति १९५१ मास मार्च या अप्रैल में जब राम कान्फ्रेन्स राम आश्रम में की जायगी तो ७ या ११ साधकों के ठहरने की व्यवस्था आश्रम में की जायेगी। साधना कोर्स के सम्पूर्ण कार्य-क्रम की सूचना पहले देकर साधकों की नामावली मँगवाली जायगी। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दुर्बलताओं पर विचार करना और इनको दूर करने का उपाय करना ही साधना कोर्स का मुख्य तात्पर्य होगा। जिससे कि जीव भ्रम, शोक के समुद्र को पार कर शान्ति के तट पर जा उतरे। स्वामी राम ने कहा है कि अनात्म दृष्टि ही मूल रोग है और आत्म दृष्टि ही इसका एक मात्र उपाय है। इसका पूर्ण तात्पर्य यह होगा कि स्थूल शरीर मानसिक शरीर और कारण शरीर, रोग, अशान्ति और अज्ञान के कारण दुखी हो रहे हैं। इनको आरोग्य करना ही मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।

साधना कोर्स में सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवाले जिज्ञासुओं के नाम ३० जनवरी १९५१ तक आश्रम में पहुँच जाने चाहियें।

साधना कोर्स १५ दिन का होगा। फल, दुग्ध, शाक, भोजन, प्रत्येक साधक के शारीरिक व मानसिक परिस्थिति के अनुसार दिया जायेगा। प्रकृति और ईश्वर के नियमित नियमों को भूलकर ही जीव दुःखित हो रहा है। जब तक आध्यात्मिक विकाश प्राप्त होकर जीव दिव्य दर्शी नहीं हो जाता तब तक सर्व दुःखों की निवृत्ति करके परमानन्द को त्रिकाल में भी प्राप्त नहीं कर सकता।

मंत्री—श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम
राजपुर (देहरादून)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Important Notice.

Many Ram Bhagats had sent monetary assistance for starting "Ram Sandesh". Their names will be given in the February issue of the magazine. We are grateful to them and pray that Rama may bless them and enable them to persevere in their noble resolves. However, there are some Bhagats who besides rendering financial assistance are devoting most of their time and energy in the service of the Ashram. We, therefore, consider it our duty to introduce them to our Readers. They are (1) Mātá Sushila Devi Bhandari, Dehradun, (2) Shrimati Raj Kumari, Dehradun, (3) Kumari Santosh Mehdiratta, Dehradun, (4) Seth Phulchandji, Proprietor Hira Lal Printing Works, Aligarh and (5) Rai Sahib Nand Lal Manchanda, Retired Extra Asstt. Commissioner, Delhi. The Ashram is indebted to these Bhagats. May Rama shower his blessings upon them and may they continue to serve humanity.

2. The third issue of "Ram Sandesh" is in your hands. You would have noticed, it is trilingual. Although Hindi is our national language, there is a considerable number of people who are not yet fully conversant with it. We feel, however, that the treasure of spiritual knowledge should be accessible to all and sundry. For this reason some of the articles are given in English and Urdu. We shall be very grateful, if you would drop us a line expressing your opinion whether we should continue our English and Urdu supplements. If they are useful to you or your friends, then our labour will not be wasted, otherwise we can save that much time and paper and devote them to some other activity of the Ashram. Kindly reply by the middle of January 1951. A little trouble on your part will greatly help us.

HARI OM.

Your Questions Answered.

Q. Which is the best Sadhana, (practice) ?

A. The best and purest Sadhana is one based upon *vichar i.e. Clear Thinking*, in other words, Thought Force. Your mind leans towards a particular object. Prevent it from pining for that object. For example, if your mind craves for a particular beauteous shape or form, then your power of Discrimination will tell you that the instrument for the gratification of this desire is the Eye. Therefore close your eyes. The previous impressions on the mind's plate will gradually grow dimmer and dimmer, till they finally disappear; and you will master this Sense Organ. Similar is the case of the other senses.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Q. What is the necessity of Sadhana according to adhyatmic (spiritual) science?

A. Take a Water Tank or Reservoir with five holes in its sides. If these holes remain open, all the water will go out and in time of need, you will have not a drop. Similarly, the Mind is a tank or reservoir of spiritual force and the five senses are the five holes in it, through which the Force is leaking out. If you close these holes, the Mind Tank will become full. The possessor of such a mind is capable of the most valiant and noble deeds in the world. If you aspire to be such a person, take to Sadhana.

Q. What "Name" should we recite?

A. The one told you by your Guru; or any other Name which appeals to you and in which you have faith.

Q. When will I attain salvation?

A. When you will have complete detachment from the Body and its limitations.

HARI OM.

Ashram News.

1. As before, the Satsang will be held at the Ashram on Sunday, the 7th January, 1951 at 9-30 a.m. You can buy a ticket at the Mussoorie Bus ticket office opposite the Railway Station-upper class -/8/-, lower class -/6/-. A bus also leaves for the Ashram at Dwarka Store E.C. Road and Imperial Bank at 8-30 a.m. Sat sangis return to Dehradun by that bus at 12 noon.

2. It was mentioned in the December issue that Sadhana Course will start in the end of January or first week of February. We are receiving letters in this connection from Ram Bhagats and Jigyasus of Sadhana. The programme of Swamiji's, fortnightly tour for Updesh is ready for the months of December, January and February.

3. As in the past years, the Rama Conference will he held at the Ashram in March or April 1951. Seven to eleven Sadhaks will stay on after the conference. Their names will be invited and complete programme notified. The principal object of the course is to seriously ponder over the physical, mental and spiritual shortcomings in each case and to overcome them, so that the Jeeva may cross the ocean of grief and doubt and find its haven of safety and peace. Swami Rama says "Non-understanding of the Atma is the real malady and Self Realisation its remedy". This means that our physical, mental and causal bodies are suffering on accouut of disease, disquietude and ignorance. The highest goal is to remove them.

The names of Jigyasus for the Sadhana course should reach the Ashram by 30th January 1951.

The Sadhana Course will be of 15 days' duration. Fruit, milk and vegetables will constitute the diet of the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sadhaks according to their bodily and mental requirements. We are in agony because we have forgotten the Divine Laws of Nature. Unless and until we dispel the darkness of ignorance with the aid of the light of spiritual knowledge, we cannot attain Happiness.

Secretary Shri Ram Tirath,

Ashram, Rajpur.

Dr. Paul Brunton, the World-famous Journalist and Writer meets the Maharishee

AT THE

Arunachal Hermitage.

I look full into the eyes of the seated figure in the hope of catching his notice. They are dark brown, medium-sized and wide open.

If he is aware of my presence, he betrays no hint, gives no sign. His body is supernaturally quiet, as steady as a statue. Not once does he catch my gaze, for his eyes continue to look into remote space, and infinitely remote it seems.

It is an ancient theory of mine that one can take the inventory of a man's soul from his eyes. But before those of the Maharishee I hesitate, puzzled and baffled.

The minutes creep by with unutterable slowness. First they mount up to half hour by the hermitage clock which hangs on a wall; this too passes by and becomes a whole hour. Yet no one in the hall seems to stir; certanily no one dares to speak. I reach a point of visual concentration where I have forgotten the existence of all save this silent figure on the couch. My offering of fruits remains unregarded on the small carved table which stands before him.

My guide has given me no warning that his master will receive me as I had been received by the Sage Who Never Speaks. It has come upon me abruptly this strange reception characterized by complete indifference. The first thought which would come into the mind of any European, "Is this man merely posing for the benefit of his devotees?" crosses my mind once or twice but I soon rule it out. He is certainly in a trance condition, though my guide has not informed me that his master indulges in trances. The next thought which occupies my mind, "Is this state of mystical contemplation nothing more than meaningless vacancy? has a longer way but I let it go for the simple reason that I cannot answer it.

There is something in this man which holds my attention as steel filings are held by a magnet. I cannot turn my gaze away from him. My initial bewilderment, my perplexity at being totally ignored, slowly fade away as this strange fascination begins to grip me more firmly. But it is not till the second hour of the uncommon scene that I become aware of a silent, resistless change which is taking place within my mind. One by one, the questions which I have prepared in the train with such meticulous accuracy drop away. For it does not now seem to matter whether they are asked or not, and it does not seem to matter whether I solve the problems which have hitherto troubled me. I know only that a steady river of quietness seems to be

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

flowing near me, that a great peace is penetrating the inner reaches of my being, and that my thought-tortured brain is beginning to arrive at some rest.

How small seem those questions which I have asked myself with such frequency! How petty grows the panorama of the lost years! I perceive with sudden clarity that the intellect creates its own problems and then makes itself miserable trying to solve them. This is indeed a novel concept to enter the mind of one who has hitherto placed such high value upon intellect.

I surrender myself to the steadily deepening sense of restfulness until two hours have passed. The passage of time now provokes no irritation, because I feel that the chains of mind-made problems are being broken and thrown away. And then little by little, a new question takes the field of consciousness.

"Does this man, the Maharishee, emanate the perfume of spiritual peace as the flower emanates fragrance from its petals?"

I do not consider myself a competent person to apprehend spirituality, but I have personal reactions to other people. This dawning suspicion that the mysterious peace which has arisen within me must be attributed to the geographical situation in which I am now placed is my reaction to the personality of the Maharishee. I begin to wonder whether, by some radio activity of the souls, some unknown telepathic process, the stillness which invades the troubled waters of my own soul really comes from him. Yet he remains completely impassive, completely unaware of my very existence, it seems.

Comes the first ripple Someone approaches me and whispers in my ear, "Did you not wish to question the Maharishee?"

He may have lost patience, this quondam guide of mine. More Likely he imagines that I a restless European have reached the limit of my own patience. Alas, my inquisitive friend! Truly I came here to question your master but now I who am at peace with all the world and with myself, why should I trouble my head with questions? I feel that the ship of my soul is beginning to slip its moorings; a wonderful sea waits to be crossed; yet you would draw me back to the noisy port of this world, just when I am about to start the great adventure!

But the spell is broken. As if this infelicitous intrusion is a signal, figures rise from the floor and begin to move about the hall, voices float up to my hearing and wonder of wonders the dark brown eyes of the Maharishee flicker once or twice. Then the head turns, the face moves slowly, very slowly, and bends downward at an angle. A few more moments, and it has brought me into the ambit of its vision. For the first time the sage's mysterious gaze is directed upon me. It is plain that he has now awakened from his long trance.

The intruder, thinking perhaps that my lack of response is a sign that I have not heard him, repeats his question aloud. But in those lustrous eyes which are gently staring at me, I read another question, albeit unspoken.

Can it be—is it possible that you are still tormented with distracting doubts when you have now glimpsed the deep mental peace which you and all men may attain.

The peace overwhelms me. I turn to the guide and answer: "No, There is nothing I care to ask now".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Tablets of Forgotten Truth.

By Dr. Paul Brunton M.A., Ph.D.

Man is grandly related and a greater being suckled him than his mother. In his wiser moments he may come to know this.

Once in the far days of his own past, man took an oath of lofty allegiance and walked turbaned in divine grandeur, with the gods. If today the busy world calls to him with imperious demand and he gives himself upto it there are those who have not forgotten his oath and he shall be reminded of it at the appropriate hour.

There is that in man which belongs to an imperishable race. He negleits his true self almost completely, but his neglect can never affect or alter its shining greatness, He may forget it and entirely go to sleep ? the senses, yet on the day when it stretches forth its hand and touches him, he shall remember who he is and recover his soul.

Man does not put the true valu upon himself because he has lost the divine sense; therefore he runs after another man's opinion, when he could find complete certitude more surely in the spiritually authoritative centre of his own being. The sphinx surveys no earthly landscape. Its unflnching gaze is always directed inwards, and the secret of its inscrutable smile is self-knowledge.

He who looks within himself and perceives only discontent, fraility, darkness and fear need not curl his lip in mocking doubt. Let him look deeper and longer, deeper and longer, until he presently becomes aware of faint tokens and breath-like indications which appear when the heart is still. Let him heed them well, for they will take life and grow into high thoughts that will cross the threshold of his mind like wandering angels, and these again shall become forerunners of a voice which will come later—the voice of a hidden, recondite and mysterious being who inhabits his centre, who is his own ancient self.

The divine nature reveals itself anew in every human life, but if a man walk indifferently by, then the revelation is as seed on stony ground. No one is excluded from this divine consciousness; it is man who excludes himself. Men make formal and pretentious enquiry into the mystery and meaning of life when all the while each bird perched upon a green bough, each child holding its fond mother's hand has solved the riddle and carries the answer in its face. That life which brought you to birth O Man is nobler and greater than your farthest thought; believe in its beneficent intention towards you and obey its subtle injunctions whispered to your heart in half-felt intuitions.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The man who thinks he may live as freely as his unconsidered desires prompt him and yet not carry the burden of an eventual reckoning is binding his life to a hollow dream. Whoever sins against his fellows or against himself pronounces his own sentence thereby. He may hide his sins from the sight of others, but he cannot hide them from the all recording eyes of the gods. Justice still rules the world with inexorable weight though its operations are often unseen and though it is not always to be found in stone-built courts of law. Whoever escapes from paying the legal penalties of earth can never escape from paying the just penalties which the gods impose. Nemesis-remorseless and implacable-holds such a man in jeopardy every hour.

Those who have been held under the bitter waters of sorrow, those who have moved through shadowed years in the mist of tears, will be somewhat readier to receive the truth which life is ever silently voicing. If they can perceive nothing else, they can perceive the tragical transience which attends the smiles of fortune. Those who refuse to be deluded by their brighter houses will not suffer so greatly from their darker ones. There is no life that is not made up of the warp of pleasure and the wool of suffer. Therefore no man can afford to walk with proud and pontifical air. He who does so takes his perambulation at a grave peril. For humility is the only befitting robe to wear in the presence of the unseen gods who may remove in a few days what has been acquried during many years. The fate of all things moves in cycles and only the thoughtless observer can fail to note this fact. Even in the universe it may be seen that every perihelion is succeeded by an aphelion. So in the life and fortunes of man the flood of prosperity may be succeeded by the ebb of privation, health my be a fickle guest, while love may come only to wander again. But when the night of protracted agony dies the dawn of newfound wisdom glimmers. The last lesson of these things is that the eternal refuge in man, unnoticed and unsought as it may be must become what it was once-his solace, or disappointment and suffering will periodically conspire to drive him in upon it. No man is so lucky that the Gods permit him to avoid these two great tutors of the race.

A man will feel safe protected secure only when he discovers that the radiant wings of sublimity enfold him. While he persists in remaining unillumined his best inventions shall become his worst impediments, and everything that draws him closer to the material frame of things shall become another knot he must later untie. For he is inseparably allied to his ancient past, he stands always in the presence of his inner divinity and cannot shake it off. Let him, then not remain unwittiug of this fact but deliver himself, his worldly cares and secret burdens, into the beautiful

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

care of his better self and it shall not fail him. Let him do this, if he would live with gracious peace and die with fearless dignity.

He who has once seen his real self will never again hate another. There is no sin greater than hatred, no sorrow worse than the legacy of lands splashed with blood which it inevitably bestows, no result more certain than that it will recoil on those who send it forth. Though none can hope to pass beyond their sight the gods themselves stand unseen as silent witnesses of man's awful handiwork. A moaning world lies in woe all around them, yet sublime peace is close at hand for all: Weary men, tried by sorrow and torn by doubts, stumble and grope their way through the darkened streets of life, yet a great light beats down upon the paving stones before them. Hate will pass from the world only when man learns to see the faces of his fellows, not merely by the ordinary light of day; but by the transfiguring light of their divine possibilities; when he can regard them with the reverence they deserve as the faces of beings in whose hearts dwells an element akin to that power which men name God.

All that is truly grand in Nature and inspiringly beautiful in the arts speaks to man of himself. Where the priest has failed his people, the illumined artist takes up his forgotten message and procures hints of the soul for them. Whoever can recall rare moments when beauty made him a dweller amid the eternities should whenever the world tires him turn memory into a spur and seek out the sanctuary within. Thither he should wander for a little peace. A flush of strength and a glimmer of light confident that the moment he succeeds in touching his true selfhood, he will draw infinite support and find perfect compensation. Scholars may burrow like moles among the growing piles of modern books and ancient manuscripts which line the walls of the house of learning but they can learn no deeper secret than this no higher truth than the supreme truth that man's very self is divine. The wistful hopes of man may wane as the years pass, and the hope of undying life, the hope of perfect love and the hope of assured happiness, shall ultimately find a certain fulfilment; for they constitute prophetic instincts of an ineluctable destiny which can in no way be avoided.

No dust can ever settle on the grave grandeur of these ancient truth-though they have lain in time since the early days of our race. No people has ever existed but has also received intimations of his deeper life which is open to man. Whoever is ready to accept them must not only apprehend these truths with his intelligence, until they sparkle among his thoughts like stars among the asteroids, but must appropriate them with his heart until they inspire him to diviner action.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

جب یہ اوستھا پراپت ہوجاوے۔ تب وہاں کی کیفیت کو دیکھ سکیں گے۔ یعنی محسوس کر سکیں گے۔

(۳) تیسرا سادھن وہ ہے جو ہم کو Lift کر سکے۔ یعنی پہلے استھان سے اٹھا کر نج گھر پہنچاوے۔ اس کو سنت لوگ بھجن کہتے ہیں۔ بھجن کیا ہے۔ شبد یا نام کا سُننا۔ جو ہر ایک گھٹ میں ہو رہا ہے اسی نام کو رشی منی آکاش بانی کہتے ہیں۔ وید ناد۔ یسوع مسیح Word یا کلام وہ ہم اندر نہ بھی جاویں تب بھی آتا ہے۔ مگر بہت دھیما۔ اتنا کمزور کہ سو سال بھی سنتے رہیں تو ہم کو کھینچ نہیں سکتا۔ ہماری روح ہمارے شریر کے روم روم میں پھیلی ہوئی ہے۔ اسی جگہ بس نہیں بلکہ موہ اور تعلق کی ہزاروں رسیوں کے ساتھ بندھی ہوئی ہے۔ اس کو شبد کیا کر سکتا ہے۔ اس واسطے ستگورو کہتے ہیں کہ جتنے باہر کے بھرم اور موہ ہیں ان کو ست سنگ سے کاٹو۔ ست سنگ سے یہ پرتیت ہو جائے گا کہ دنیا اور دنیا کے سامان فنا پذیر ہیں۔ سوائے ربّ کے ہمارا کوئی نہیں۔ جب یہ خیال پختہ ہو گیا پھر سمرن جلدی فائدہ کریگا۔ جب سمرن کر کے چھیوں چکروں سے اوپر آئے یہ دنیا بھول گئی۔ اس کا ناتا ٹوٹ گیا۔ جب دھیان کے ذریعہ وہاں کھڑا ہونے کی طاقت پیدا کر لی۔ تب ہم شبد کے نزدیک آ گئے۔ اس کے اندر کشش ہے۔ Attraction ہے۔ وہ ہم کو خود بخود کھینچ کر اُدھر لے جائے گی۔ جس سے Grand Trunk Road جیسی سیدھی سڑک ہے۔ اس سڑک پر سیدھے چلے جاؤ تو منزلِ مقصود پر بلا روک ٹوک پہنچ جاؤ گے۔

تو کل جگ میں مکتی کے تین سادھن ہیں۔ سمرن سے روح کو شریر سے الگ کرنا۔ دھیان سے گورو کو پرتیکش کرنا۔ جب گورو پرتیکش ہو گیا پھر وہ ہر وقت ہمارے ساتھ رہے گا۔ آخیر میں شبد یا نام کے ذریعہ اوپر چڑھنا۔ افسوس کہ دنیا اسے باہر ہی باہر تلاش کر رہی ہے۔

पुस्तकालय
080458

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

میں بتاتا ہوں۔ بلکہ آپ کو پہنچا دوں گا۔ لیکن آپ محنت کر کے پردہ کھولیں۔

(۳) نام۔ وہ طاقت جو ساری دنیا کو پیدا کرتی ہے۔ نام ہے۔ مسلمان اس کو بانگِ آسمانی۔ گورونانک شبد یا بانی کہتے ہیں۔ وید ناد کہتے ہیں۔ اُپ نشد اُدگیت۔ جو مکتی دینے والا نام ہے۔ ساری دنیا کا ایک ہی ہے۔ نہ سنسکرتی۔ نہ ہندی نہ ترکی۔ نہ عاربی۔ نہ فارسی۔ نہ کسی اور زبان میں۔ وہ Unwritten law unspoken language ہے لکھنے پڑھنے بولنے میں نہیں آتا۔ وہ ہندو مسلمان سکھ۔ عیسائی سب کے اندر ہے۔ غرضکہ چوروں۔ ڈاکوؤں کے بھی اندر ہے۔ مگر آنکھوں کے پیچھے پردہ لگا ہوا ہے۔ جب تک یہ اندر نہیں جاتا نام کی لذت نہیں لیتا۔ اس کی مکتی نہیں ہوتی۔ نام اندر ہے مگر بند ہے۔ جب تک اس کو پرگٹ نہ کیا جاوے۔ کوئی فائدہ نہیں ہوتا۔ نام ہیرے کی مانند ہے۔ ہیرا پتھر ہے۔ جب تک پہاڑ میں ہے کوئی قدر نہیں۔ جوہریوں کی دوکان پر گیا تو قیمت پڑی۔ سو جب پریمی جن ستگورو کے پاس گئے انہوں نے نام دیا۔ راستہ بتایا۔ انہوں نے محنت کی۔ مکتی ہو گئی۔ مالک مل گیا۔ یہ میٹھا راگ ہے۔ میٹھے سے میٹھا۔ پریمی اس راگ کو سنتے ہیں۔ ان کے لئے یہ قیمتی چیز ہے۔

پس کلجگ میں مکتی کے تین سادھن ہیں۔ اسی طرح اندر جانے کے بھی تین ہی سادھن ہیں۔ یعنی سمرن۔ دھیان اور بھجن۔ (۱) سمرن۔ کسی زبان میں نام کا سمرن کرو۔ پنجابی میں۔ ہندی میں۔ سنسکرت میں۔ انگریزی میں۔ خواہ کوئی اور زبان ہو۔ ایکاگرتا ہو جاوے گی۔ چیتن ستیہ سمرن کے ذریعہ ۹ دروازوں یا ۶ چکروں کو خالی کر کے دونوں آنکھوں کے درمیان اکٹھی ہو جاوے گی۔ یہاں من اور روح جڑے ہوئے ہیں۔ جب روح آنکھوں کے پیچھے آئے گی سمرن کھل جائے گا۔ اندر بجلی جیسی روشنی ہو جائے گی۔ آگے جاؤ گے تارا دکھائی دے گا۔ پھر سورج آئے گا۔ اس کے بعد چندرماں۔ اس کو شمشال کہتے ہیں۔ جب اس سے اوپر جاؤ گے آگے ستگورو کھڑا ہے۔ یہاں تک چندر لوک تک سمرن کا کورس ہے۔ آگے اس کا کام نہیں۔ آگے دھیان ہے۔

(۲) دھیان۔ دھیان گورو کے نوری (سوکھشم) سروپ کا کرنا ہے۔ جو وہاں موجود ہے۔ وہ ہمارا معشوق ہے۔ ہم اس کے عاشق ہیں۔ عاشق جب معشوق کو دیکھتا ہے تو قربان ہو جاتا ہے۔ سوامی رام تیرتھ جی اس مقام کی نسبت یوں فرماتے ہیں۔

گنجِ نہاں کے قفل پہ مہر ہی تو مہر شاہ ہے۔ قفل و مہر کو توڑ کر کنز کو خود نہ پائے کیوں
دیدۂ دل ہوا جو وا۔ کھب گیا حسن دلربا۔ یار کھڑا ہو سامنے آنکھ نہ پھر لڑائے کیوں۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

نام دئے جاتے ہیں۔ تو اسے اس کی پوجا کرنی چاہیئے۔ کیونکہ منزل مقصود سب کی ہی ہے یعنی پرماتما کے چرنوں میں یا پرم پتا کی گود میں جانا ہی ہے۔

سوامی رام تیرتھ جی "رام کی اُپاسنا" میں فرماتے ہیں۔ شریر روپی بگھی میں جیو آتما نے بیٹھ کر بُدھی روپی سائنس دوارا من کی لگام ڈوری سے اندریوں کے گھوڑوں کو ہانکتے ہانکتے آخر جانا کہاں ہے۔ وشنو کے پرم پد کو۔ مُکھیہ تو برہم تتو ہے۔ برہم ساکشات کار بغیر سرگی نہیں۔ اناتم درشٹی دُکھ روپ ہے۔ خوشی خوشی التساہ، پوروک چت میں سنیہہ موہ آدی رکھتے ہو؟ بھیّا کالے ناگ کو گود میں دودھ پلا پلا کر مت پالو۔ ستیہ سروپ ایک پرماتما کو چھوڑ کر اور کوئی وچار من میں رکھتے ہو۔ بندوق کی گولی کلیجے میں کیوں نہیں مار لیتے۔ مارگ میں کہاں تک ڈیرہ ڈالو گے۔ راستہ میں کہاں تک مہمانیاں کھاؤ گے۔ یہاں دنیا سرائے میں ماں تو نہیں بیٹھی ہوئی۔ آرام بھالتے ہو تو چلو رام کے دھام میں۔"

اب رام کے دھام میں ہمیں کون لے جا سکتا ہے۔ صرف وہی آدمی یا انسان پانچ تتوں والا۔ جو رام کے دھام میں آتا جاتا ہو۔ راستہ جانتا ہو۔ جو رام سے مل کر آیا ہو یعنی جو منزلِ مقصود تک پہنچ چکا ہو۔ اُس کو مُکت پُرش۔ رسیدہ یا ست گورو کہتے ہیں۔ ایسے پرم پُرش یا مہاتما کی بیٹری کے ساتھ تار جُڑی ہوتی ہے۔ وہ پاور ہاوس (Power House) یعنی نیج کھنڈ میں جاتا ہے۔ رب یعنی مالکِ کل کے ساتھ باتیں کرتا ہے۔ ہم اس کے پاس کیوں جاتے ہیں۔ اسواسطے کہ ہمارے اندر تار بھی ہے اور بیٹری بھی۔ مگر جُڑی ہوئی نہیں۔ سارا برہمانڈ ہمارے اندر ہے لیکن ہم کو آنکھوں کے پیچھے پردہ لگا کر باہر نکالا ہوا ہے۔ ہم اس مہاتما یا ست گورو سے کہتے ہیں کہ آپ کی بیٹری مالک کے ساتھ جڑی ہوئی ہے۔ ہماری بھی جوڑ دیں۔ آپ روحانی منڈلوں پر جاتے ہیں۔ ہم کو بھی لے چلیں۔ ستگورو کے برابر اونچی ہستی ہم کو دنیا میں کوئی نہیں ملتی۔ اسی لئے گورو نانک صاحب کہتے ہیں۔" اگر اس دنیا پر لاکھوں کروڑوں سورج چندرماں چڑھ جاویں تو باہر روشنی ہو جاوے گی۔ مگر جب آنکھیں بند کرو۔ اندر اندھیرا ہے۔ بنا گورو کی دیا کے اندر روشنی نہیں ہوتی۔" لیکن اگر ان کو پوچھیں آپ گورو ہیں تو وہ کہتے ہیں، نہیں میں گورو نہیں۔ بلکہ آدمی ہوں۔ آپ مجھے دوست سمجھ لیں۔ بڑا بھائی سمجھ لیں۔ استاد سمجھ لیں اور میرے کہنے پر عمل کریں۔ اگر مہاتما برہم پار برہم پر جاتا ہے تو ست گورو ہے۔ گورو اپنے پاس سے کچھ نہیں دیتا۔ بلکہ وہ کہتے ہیں کہ مجھ کو مالک اپنے اندر سے ہی ملا ہے۔ آپ بھی اندر چلیں۔ راستہ آپ کو

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

شاستر کا ایک اور کتھن ہے :-

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोःपदं मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

ارتھ :- دھیان کا مول گورو کی مورتی ہے۔ پوجا کا مول گورو کا چرن ہے۔ منتر کا مول گورو کا واکیہ ہے۔ اور موکش کا مول گورو کی مہر یعنی کرپا درشٹی ہے۔

اس خیال کو لیتے ہوئے ہم کل دنیا کے مسالے کو سامنے رکھتے ہوئے کھوج کرتے ہیں۔ کھوج سے پتہ لگا کہ یہ ساری دنیا پانچ تتوؤں سے بنی ہوئی ہے۔ تتوؤں کے لحاظ سے سرشٹی کی پانچ کلاسیں یا جماعتیں ہیں۔ (لیکن کھاتوں کے لحاظ سے چار)۔ پہلی وہ کلاس ہے جس میں صرف ایک تتو مکمل ہے۔ باقی چار تقریباً ندارد۔ وہ ہیں سبزیات۔ ان میں پانی کا تت پربل ہے۔ اگر من بھر ساگ سکھائیں تو چار یا پانچ سیر ہی رہ جائے گا۔ یعنی ۳۵-۳۶ سیر پانی اڑ گیا۔ باقی ہیں آگ۔ ہوا۔ مٹی۔ آکاش بھی ہے۔ انسان میں پانچوں تت ہیں۔ اگر پانچ تت والا کیول ایک ہی تت والے کو پوجے تو وہ مر کر ایک ہی تت والی جون میں جاوے گا۔ دوسری کلاس میں سانپ۔ بچھو وغیرہ شامل ہیں ان میں آگ۔ ہوا دو تت ہیں۔ اس واسطے یہ زہریلے ہوتے ہیں۔ ان کو پانی کی ضرورت نہیں ہوتی۔ جہاں جنگلوں میں بیس بیس میل تک پانی نہیں ملتا وہاں بھی یہ سارے جانور پائے جاتے ہیں یہ دو تتو والے بھی انسان کے پوجنے کے لائق نہیں۔ تیسری کلاس میں پنچھی ہیں۔ ان میں آگ۔ پانی ہوا تین تت ہیں مگر آدمی میں پانچ۔ اگر ہم کیول پنچھیوں کو ہی پوجیں تو بھی نیچے گریں گے۔ اگلی یعنی چوتھی جماعت میں ہیں پشو۔ ان میں آکاش تتو نہیں باقی ہیں یعنی ان میں بدھی نہیں۔ تمیز نہیں۔ تو منشیہ کیول گائے۔ بھینس کو پوج کر ہی موکش حاصل کرنے کی تمنا کرے۔ یہ عقلمندی نہیں۔ اب ہم اس نتیجہ پر پہنچے کہ آدمی میں پانچ تت پورن ہیں۔ آدمی سے بڑھ کر کوئی رچنا نہیں۔ تو سوال پیدا ہوا کہ آدمی آدمی کو کیوں پوجے۔ پانچوں تت میرے اندر۔ پانچوں آپ کے اندر۔ پانچ ہی اس کے اندر۔ اس کے لئے شاستر کہتے ہیں۔ ماتر دیود بھو۔ پتر دیوو بھو۔ آچاریہ دیود بھو۔

قدرتی قانون کے مطابق بچہ ہو جوان ہو بوڑھا ہو۔ سب کو سب سے پہلے اپنے ماتا پتا کی پوجا کرنی چاہیئے۔ ماتا پتا کے بعد آچاریہ۔ گورو۔ ماسٹر یا استاد کی پوجا کرنی چاہیئے اور جب انسان کو ماتا۔ پتا۔ آچاریہ یا گورو کی کرپا سے یہ معلوم ہو جاوے کہ آدمی کارن۔ آدمی گورو یا پروردگار کے سوا یہ سرشٹی نہیں ہوئی۔ اصلی ماتا پتا گورو سرشٹی کا کرتا ہی ہے۔ جیسے پرمیشور۔ برہم۔ ست پُرش وغیرہ کے

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

سادھن

ہری اوم - اونگ تت ست برہم

(از قلم لالہ سیوارام بکھہ - بی - اے - ایل ایل - بی - گولڈمیڈلسٹ - ایڈووکیٹ دہلی)

ایک شیشیہ گورو سے پرشن کرتا ہے کہ بھگون فرمائیے - مالک کس سادھن سے مل سکتا ہے -

گورو فرماتے ہیں :-

کل جگ میں مالک کے ملنے کے تین ہی سادھن - یا راستے - یا دھارا ہیں -

(۱) ست سنگ - (۲) ستگورو (۳) نام یا شبد یا Power

(۱) ست سنگ - اس میں آکر ہمارے سب بھرم دور ہو جاتے ہیں - اس لئے ست سنگ سب سے ضروری ہے - ست سنگ اس مہاتما کا ہونا چاہئے جو روحانی منڈلوں پر جاتا ہو - جو اندر نہیں گیا - اس کا ست سنگ کیا فائدہ دے گا "کچھ نہیں" - جہاں بحث مباحثے - لڑائیاں - جھگڑے ہوں - جنگ و جدل ہوں - وہ ست سنگ نہیں - گورو نانک صاحب کہتے ہیں - ست سنگ ادتھے جانئے جتھے اِکو نام بکھانئے -
جہاں روحانی چڑھائی کا ذکر اور نام کی مہما ہے - وہ ست سنگ ہے -

(۲) ستگورو :- جب ست سنگ میں آکر ہمارے سارے بھرم دور ہو جائیں پھر ہم کو ستگورو کی کی ضرورت پڑتی ہے - ستگورو کی ضرورت کیوں ہے - یہ بڑا ضروری سوال ہے - کیونکہ ہمارے درشن بھکتی اور پوجا کے لئے ستگورو کے سوا اور کوئی چیز نہیں - گیتا ادھیائے ۹ شلوک ۳۴ میں بھگوان شری کرشن فرماتے ہیں -

मन मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु

मामवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत परायणः

ارتھ - اپنا من مجھ میں قائم کرو - میری بھگتی کرو - میرے نمت یگیہ کرو - مجھ کو نمسکار کرو - اس طرح آتما کو مجھ میں جوڑ کر میرے طالب ہو کر - تم مجھ سے وصل کرو گے -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

آشرم سماچار

۱- ہر ماہ کے پہلے اتوار کی طرح اتوار ۷ر جنوری سنہ ۱۹۵۱ء کو صبح ۹½ تا ۱۱½ بجے آشرم پر ست سنگ ہوگا۔ اسٹیشن ریلوے سے ۸¾ بجے مصوری بسوں پر ٹکٹ مل جاتے ہیں۔ آشرم کے لئے اپر کلاس ۸ر اور لوئر کلاس ۶ر کرایہ ہے۔ ای سی روڈ دوار کا اسٹور اور امپیریل بنک سے آشرم کے لئے بس تیار ہو کر ۸½ بجے صبح چلتی ہے۔ ۱۲ ر بجے انہیں بسوں پر ست سنگی ڈیرہ دون لوٹ آتے ہیں۔

۲- ماہ دسمبر کے پتر میں لکھا گیا تھا۔ کہ جنوری آخر یا فروری سنہ ۱۹۵۱ء کے پہلے ہفتہ میں سادھنا کورس کیا جاوے گا۔ رام بھگت اور سادھنا کے ضرورت مند اصحاب کے پتر بھی آ رہے ہیں۔ ماہ دسمبر۔ جنوری فروری تین ماہ کا پروگرام ہر ماہ کے آخری پندرہ دن سوامی جی کا باہر اپدیش یاترہ پر جانے کا بن چکا ہے۔ ہر سال کی طرح سنہ ۱۹۵۱ء ماہ مارچ یا اپریل میں جب رام کانفرنس رام آشرم پر کی جائے گی تو ۲۰ یا ۱۱ سادھکوں کو آشرم پر ٹھہرالیا جاوے گا۔ سادھنا کورس کے پورے پروگرام کی اطلاع پہلے دے کر سادھکوں کے نام منگوا لئے جائیں گے۔ شاریرک۔ مانسک اور ادھیاتمک کمزوریوں پر وچار کرنا اور ان کو دور کرنے کے اپائے کرنا ہی سادھنا کورس کا مکھیہ ارتھ ہوگا۔ تاکہ جیو بھرم اور شوک کے ساگر کو تیر کر شانتی کے گھاٹ پر جا اترے۔ سوامی رام نے کہا ہے کہ اناتم درشٹی ہی مول روگ ہے اور آتم درشٹی ہی اس کا مکمل علاج ہے۔ اس کا صاف مطلب یہ ہے کہ استھول شریر۔ مانسک شریر اور کارن شریر۔ روگ۔ اشانتی اور اگیان کے کارن دکھی ہو رہے ہیں۔ ان کو آروگیہ کرنا ہی منش جیون کا سب سے اچیہ لکش ہے۔ سادھنا کورس میں شامل ہونے کی خواہش رکھنے والے جگیاسوؤں کے نام ۳۰ر جنوری سنہ ۱۹۵۱ء تک آشرم میں پہنچ جانے چاہئیں۔

سادھنا کورس ۱۵ر دن کا ہوگا پھل۔ دودھ۔ سبزی۔ بھوجن ہر سادھک کی شاریرک و مانسک حالت کے انوسار دیا جاویگا۔ قدرت ایشور کے بنائے نیموں کو بھول کر ہی جیو دکھی ہو رہا ہے۔ جب تک روحانیت کی روشنی حاصل کر کے روح جہالت کے اندھیرے سے باہر نہیں ہو جاتی تب تک کبھی بھی سکھ نہیں ہو سکتا۔

سیکریٹری۔ شری رام تیرتھ آشرم۔ راجپور۔ ڈیرہ دون۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

سوال و جواب

سوال ۱۔ اُتم سادھنا کونسی ہے۔

جواب۔ اُتم وساتوک سادھنا وہ ہے، جو وچار کے آدھار پر کی جاوے۔ جس وِشے کی طرف آپ کا من زیادہ جاتا ہو۔ اُس وشے کی اندری کو روکئے۔ مثلاً آپ کا من روپ کو چاہتا ہے۔ اور ہمیشہ اُس کی یاد کرتا ہے۔ تو ویک سے جانئے کہ روپ وشے ہے اور اس کی اندری نیتر ہے۔ پھر آنکھ کو روپ دیکھنے سے بچائیے پچھلے روپ جو من میں سمائے ہوئے ہیں۔ آہستہ آہستہ وہ خود بخود زائل ہو جائیں گے۔ اور آپ اس اندری کے سوامی بن جائیں گے۔ اس طرح باقی بھی چار اندریوں کے متعلق بھی سمجھ لیجئے۔ اس طرح کی سادھنا ہی اُتم سادھنا ہے۔

سوال ۲۔ ادھیاتم سائنس کے مطابق سادھنا کی ضرورت بتائیے۔

جواب۔ جیسے ایک پانی کے ٹینک کے چاروں طرف پانچ سوراخ ہوں اور جتنا پانی ٹینک میں آوے وہ سوراخوں کے ذریعہ باہر نکل جاوے۔ تو ضرورت کے وقت ٹینک میں سے پانی نہ مل سکے گا۔ اسی طرح من روپی ٹینک میں آتم شکتی جمع ہے۔ پانچ اندری اس ٹینک میں پانچ سوراخ ہیں۔ اندریوں کے راستہ من کی شکتی ہر وقت زائل ہوتی رہتی ہے۔ اسی کارن من آتم شکتی سے خالی رہتا ہے۔ اگر اندری روپی سوراخوں کو بند کر دیا جاوے تو من شکتی سے بھرپور ہو جاوے گا۔ ایسا سادھک اپنے منوبل سے دنیا میں بڑے بڑے کام کر جاتا ہے۔ اگر آپ کو بھی دنیا کا بڑا انسان بننا منظور ہو، تو اوشیہ سادھک بنئے۔

سوال ۳۔ نام کونسا جپنا چاہئے۔

جواب۔ جو ست گورو نے بتایا ہو۔ یا جس ایشوری نام میں درڑھ نشچے وشواس ہو۔

سوال ۴۔ میں مکت کب ہوں گا۔

جواب۔ جب تم شریر اور اس کے دھرموں سے اناسکت یا مکت ہو جاؤ گے۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ضروری اطلاع

۱- کئی رام بھگتوں نے روپیہ کے ذریعہ رام سندیش پتر کو جاری کرنے سے پہلے مدد بھیجی تھی۔ اُن کے شبھ نام ماہ فروری ۱۹۵۱ء کے سندیش میں آپ پڑھیں گے۔ ہم ان کے ازحد مشکور ہیں۔ رام اُن کو اِس قابل بنائے رکھیں۔ کہ وہ شبھ کاموں میں اِسی طرح سہایتا دیتے رہیں لیکن کچھ رام بھگت شریہ ایسے ہیں۔ جنہوں نے مالی امداد کے علاوہ تن۔ من اور وقت کی بہت زیادہ سہایتا دی ہے۔ جن کے نام سے آگاہ کرانا ضروری ہے۔

(۱) ماتا شوشیلا دیوی بھنڈاری ڈیرہ دون (۲) شریمتی راجکماری ڈیرہ دون
(۳) کماری سنتوش مہدی رتہ ڈیرہ دون (۴) رائے صاحب نندلال جی منجندہ ای۔ اے سی رٹائرڈ دہلی۔

(۵) سیٹھ پھولچند جی دواوشش تیرتھی اینڈ کمپنی لمیٹڈ علی گڑھ۔

اِن شریوں کا شری رام تیرتھ مشن آشرم ازحد ممنون و مشکور ہے۔ پیارے رام سے پرارتھنا ہے کہ اِن کا جیون شبھ کاموں میں لگا رہے اور اس کے بدلہ میں ان کو سُکھ۔ شانتی پراپت ہو۔

۲- آپ یہ تیسرا رام سندیش پتر پڑھ رہے ہیں۔ ہندی زبان جو کہ دیش بھاشا ہو چکی ہے کئی ایک لوگ ابھی اس کو پوری طرح پڑھ سمجھ نہیں سکتے۔ ادھیاتم وِدّیا سے سب کسی کو جانکاری ہونی چاہیئے۔ جو کہ انسان کی انتہائی منزل ہے۔ اس لئے کچھ مضمون اُردو اور انگریزی میں لکھے جا رہے ہیں۔

کیا آپ تین پیسے کا پوسٹ کارڈ لکھ کر ہمیں اطلاع دے سکیں گے کہ اُردو، انگریزی میں اُپدیش بھیجے جاویں یا ان کی کوئی ضرورت نہیں ہے۔ اگر ان سے آپ کو یا آپ کے سجنوں، متروں کو فائدہ ہو تو بہتر۔ ورنہ کاغذ اور پیسے کو کیوں ضائع کیا جاوے اور اِس سے بچا ہوا روپیہ مشن کے کسی دوسرے کام میں خرچ کیا جائے۔ ۱۵ جنوری ۱۹۵۱ء تک آپ کی جانب سے ضرور جواب پہنچ جانا چاہیئے آپ کی تھوڑی تکلیف سے ہمارا بہت فائدہ ہوگا۔

آپ کا اپنا آپ
ہری اوم

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम भजन नं० १

यह सैर क्या है अजब अनोखा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ।
बग़ैर सूरत अज़ब है जलवा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥१॥
मुरक़्क़ये-हुस्नो इश्क़ हूँ मैं, मुझी में नाज़ो-नेयाज़ सब हैं।
हूँ अपनी सूरत पै आप शैदा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥२॥
ज़माना आईना राम का है, हर एक सूरत से है वह पैदा।
जो चश्मे-हक़ बी खुली तो देखा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥३॥
वह मुझ से हर रंग में मिला है, कि गुल से बू भी कभी जुदा है।
हुबाबो-दरिया का है तमाशा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥४॥
सबब बताऊँ मैं बज्द का क्या, है क्या जो दरपर्दा देखता हूँ।
सदा यह हर साज़ से है पैदा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥५॥
बसा है दिल में मेरे वह दिलबर, है आईने में ख़ुद आईना-गर।
अज़ब तहय्युर हुआ यह कैसा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥६॥
मुक़ाम पूछो तो लामकाँ था, न राम ही था न मैं वहाँ था।
लिया जो करवट तो होश आया, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥७॥
अललतवातुर है पाक जलवा, कि दिल बना तूरे-बर्क़-सीना।
तड़प के दिल यूँ पुकार उट्ठा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥८॥
जहाज़ दरिया में और दरिया, जहाज़ में भी तो देखिये आ।
यह जिस्म किश्ती है राम दरिया, है राम मुझ में, मैं राम में हूँ ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्ज़िले मक़सूद

ले० एम. कंवर बकाया हिन्दूसभा हाईस्कूल अमृतसर

अब न दुनिया में ख़ुशी कोई न ग़म पाता हूँ,
बेख़ुदी में सारा आलम, कालअदम पाता हूँ मैं।
हो गईं रुख़सत उमंगें ज़िन्दगी जाती रही,
ख़ाहशाते ज़िन्दगी में अब न दम पाता हूँ मैं ॥१॥
ज़िन्दगी का ख़ातमा हो मन्ज़िले मक़सूद है,
ज़िन्दगी में मौत को कितना एहम पाता हूँ मैं।
ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली है वर्ना बेहतर मौत है,
ज़िन्दा दिल क्यों न बनूँ क़ुर्बे सनम पाता हूँ मैं ॥२॥
वह सनम माशूक़े अज़ली मेरा अपना आप है,
अब तो अपनी ज़ात में लुतफ़ो कर्म पाता हूँ मैं।
हुस्न और उलफ़त तो गोया लाज़मो मलज़ूम हैं,
एक मरकज़ पर बहम दैरो हर्म पाता हूँ मैं ॥३॥
ज़ाते हक में जो कशश है हो नहीं सकती बयाँ,
जब ख़्याल आता है अपने सर को ख़म्म पाता हूँ मैं।
ज़र्रे-ज़र्रे से अनलहक़ की सदा आती है तब,
जिस तरफ़ देखूँ कंवर अपना सनम पाता हूँ मैं ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

राम सन्देश

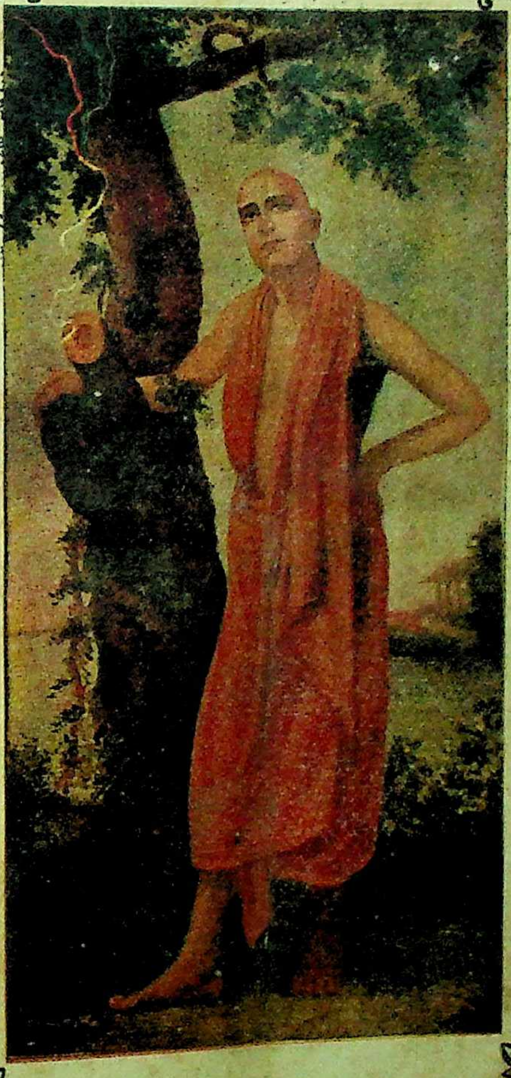

मार्च १९५१
वार्षिक मूल्य ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम
राजपुर, देहरादून

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥
भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥

विषय सूची

	विषय		पृष्ठ
१.	आवश्यक सूचना		आरम्भ में
२.	स्वामी राम का विचित्र जीवन	···	१
३.	(रामहृदय) Heart of Rama	···	४
४.	उपनिषद् ज्ञान ···	···	६
५.	श्री शंकराचार्य कृत विवेक चूड़ामणि	···	१०
६.	लाल की पहिचान	···	१३
७.	ज्ञान के रंग में कर्म और उपासना	···	१४
८.	स्थिर मन ही ईश्वर प्राप्ति का रहस्य है	···	१७
९.	वशीभूत मन ही ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन है		१८
१०.	स्वामी जी के उपदेश	···	२०
११.	आश्रम समाचार व प्रश्नोत्तर	···	२२
१२.	उर्दू लेख		१—८
१४.	भजन कवर टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर		
१५	ज्ञान की होली ,, ,, चौथे ,, ,,		

सम्पादक :—
हरिओ३म् जी
सेवक, श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम,
(राजपुर) देहरादून

सेठ फूलचन्द द्वादशश्रेणी
गवर्निङ्ग डाइरेक्टर
पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड कं०, लि०
पबलिशर्स ऐण्ड बुकसेलर अलीगढ़ ने
अपने प्रेस में छपवाया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचना

श्री रामतीर्थ अखिल भारतीय अध्यात्म सम्मेलन

——:o:——

नं० १—श्री रामतीर्थ अखिल भारतीय अध्यात्म सम्मेलन ता० १३,१४, १५ अप्रैल १९५१ ई० शुक्रवार, शनिवार, रविवार को तीन दिन के लिये श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम राजपुर (देहरादून) में होना निश्चित हुआ है।

यह सम्मेलन इससे पूर्व मुरालिवाला, अमृतसर, ग्वालियर, देहली और देहरादून में भी हो चुका है। स्वामी रामतीर्थ, स्वा० विवेकानन्द, जगत्गुरु शंकराचार्य, गुरु नानक देव और अन्य ऋषियों तथा अवतारों ने समय-समय पर संकटमय संसार को जो सुख और शान्ति का मार्ग दिखाया उस पर प्रकाश डाला जायेगा। इस सम्मेलन में वर्तमान काल के भारतीय विद्वान् आत्मवेत्ता तथा अध्यात्म फिलांस्फर अपने अनुभव, युक्तियों तथा प्रमाणों से सिद्ध करेंगे कि अविद्या का नाश केवल विद्या से ही हो सकता है। जब तक भारत अथवा संसार में आत्म-सुख रूपी सूर्य उदय नहीं होता तब तक आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियों से छुटकारा नहीं हो सकता। प्रकृति की आसुरी शक्तियों का प्रतिरोध आत्म-बल और आत्म-तेज ही कर सकता है।

हमारी यह प्रार्थना है कि आप अवश्य यहाँ पधारें। किन्तु आपका भी यह कर्तव्य है कि आप इस महान् ब्रह्मयज्ञ में सम्मिलित होकर अपनी असंगता और अहंता से भरपूर पापों तथा दोषों की आहुति देवें और तन, मन, धन से इस आत्म-सम्मेलन को सफल बनाकर अध्यात्म पुण्य और लाभ प्राप्त करें।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्म दानं विशिष्यते ॥

संसार में जितने भी उत्तम दान हैं उनमें सर्वोत्तम दान ब्रह्म (विद्या) दान कहा गया है। हमें आशा है कि इस अति उत्तम यज्ञ में आप अवश्य पधारेंगे तथा इससे प्रत्यक्ष पुण्य का लाभ प्राप्त करेंगे और करावेंगे।

नं० २—साधना-कोर्स का कुछ स्वरूप फरवरी मास के "रामसन्देश" में दिया गया था जो कि रामभक्तों ने पढ़ लिया होगा। साधना-कोर्स में सम्मिलित होनेवाले प्रेमियों को पृथक्-पृथक् पत्र लिख दिये जावेंगे।

जिन पाँच साधकों को पत्र लिखे जावेंगे वह २५ अप्रैल सन् ५१ सायंकाल तक आश्रम पर पहुँच जाएँ जिससे कि कोर्स २६ अप्रैल वृहस्पतिवार को प्रारम्भ हो सके। कोर्स २६ अप्रैल से ६ मई तक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नं० ३—जनवरी के "रामसन्देश" में लिखा गया था कि जिन राम-प्यारों ने २५) पहले "रामसन्देश" पत्रिका के लिये दिये थे उनकी पूरी नामावली हमारे पास नहीं है। अतः निवेदन है कि कृपा करके ऐसे सज्जन अपना नाम लिखकर हमें अवश्य भेजदें, जिससे कि आगामी मास की पत्रिका में उनके नाम लिखे जा सकें।

नं० ४—राम प्रेमियों को विदित होगा कि आश्रम की बिल्डिंग ता०..............को खरीदी गई थी, उस वक्त अल्प समय के कारण निश्चय न हो सका कि बिल्डिंग किसके नाम रजिस्ट्री कराई जाय, जो सत्संगी उस समय उपस्थित थे, उनकी यह सम्मति हुई कि इस समय रजिस्ट्री श्री स्वामी जी के नाम करादी जाय। इसके अनन्तर विचार विनिमय किया जायगा कि भविष्य में किस प्रकार समुचित कार्य किया जाय, अतः उस समय ऐसा ही किया गया।

किन्तु अब कई महीनों से श्री स्वामीजी कह रहे हैं कि आश्रम की रजिस्ट्री किसी राम-समिति के नाम होनी चाहिये। उनका कथन है कि "हम सन्यासी हैं, जायदाद रखना या धन संग्रह आदि हमारा धर्म नहीं। दो-ढाई वर्ष से हमने यह भार अपने ऊपर उठाया हुआ है, अब समय है तथा उचित भी यही है कि हमें इस भार से विमुक्त किया जाय। और सत्संगी महानुभाव कोई कमेटी बनाकर इसकी देख-रेख और प्रबन्ध अपने निरीक्षण में ले लें। आश्रम की रजिस्ट्री भी उचित रूप से कमेटी के नाम होजाय।" साथ ही वे यह विश्वास भी दिलाते हैं कि हम यथा शक्ति सेवा पूर्ववत् करते रहेंगे।

उपरोक्त लिखित विचार स्वामी जी का केवल नियम के आधार पर है। इसलिये सर्व सत्संगियों से प्रार्थना है कि वह हमें शुभ सम्मति दें, जिससे कि हम इस कार्य को भली प्रकार कर सकें।

मंत्री
श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम
राजपुर (देहरादून)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् , पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय , पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ओ३म्

जाग्रदादि त्रयोन्मुक्तं जाग्रदादिमयं तथा ।
ओङ्कारैक सुसंवेद्य यत्पदं तन्नमाम्यहम् ॥

राम सन्देश

द्वितीय वर्ष	मार्च १९५१	अङ्क ३

"स्वामी राम का विचित्र जीवन"

(आश्रम की ओर से)

कृष्ण-भक्ति—स्वामी राम की कृष्ण-भक्ति के सम्बन्ध में स्वामी 'नारायण' (जो उन दिनों राम के घनिष्ठतम सम्पर्क में थे) इस प्रकार लिखते हैं ।

"स्वामीजी रात दिन कृष्ण के ध्यान में मग्न रहते थे । अपने प्यारे कृष्ण का नाम सुनते ही तन की सुधि भूल जाते थे । यदि कहीं से वंशी की मधुर ध्वनि उनके कर्णगोचर होजाती, तो उन्हें यही भ्रम होता कि मेरे प्रियतम भगवान् कृष्ण ही विश्व-मोहिनी वंशी बजा रहे हैं । लाहौर में वे घंटों रावी नदी के तट पर अपने प्रभु भगवान् कृष्ण के ध्यान में मग्न हुए भ्रमण करते रहते थे । उन्हें कुछ भी न सूझता था । वे सदा गम्भीर स्थिति में रहते थे ।"

उनके एक दूसरे समीपवर्ती मित्र ने राम के ध्यान के बारे में मुझे इस प्रकार बताया था कि "एक समय मैंने स्वामी राम को रावी के तट पर देखा जबकि गगन-मण्डल में भूरे बादल छाये हुए थे। स्वामी राम जोर-जोर से चिल्ला रहे थे । देखो, देखो, वही तो, वही तो मेरा कृष्ण है । ऐ भूरे रंगवाले बादल ! (मेरे ईश्वर) मेरे कृष्ण का रंग भी तेरे जैसा है । तू क्यों मुझे पागल बना रहा है । तूने क्यों मेरे कृष्ण को छिपा रक्खा है, ओ कृष्ण ! तू कहां है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ बादल ! तू मुझे उसका पता क्यों नहीं देता। तू तो आकाश में उड़ रहा है; क्या तुझे मुझसे अधिक पता नहीं ? बतादे, मुझे बतादे, मेरा कृष्ण कहाँ छिपा है। ओ हो !! तू भी काला होता जाता है। ऐ बादल ! क्या सचमुच तुझे मेरे कृष्ण का पता नहीं ? क्या तू भी उसी के वियोग में काला पड़ता जाता है ? अरे भगवान् ! क्या मुझे तेरे दर्शन न होंगे ? दुनिया मुझे काटने दौड़ती है और तू दिखाई भी नहीं देता। बता कहाँ जाऊँ और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ। अरे कृष्ण ! तेरे लिए ही मैंने झूठा आदर और झूठी लज्जा छोड़ी। तेरे लिए ही तो मैंने अपने सगे-सम्बन्धी और इष्ट मित्र छोड़े पर तू है कहाँ। बादलों को फटता हुआ देखकर राम फिर रो पड़े। ऐ बादल ! तुम तो मेरे भाई हो ! जाते हो तो जाओ, पर मेरे कृष्ण से अवश्य कहना कि आकर देखें तो सही राम की आँखों से कैसी झड़ी लगी है। देखो, उससे यह कहना मत भूलना कि—

यदि लूटना हो तुझे वर्षा का मज़ा—
तो आ मेरी आँखों में बैठ
यहाँ काले, भूरे और लाल तरह-तरह के बादल
सदा झड़ी लगाये रहते हैं।

ओह मेरे जीवन ! कितना लम्बा, कितना बड़ा है तू। मैं तो अधीर हो रहा हूँ। हे कृष्ण ! या तो मेरी प्यास बुझा या फिर मुझे मार डाल। तू सूर्य को चमक देता है और चन्द्रमा को सौन्दर्य, फूलों को सुन्दर रंग तथा सुगन्ध, फिर मुझे दर्शन और ज्ञान देने में क्यों कृपण बनता है" इसी प्रकार कृष्ण, कृष्ण रटते हुए वे अन्त में भावावेश में अचेतन होगये।

अपने भावोद्रेक में अतिशय आनन्द के मारे उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी। एक बार किसी पंडित को रामायण पढ़ते हुए सुनकर वे ज़ोर से रो पड़े। उनके ऊपर उस कथा का ऐसा वेदना-पूर्ण प्रभाव हुआ कि अंत में पंडितजी को अपनी कथा समाप्त करनी पड़ी।

एक दिन राम चिल्ला उठे—

अरी आँखो ! तुम्हारा क्या होगा ? यदि कृष्ण के दर्शन नहीं कर सकतीं, तो बन्द हो जाओ, सदा के लिए मुँद जाओ। ओ भुजाओ ! यदि तुमने भगवान् के चरण कमलों का स्पर्श नहीं किया, तो फिर मेरे किस काम की हो ? सूख जाओ, लुंज-पुंज क्यों नहीं हो जातीं। हे प्रभु ! यदि जीवन के बलिदान से ही तुम्हारे दर्शन होते हैं, तो ये प्राण भी तुम्हें भेंट हैं। ऐसा कहकर वे रोने लगे, आँसुओं की झड़ी लग गई, शरीर के वस्त्र सब भीग गये, यहाँ तक कि अंत में शरीर की सुधि भी जाती रही। जब चैतन्य हुए तो एक काले नाग को फण फैलाये अपने सामने देखा। फिर क्या था, झट से उसकी ओर लपके— हे प्रभु ! आओ, आओ, नाग के रूप में ही दर्शन दो। किन्तु हे प्रभु ! मैं तो तुम्हारा वह सौन्दर्य देखना चाहता हूँ, जिस पर गोपिकायें पतंगों की भाँति झपटती थीं इतना कहना था कि फिर अचेतन होगये। उनके उस मित्र ने, जो यह सब खेल देख रहे थे, कमरे में आकर कहा—गोस्वामी जी ! कृष्ण तो आपके हृत्कमल में ही विराजमान हैं आप किसे ढूँढ़ रहे हैं।

उन्मत्त की भाँति वे चिल्ला उठे—मुझमें ! और कमीज को चीर फाड़कर, अपने नाखूनों से अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाती नोचने लगे। और फिर बेसुध हो गये घंटों उसी प्रकार अचेत पड़े रहे।

स्वामी नारायण कहते हैं कि उन्हीं दिनों एक बार मैंने राम को यह कहते सुना था—"धन्य हूँ मैं आज मैंने कृष्ण के दर्शन कर पाये। वे आये, जब मैं नहा रहा था मैंने उनकी पूरी झाँकी देख ली। किन्तु आये और चले गये, इस दुःखित का घाव हरा होगया। अब उनके बिना चैन कहाँ ?" उन दिनों स्वामी जी को देखकर सूरदास और मीराबाई की याद आती थी। स्वामी राम ने मुझे एक बार अपने विद्यार्थी जीवन का ऐसा अनुभव सुनाया था कि—एक रात को राम ने उच्च गणित के कुछ बहुत ही कठिन और जटिल प्रश्न हल करने के लिए उठाये और मन में यह प्रण कर लिया कि सूर्योदय के पहले ही इन सब का उत्तर निकाल लूँगा। और यदि उत्तर न निकाल सका, तो सिर को तन से पृथक् कर दूँगा। इसी अभिप्राय से राम ने अपने आसन के नीचे एक तेज़ छुरा भी रख लिया। निःसन्देह राम का यह काम उचित नहीं कहा जा सकता।

किन्तु सही हो या ग़लत राम तुम्हें बताना चाहता है कि ऐसी ही कठोर साधना से राम ने उस ज्ञान का सम्पादन किया है जो तुम इस समय उसके पास देखते हो। अच्छा ! सुनो, उन चार प्रश्नों में से तीन प्रश्न तो आधी रात तक हल हो गये। किन्तु चौथा प्रश्न बड़े चक्कर में डाले हुए था। राम उसे किसी प्रकार हल न कर सका और उषा की प्रथम रश्मियां वातायन से झाँकने लगीं। अपने प्रण का पक्का राम उठा और तेज़ खंजर लेकर मकान की छत पर जा चढ़ा। इतना ही नहीं, उसने खंजर की बारीक नोक गर्दन पर रख भी दी। खंजर का रखना था कि उसने तुरन्त थोड़ी सी खरोंच बनादी। और बूँद-बूँद करके लोहू टपकने लगा किन्तु लो, राम हक्का-बक्का रह गया जबकि प्रश्न का हल आकाश में सुनहले अक्षरों से लिखा हुआ चमकता दीख पड़ा। राम ने उसे देखा और नीचे आकर काग़ज़ पर प्रश्न का हल लिख लिया। शायद उससे अधिक मौलिक कार्य कभी न हुआ हो। गवर्नमेंट कॉलेज के प्रोफ़ेसर मुकर्जी तो आश्चर्य में डूब गये। राम ने ऐसा अनेक बार किया था और ऐसे ही कठिन परिश्रम के द्वारा उन्होंने गणित का अगाध ज्ञान सम्पादन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन श्री आर० ऐस० नारायण स्वामी द्वारा स्वामी राम के चुने हुए अमूल्य वचनामृत

"Heart of Rama"

To Realize God, you must have the true vaishya spirit, holding your property only in trust for the nation.

रामहृदय—परमात्म के अनुभव के लिये आवश्यक्ता है अपने में सच्चा वैश्य भाव लाने की अर्थात् अपने धन को सदैव राष्ट्र की धरोहर समझने की।

व्याख्या—शास्त्र वैश्य धर्म का निरूपण करते हुए वैश्य जाति को आदेश देते हैं कि "इस का जातीय धर्म व्यवहार करना और धनोपार्जन करना है। वर्तमान युग में जो भी लोग व्यवहार रूप से धन संचय किये हुए हैं, उनका धर्म है कि वह राष्ट्र के हितार्थ उसे व्यय क । यह धन वास्तव में राष्ट्र का ही है।" जापान देश में छोटे बालकों को अध्यापक वर्ग पाठशाला में इस प्रकार की शिक्षा देते हैं—प्यारे बालको! तुम्हारा शरीर कहाँ से उत्पन्न हुआ। बालक उत्तर देते हैं, माता पिता के वीर्य और रज से। माता-पिता को शरीर पोषण के लिये रस कहाँ से प्राप्त हुआ। दूध, अन्न और जल से। पशुओं के भीतर दूध कहाँ से आया। चारा और घास से। घास और अन्न जल कहाँ से उत्पन्न हुए। पृथ्वी से। इस पृथ्वी का क्या नाम है। बालक प्रसन्नता से कहते हैं—जापान-भूमि तथा देश-भूमि। फिर अध्यापक कहता है, तुम्हारा सच्चा माता-पिता तथा जन्म दाता कौन है? बच्चे एक स्वर से कहते हैं। देश-भूमि मातृ-भूमि। क्या तुम इस देश या मातृ-भूमि से उत्पन्न हुए, इसके वास्तविक पुत्र हो? बच्चे फिर कहते हैं—हाँ, हाँ; देश माता की जय हो। जापान भूमि का ही अंश रूप हमारा शरीर है। फिर अध्यापक कहता है। क्या तुम देश के लिये अपना बलिदान दोगे? हाँ देंगे। क्या दोगे? बच्चे कहते हैं, तन, मन, धन, शक्ति, (बल) विद्या तथा अपना सर्वस्व, प्राणों तक को भी देश-भूमि के लिये न्यौछावर करेंगे यह है छोटे से जापान देश के बालकों की धारणा।

भारतवर्ष की हिन्दू (आर्य) जाति कई शताब्दियों तक परतन्त्र क्यों बनी रही? इसका कारण केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थ परायणता ही थी। देश के धन-सम्पन्न बन्धुओ! यह तुच्छ सम्पत्ति छाया मात्र है। यह तुच्छ से तुच्छ भेंट यदि आपकी ओर से धर्म कार्यों और दरिद्र नारायण के अर्थ लग जावे, तो आपको इसी जन्म में ही परमात्म दर्शन अवश्य हो जायेंगे। स्वर्ग के द्वार आपके लिए खुल जायेंगे। इस समर्पण की कृपा से एक अमूल्य रत्न आपके हाथ लगेगा। इस लोक और परलोक में आपकी जय जयकार होगी।

यही स्वामी रामतीर्थ जी की आपके लिये चेतावनी है।

No. 4. But to Realize bliss and Rama, in that world or this, and to give a living concrete objective Reality to your abstract subjective Dharma, you have to work this Sannyasa spirit, Brahman, kshattria in the Manual labour, once relegated to the holy shudras. The Sannyasa spirit must be wedded to the poriah hands. This is the only way to-day. Wake up! Wake up!

रामहृदय—परन्तु परमानन्द रूप राम को इस लोक व परलोक में अनुभव करने के लिये और अपने निजी सूक्ष्म (विचारात्मक) धर्म को प्रत्यक्ष जीता जागता व्यवहारिक बनाने के लिए तुम्हें अपने हाथ-पैरों से उस परिश्रम द्वारा जो कभी शूद्रों के जिम्मे छोड़ रक्खा था। इस सन्यास भाव को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भाव की वीरता को आचरण में लाना होगा। हमें उक्त सन्यासी भाव का शूद्रों के उद्योग से संयोग करना होगा। आज इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जागो! जागो!

व्याख्या—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के यथार्थ रूप मस्तिष्क, बल और पुरुषार्थ रूप से अग्रसर होकर देश-सेवा करना हमारा धर्म है। ब्राह्मण रूप से हमें उचित है कि विचार धारणा और श्रेष्ठ युक्तियों द्वारा हम देश की भलाई पर विचार करें। क्षत्रिय भाव को अपने शरीर में उत्पन्न करके भारत माता और धर्म की रक्षा बाहुबल से यहाँ तक करें कि यदि देश के लिए प्राण भी न्यौछावर हो जायँ, तो इस समर्पण को अपने लिये शुभ और दुर्लभ समझें। वैश्य भाव प्रगट करते हुए अपना सर्वस्व, धन और व्यवहार प्रिय देशवासियों के हितार्थ प्रसन्नता पूर्वक अर्पण करें। इसी प्रकार समयानुसार हमको शूद्र भाव भी यदि अपने में प्रगट करना पड़े, तो अवश्य करना होगा। देश के कल्याणार्थ और धर्म रक्षा के लिये मल-मूत्र से घृणा करना भी धर्म के विरुद्ध है। राष्ट्र की भलाई के लिए छोटे से छोटे कार्य को भी कर लेना अपना कर्तव्य समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कपड़े धो लेना, अपने बर्तन माँज कर शुद्ध कर लेना, अपने स्थान को झाड़ू बुहारी से साफ़ शुद्ध करना, अपने भोजन को बनाना यह सब कुछ हमें प्रसन्नता पूर्वक करना चाहिये। समय पर अपने मैल को भी उठाकर दूर फेंकना और वायु मण्डल को पवित्र रखना भी हमारा कर्तव्य है। महात्मा गांधीजी के आश्रम में अपना मल तथा दूसरों का मल उठाने का नियम सब पर लागू था स्मरण रखिये।

आपका व्यक्तित्व तभी चमकेगा, आपके जीवन में प्रसन्नता की लहर तभी उठेगी जब आप सब प्रकार के शरीर-सम्बन्धी कार्य स्वयं कर सकेंगे। घृणा और बड़प्पन का भाव, यह महादोष जीवन को व्यर्थ कर देते हैं। आप देखेंगे कि इस साधना की कृपा से शूद्र और अधम जातियाँ भी आपको अपना स्वरूप दिखाई देने लगेंगी। द्वेश का पर्दा आपकी आँखों से उठ जायगा। आप साहसी और पराक्रमी बन जायेंगे। निरभिमानता और परिश्रम रूपी आभूषणों से आप शोभायमान होंगे। एकता या समता रूपी नन्दन बन की सुगन्ध आपको प्रफुल्लित कर देगी। समस्त संसार के प्राणी वर्ग प्रेम की माला में पिरोए हुए आपको दिखाई पड़ेंगे। भय और निराशा की अमावस्या की रात्रि का अन्त होकर आशा और सफलता रूपी सूर्य उदय होगा। जागो! जागो! इस "राम सन्देश" को अपनाओ स्वयं तरो और देश सहित संसार के पथ प्रदर्शक बनो।

उपनिषद् ज्ञान

(आश्रम की ओर से)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवा नुपश्यति।
सर्व भूतेषुचात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६॥

अर्थ—जो मनुष्य सब प्राणियों को निरन्तर परमात्मा में देखता है, और समस्त प्राणियों में परमात्मा को ही देखता है, वह कभी भी किसी से घृणा या द्वेष नहीं करता।

व्याख्या—इस प्रकार जो भगवद्भक्त प्राणिमात्र को सर्वाधार परब्रह्म-पुरुषोत्तम परमात्मा में देखता है और सर्वान्तर्यामी परम प्रभु परमात्मा को प्राणिमात्र में देखता है, वह किस प्रकार किसी से घृणा या द्वेष कर सकता है? उसकी स्थिति ही इस प्रकार है कि ऊँच-नीच का भेदभाव उसकी दृष्टि में रहता ही नहीं।

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः॥
(गी० ५, १८)

समत्व भाव को प्राप्त ज्ञानी की स्थिति बताई है कि वह संसार के प्राणी मात्र को किस प्रकार देखता है। भगवान् उसी को पण्डित कहते हैं। जो विद्या और विनय संपन्न ब्राह्मण, गौ, कुत्ते, हाथी तथा चाण्डाल को भी समत्व भाव से देखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोमतः॥
(गी० ६, ३२)

जो अपनी सादृश्यता से सम्पूर्ण भूतों में समता से देखता है तथा सुख दुःख में भी समानता का ही भाव रखता है, वही सर्वश्रेष्ठ (योगी) कहा गया है। इसी प्रकार जिसकी चित्तवृत्ति इतनी ऊँची उठ गई हो कि

समः दुःख सुखः स्वस्थः सम लोष्ठाश्म कांचनः,
तुल्य प्रिया प्रियो धीर तुल्य निन्दात्म संस्तति।
(गी० १४, २४)

जो निरन्तर आत्म भाव में स्थित हुआ दुःख सुख को समान समझने वाला मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान है तथा जो प्रिय अप्रिय को बराबर समझता है और अपनी निन्दा, स्तुति में भी समान भाव वाला है। अभ्यास और पूर्ण विरक्ति द्वारा यह स्थिति बढ़ते-बढ़ते वह इस स्थिति पर पहुँच जाता है कि—

हरिरेव जगत् जगदेव हरिः।
हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः॥
इति यस्यमतिः परमार्थ गतिः।
स नरो भवसागर मुद्धरति॥

क्या ही (उत्तम) उच्चस्थिति पर पहुँचा हुआ भगवत्स्वरूप भक्त है? जब कि जीवात्मा और परब्रह्म परमात्मा का आवरण रूपी भेद, अभेद में परिवर्तित हो गया, तो वह सम्पूर्ण जगत् को ही नहीं अपितु सकल ब्रह्मांड को आत्मस्वरूप देखता है। सम्पूर्ण जगत् या ब्रह्मांड ही हरिरूप दृष्टिगोचर होता है। सर्वाधार जगदीश्वर हरि तथा उनका लीला-स्थल जगत से अपने को भिन्न या पृथक् नहीं देखता। इस प्रकार जिसकी बुद्धि परिपक्व होकर परमार्थ में परिवर्तित हो चुकी है, वही समत्व भाव वाला ब्रह्मवेत्ता संसार सागर को पार कर जाता है। योग की इस तीसरी भूमिका पर पहुँचे हुए योगी को ही गुणातीत पुरुष कहा है।

मानापमानयोस्तुल्य स्तुल्यो मित्रारि पक्षयोः।
सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥
(गी० १४, २५)

जो मान और अपमान में एकसा है, मित्र और वैरी भी जिसके लिये सम हैं, वह सम्पूर्ण कार्यारम्भों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहलाता है।

महाराजा जनक भी इसी भूमिका पर पहुँचे हुए थे।

वेद व्यास जी ने हर प्रकार से यह निश्चय कर लिया कि सुखदेव केवल मोक्ष इच्छा को लेकर ही उत्पन्न हुआ है, संसार के सुख ऐश्वर्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि वेदव्यास भगवान् थे और ब्रह्मनिष्ठ तथा श्रोत्रिय भी थे, परन्तु पुत्र नाते के भय से वे तत्व का उपदेश न करना चाहते थे। सुखदेव मुनि को महाराज जनक के पास जाकर ब्रह्म उपदेश के प्राप्ति का आदेश दिया। सुखदेव आज्ञा का पालन करके देह मुक्त महाराजा जनक के पास इस जिज्ञासा को लेकर जाते हैं कि वह मुझे त्याग तथा संन्यास से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म-साक्षात्कार का उपदेश करेंगे, परन्तु उन्हें शंका हुई कि राज्य-भोग और सुखों से परिपूर्ण और उन्हीं में प्रवृत्त महाराजा जनक मुझ जैसे विरक्त (त्यागी) को क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश देगा, तीन बार सुखदेव मुनि वेदव्यास जी की आज्ञानुसार जनक के पास जाते हैं, और अनेक शंकाओं की पोटली बाँध कर वापस लौट आते हैं। अन्तिम चौथी बार विश्वास को दृढ़ करके फिर विदेह (जनक) के पास पहुँचते हैं। उन्होंने अपनी जिज्ञासा का वर्णन करके सत्य आत्मा की अनुभूति कैसे हो? यह प्रश्न किया। महाराजा जनक ने उत्तर दिया, केवल इच्छाओं के त्याग और आत्म-समर्पण से ही आत्म-अनुभूति हो सकती है। मुनि सुखदेव जी ने कहा, कि केवल एक कौपीन और कमण्डल मेरे त्याग का प्रत्यक्ष रूप है। महाराजा जनक ने कहा कि इसका भी त्याग उचित है। अब मुनि के चित्त में फिर शंका उत्पन्न होती है कि पदार्थों से ओत:प्रोत प्रवृत्ति परायण जनक मेरे कौपीन और कमण्डल को भी देख नहीं सकता। यह शंका अभी उनके मन में ही थी कि बाहर से महाराजा जनक का दूत आकर कहता है कि "महाराज मिथिलापुरी में आग लग गई है," महाराजा जनक ने कोई उत्तर नहीं दिया, दूत प्रणाम करके वापस चला जाता है। थोड़े समय पश्चात् फिर दूत आता है और कहता है कि महाराज अग्निदेव राजभवन की ड्योढ़ीतक प्रवेश कर गये हैं। महाराज जनक ने उत्तर दिया कि मेरा सत्संग का समय है। तीसरीबार फिर सन्देश पहुँचा कि अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला रनवास के भीतर आ पहुँची है, परन्तु महाराजा जनक आत्म-सुख में तल्लीन हो रहे थे। सुखदेव मुनि ने जब यह दृश्य देखा और सुना तो अपनी कौपीन और कमण्डल को लेकर चल पड़ते हैं। महाराजा जनक ने गम्भीर शब्द से कहा सुखदेव! कहाँ जाते हो! बताओ त्यागी तुम कि मैं? यद्यपि शरीर रक्षा के निमित्त पुरुषार्थ करना धर्म है किन्तु रामशरण में आकर और सत्य आत्मा के सम्बन्ध में काल से भयभीत होकर भागना अज्ञान और आसक्ति का चिह्न है। इस वर्तमान घटना से मैं सदैव निर्भय हूँ, क्यों कि मुझे शरीर सहित सब संसार असारता की ज्वाला में भस्मी भूत दीख रहा है। यद्यपि प्रारब्ध भोग बलवान हैं, जिनके वशीभूत यह शरीर भोगीसा प्रतीत होरहा है। परन्तु मैं मनसा निसन्देह आसक्ति रहित हूँ। मैं केवल द्रष्टा, साक्षी, आत्मरूप से शेष बच रहा हूँ। सदा अचल, निर्द्वन्द, और निरालम्ब हूँ। यह संसार प्राकृतिक नियमों से बद्ध मेरे सन्मुख नृत्य कर रहा है। इसकी किसी भी अवस्था में चलायमान नहीं होता, क्योंकि मैं स्वयं इसका आधार स्वरूप हूँ।

यह वचनामृत सुनकर सुखदेव मुनि महाराजा जनक की अद्भुत आत्मस्थिति की स्तुति करने लगे। और अपने शारीरिक मोह का स्मरण करके लज्जित हुए। अत्यन्त सात्विकी श्रद्धा को उत्पन्न करके महाराजा जनक को साष्टांग प्रणाम किया और नम्र होकर बोले—महाराज! अब मुझे नि:संशय बोध हुआ कि इच्छा का त्याग ही वास्तविक सात्विक तथ्य है। इस त्याग की कृपा से ही आत्म साक्षात् की उपलब्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। सुखदेवजी इसप्रकार आसक्ति और देहाभिमान को छोड़कर नित्य, निरन्तर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहकर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर चुके थे। इस स्थिति में ही महाराजा जनक ने शुकदेव जी को आत्म-ज्ञान का उपदेश किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाण मृच्छति ॥
(गी० २, ७२)

यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर ब्रह्म-ज्ञानी मोह से मोहित नहीं होता और अन्तकाल में इस निष्ठा में स्थित होकर ही ब्रह्मानन्द में लीन हो जाता है।

फलस्वरूप (उपरोक्त) यह श्रुति वाक्य केवल पढ़ और सुन लेने से ही आपके दुःखों और त्रुटियों का अन्त न कर सकेंगे, जबतक आप अपने दैनिक व्यवहार में इनको नहीं लाते। हिन्दु जाति के पतन का मुख्य कारण घृणा और जाति-पाँति के भेद हैं, घृणा भेद दृष्टि का कार्य है और भेद-दृष्टि अज्ञान का चिह्न है। इस जाति पर जो दैवी प्रकोप अवतीर्ण है, उसका कारण यही घृणा रूपी महा पाप है। घृणा का अर्थ केवल छूत-छात ही न समझें किन्तु अपने पारिवारिक सुख और शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये ईश्वरीय नियमों के विपरीत देश, जाति, तथा मित्र व सम्बन्धियों को प्रायः अति दीन और दुःखी लोगों का भी धन छीनने के निमित्त उन्हें धोखा देना और असत्य व अधर्म का अनुयायी होना भी घृणा ही है। ये सब भेद-दृष्टि के ही कार्य हैं। आज देश में साम्यता और अभेद दृष्टि का सूर्य अस्त हो चुका है। केवल अपना स्वार्थ ही सबका लक्ष्य है, जितना भी कोई अधम, पापी, धनवान है वह केवल लोभ के ही कारण है। ईश्वरीय प्रकोप की आँधी में जीव अन्धे हो चुके हैं, दुःखों की प्रचण्ड ज्वाला में सन्तप्त हो रहे हैं परन्तु फिर भी परस्पर प्रेम अभेद दृष्टि और समता को प्रयोग में नहीं लाते। श्रुतियों के महा-मन्त्र जीव को समता और परस्पर प्रेम के अतिरिक्त और दूसरा कोई भी सन्देश नहीं देते। सारा संसार द्वेश और विरोध की अग्नि में जल रहा है। अकाल युद्ध, जल कोप, दरिद्रता, बेरोजगारी ये सब वह रोग हैं जो घृणा और भेद दृष्टि के क्रिमियों (कीड़ों) से उत्पन्न होते हैं। स्वामी राम कहते हैं कि संसार में अनात्म दृष्टि ही महा रोग है और आत्म दृष्टि ही इसकी एक मात्र महौषध है।

प्रियवर देशवासियो! जागो, श्रुति वाक्यों की ओर मुख फेरो, सर्व रूप आत्मा तथा अभेद-स्वरूप परमात्मा का अणु-अणु में दर्शन करना सीखो। समता के बल से घृणा के क़िले को तोड़कर सुख और एकता के राज्य में प्रवेश करके नव जीवन प्राप्त करो कराओ!

नाऽन्यः पन्था विमुक्तये।
अथाऽतो ब्रह्म जिज्ञासा ॥

इसके अरिरिक्त सुख-मार्ग और शान्ति प्रदर्शक दूसरा कोई उपाय नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक चूणामणि

(आश्रम की ओर से)

गतांक से आगे—

इतः को न्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥५॥

अर्थ—दुर्लभ मनुष्य शरीर और उसमें में भी पुरुषत्व प्राप्त कर, जो स्वार्थ साधन में प्रमाद करता है, उससे अधिक मूढ़ और कौन होगा ?

व्याख्या—मनुष्य शरीर की दुष्प्राप्यता और पुरुषत्व प्राप्ति की महानता पर पिछले चार श्लोकों की व्याख्या में भली भाँति स्पष्ट कर दिया गया है कि पुरुषत्व आत्म साक्षात्कार प्राप्त करने के लिये कितना आवश्यक है । किस प्रकार का पुरुषत्व आत्मानुसंधान के लिए अपेक्षित है, उस पर भी भली प्रकार विवेचन किया गया है । अस्तु, इस विषय पर पुनःविचार करना पिष्टपेषण ही होगा अतः हमें "इतः कोन्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति" इस पर ही विशेष विचार करना है । उससे अधिक कौन मूर्ख है जो अपने स्वार्थ साधन में प्रमाद या आलस्य करता है ? अब विचार यह उठता है कि मनुष्य का स्वार्थ क्या है अर्थात् उसका अर्थ, प्रयोजन या लक्ष्य क्या है । जिसे प्राप्त करने के लिये वह प्रमाद कर रहा है । अपने प्रयोजन अर्थात लक्ष्य को छोड़कर इधर-उधर भटकता फिरता है । एक मनुष्य कलकत्ता से चलकर अपने निवास स्थान हरिद्वार आना चाहता है। उसका प्रयोजन तो हरिद्वार आने का अवश्य है, परन्तु मार्ग में काशी की वीथियों को देखने पर वहाँ की रमणीयता ने उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उसी में रम गया । फिर वहीं घूमता-फिरता अपने चिर लक्षित घर जाने का संकल्प ही भूल गया, तो भला वह पथिक किस प्रकार अपने घर (हरिद्वार) पहुँच सकता है ? ठीक इसी प्रकार मनुष्य भी अपने गन्तव्य स्थान तथा अपने आत्म स्वरूप को भुलाकर माया मरीचिका के चकाचौंध में मदान्ध होकर संसारारण्य में इतस्ततः सुख प्राप्ति के मिथ्या साधन स्वरूप पिता, पुत्र, कलत्र, धन, धान्यादि से परिपूर्ण ऐश्वर्य में प्रमत्त होकर भटक रहा है और जब तक उसे आत्मस्वरूप की उपलब्धि न होगी, इसी प्रकार भगवान की नटी मायादेवी के चक्र भूल-भुलैया में भूलता ही रहेगा उसे आत्मोद्धार का मार्ग मिल ही नहीं सकता जब तक कि अपनी अर्थ प्राप्ति को अपने सन्मुख नहीं रखता अर्थात् अपने लक्ष्य को सामने रखकर उस पर व्यावहारिक रूप से आचरण नहीं करता ।

जीव का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है, भगवति माया जीव की भगवत्प्राप्ति में बार बार बाधक होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये तो भगवान अपने भक्त के प्रति माया को भक्ति में बाधक समझते हुए कहते हैं:—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गी० ७, १४)

यह मेरी त्रिगुण (सत्व, रज, तम) मयी दैवी माया बड़ी दुस्तर है, इसके पार जाना बड़ा ही कठिन है परन्तु जो मेरे निष्काम अनन्य भक्त मेरी ही आराधना करते हैं, वे सहज में ही इस माया बन्धन से मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

जो मनुष्य मिथ्याभिमान से प्रमत्त हो कर भौतिक क्षण भंगुर क्षणिक सुखों को ही परम सुख समझ लेता है, विनाशी देह सुख के लिये विविध प्रकार के नीच कर्मों का आश्रय लेकर अधर्म पूर्वक अनाचार द्वारा अपनी भोगलिप्सा पूर्ण करने के लिए अर्थ संग्रह करता है, अर्थैषणा उस मनुष्य को पापाचरण में डुबा देती है, उसे लोक परलोक कुछ नहीं सूझता भविष्य में आने वाले महा भयंकर दुःख उसे दिखाई नहीं पड़ते। नचिकेता को ब्रह्म-विद्या का उपदेश करते हुए यमराज कहते हैं—परलोक को न मानते हुए आसुरी वृत्तिवाले पापाचारी मनुष्यों की धारणा होती है कि—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं,
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इतिमानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥
(कठोपनिषद् मं० ६)

इस प्रकार मनुष्य जीवन को न समझने वाला अभिमानी मनुष्य सांसारिक भोग सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये साधन रूप धनादि के मोह से मोहित हुआ भोगों में आसक्त होकर प्रमाद पूर्वक मनमाना आचरण करने में लगा रहता है। उसे परलोक नहीं सूझता, उसके अन्तःकरण में इस प्रकार के विचार उत्पन्न ही नहीं होते कि मरने के अनन्तर मुझे अपने समस्त कर्मों का फल भोगने के लिये बाध्य होकर बार-बार विविध योनियों में जन्म लेना होगा। वह मूर्ख समझता है कि बस जो कुछ यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देता है यही लोक है। यहाँ जितना विषय सुख भोग लिया जाय उतनी ही बुद्धिमानी है, इसके आगे कुछ भी नहीं। क्या परलोक किसी ने देखा है, परलोक तो कल्पना मात्र है। इस प्रकार की भावना वाले मनुष्य बार-बार मेरे (यमराज) के पाश (फाँसे) में बाँधे जाते हैं। वह अपने ही नीच कर्मों के तराजू पर तुलते हुए नारकीय योनियों को प्राप्त होते रहते हैं। इसलिये उनके जन्म मरण का चक्र छूटता ही नहीं। इसी चक्र का नाम 'स्वार्थ में प्रमाद करना' है। गीता भी आसुरी सम्पत्ति के लक्षणों को इस प्रकार बतलाती है।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
(गी० अ० १६, १३)

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥
(गी० अ० १६, १४)

आज मैंने यह प्राप्त किया, अब इस मनोरथ की सफलता प्राप्त करूँगा। इतना धन तो मेरे पास है, फिर भी इतना अधिक और प्राप्त करूँगा, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मेरा) शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूँगा तथा मैं ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ और सुखी हूँ। इस प्रकार श्लोक १८ तक आसुरी सम्पत्ति का विषद वर्णन किया गया है। जो कि जीव को नरक में ले जाने के मूल साधन हैं। अतः विचारवान मनुष्य को चाहिये कि वह अपने स्वरूप को पहचानने तथा अमरत्व प्राप्त करने के लिये अभी से अविद्या रूप घोर निद्रा से जागकर आत्म तत्व को जानने के लिये प्रयत्नशील हो अपनी मुक्ति की भावना से प्रेरित होकर अध्यात्म विद्या का अध्ययन कर तत्ववेत्ता महात्माओं की शरण जा, आत्म कल्याण का विमल उपदेश सुनकर उस पर विचार पूर्वक व्यवहार करे।

वेदोक्त दृष्टि से जीव स्वयं ही अविवेक के मार्ग पर चलकर दुःख का उपभोग करता है और स्वयं ही विवेक द्वारा सन्मार्ग पर चल कर सुख रूपी अमृत का पान करता है। पुराणों में एक गाथा आई है कि—एक योगी हिमालय में चिरकाल तक समाधिस्थ रहने के अनन्तर समाधि से उठे, जब समाधि खुली तो उनकी वृत्ति स्थूल देह में उतरी तो उन्हें हिम (बर्फ) की ठंड के कारण शीतका अनुभव होने लगा। उन्होंने विचार किया कि कहीं अग्निदेव की शरण ली जाय। योगिराज को स्फुरणा हुई कि नरक की अग्नि बड़ी तीव्र होती होगी। वह अपने सत्य संकल्प द्वारा यमराज के पास पहुँचे, यमराज ने उनका सत्कार किया और दण्डवत् प्रणामादि के अनन्तर कहा कि महाराज! आप जैसे तपस्वी धर्मात्मा और योगी जनों का वास ब्रह्म लोक, सूर्य लोक और चन्द्रलोकादि दिव्यलोकों में होता है, यह तो यम लोक है आप भूल से इधर आ निकले। योगिराज ने हँसकर कहा—भाई! हमें उत्तर प्रदेश में एकान्त सेवन करते हिम की ठंड ने बहुत सताया। हमने सुना था कि नरक में अग्नि द्वारा पापी मनुष्यों को जलाया जाता है, यहाँ की ज्वाला बड़ी प्रचण्ड होती है। यमराज ने हँसकर कहा—महाराज! यहाँ पर कोई लकड़ियों का जंगल थोड़े ही है। और नाही अग्नि जलाई जाती है। यहाँ पर आत्म मार्ग भ्रष्ट पापी जीव दुष्कर्मों के फलस्वरूप पाप में स्वयं ही अपनी तृष्णा और कामना में जलते रहते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत् ॥
(गी० १६, २१)

काम, क्रोध और लोभ वही महा ज्वाला है, जो जन्म जन्मान्तर पापी जीवों को अपने प्रचण्ड वेग में जलाती रहती है। योगिराज अपने तपोबल से त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!! करते दिव्यलोक को पधार गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल की पहिचान

लेखकः—श्री जनार्दन जी

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥
(गीता अ० ४ श्लो० ३४)

ज्ञानीजनों को प्रणाम करने से, उनसे निष्कपट जिज्ञासा पूर्ण प्रश्न करने से, उनकी सेवा करने से, वे (तत्वज्ञान को जानने वाले ज्ञानीजन) ज्ञान का उपदेश करते हैं।

इस सम्बन्ध में एक आख्यायिका का स्मरण होता है। कुछ समय बीता एक नगर में एक जौहरी रहता था। काल चक्र से वह बहुत निर्धन हो गया। मरते समय उसने अपनी धर्मपत्नी को सात लाल दिये और कहा कि यदि कभी अत्यन्त कठिन समय आजाय तो वह उन लालों को अपने पुत्र द्वारा उसके परम मित्र एक दूसरे जौहरी के पास भेज कर सहायता माँगे उसका मित्र उनकी सहायता अवश्य करेगा। विधि का विधान, उनको दरिद्रता ने इतना घेर लिया कि उनके पास अन्न-वस्त्र भी न रहा। निदान उस अवला ने उन सात लालों को अपने पुत्र द्वारा मृत पति के मित्र के पास भेजा और सहायता की याचना की।

यह जौहरी बड़ा अनुभवी और अपने कार्य में बड़ा चतुर था। उसने बालक से लालों को लेकर खूब देखा, खूब परखा, और कहा कि बेटा! यह रत्न अनमोल हैं! इनको तुम खूब संभाल कर रखलो मेरे पास इतना धन नहीं कि इनका मूल्य दे सकूँ। हाँ! जब कोई अधिक धनाढ्य और पारखी जौहरी आयेगा, तब मैं तुम को याद दिला दूँगा, तब इनको बेच लेना यह कह कर उसने लाल तो लौटा दिये, परन्तु लड़के को अपनी दुकान पर मुनीम रख लिया। साथ ही घर का खर्च चलाने को एक मास का वेतन भी पेशगी दे दिया।

समय बीतने लगा। लड़का पुरुषार्थी था, खूब मन लगा कर दुकान का काम करता और अपने पिता के मित्र की सेवा करता था। उनको वह "चाचा" कहता था।

कुछ काल बीतने पर लड़का स्वयं जौहरी होगया, लाल परखने लगा। एक दिन जौहरी ने लड़के को बुलाकर कहा—"बेटा आज हमारे नगर में एक बड़ा जौहरी आया है, खानदानी जौहरी है। वह तुम्हारे उन सात लालों की परख कर सकता है। अब तुम कल अपने लाल ले आना।"

लड़के को सुध आई, शीघ्रता से घर गया, और परम उत्सुकता से लाल निकाले। खूब देखा, खूब परखा, अगले दिन जब वह दुकान पर गया तो जौहरी ने पूछा क्यों "बेटा"! लाल लाए? उत्तर मिला। "चाचाजी"! उनको तो मैंने कुएँ में फेंक दिया। वह तो चमकीले काँच के टुकड़े थे। लड़के को जौहरी के साथ रहने और उसकी सेवा करने से स्वयं सच्चे लाल परखने की योग्यता हो गई थी।

प्यारे! यह दुनियाँ और उसकी नियामतें चमकते हुए काँच के टुकड़े हैं। सच्चे लाल नहीं। सच्चा लाल परम सत्य केवल एक ब्रह्म है, और सब मिथ्या है। परन्तु, उसकी परख सच्चे जौहरी, सच्चे महात्माओं से मिले बिना नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि भगवान् ने कहा है, उसकी प्राप्ति का उपाय उन्हीं की सेवा और उन्हीं का सत्संग है।

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
(तुलसीदास)

प्रिय पाठक वृन्द! आज सारा संसार नारकीय प्रचण्डाग्नि से जल रहा है। यह प्रचण्ड-चण्डी परस्पर घृणा, जातीय मिथ्याऽभिमान, साम्प्रदायिकता राजकीय लोलुपता, धार्मिक दम्भ और अहंकाराभिमुखी राजनैतिकता के झकोलों से भड़काई गई है। ऐसी दशा में न घर में सुख शान्ति है, न देश में चैन आराम, और न विदेश में कोई विश्राम! तब आइये हम सब राजा, प्रजा, अमीर, ग़रीब, स्त्री-पुरुष मिलकर सच्चे हृदय से यह प्रार्थना करें कि प्रभु अपनी अपार कृपा से हमारे हृदयों में दिव्य सच्चाई प्रकाशित करें। प्रभू की पृथ्वी इतनी विशाल है कि इस में हम सब मिल जुल कर सुख पूर्वक समा सकते हैं! तभी हम समझेंगे कि:—

प्रेम जीवनाधार है, पर आप निराधार है।
प्रेम सुख भंडार है, जो सदा ही अपार है॥
प्रेम जगत् सार है, अन्य सब निस्सार है।
प्रेम उसका रूप है, जो आप निराकार है॥

हमें चाहिये कि हमारा विचार प्रेममय हो, हमारा खान, पान, शयन, गमन अर्थात् सभी व्यवहार प्रेममय हो। तभी हमारा जीवन सुन्दर और महान्, दिव्य और विशाल होगा। अतः हम सभी प्रेम के दिव्य लोक में निवास करें, प्रेम भरे वातावरण में विहार करें, प्रेमोद्यान के दिव्य पुष्पों की गन्ध को घ्राण करें, आत्मोल्लासजनक आलापों को श्रवण करें अर्थात् हम प्रेम के केन्द्र हों, प्रेम का रूप हों। और यह तभी होगा जब हम यह अनुभव करने लग जायें कि हम सब एक ही प्रभु की सन्तान हैं अतः सब छोटे बड़े भाई-भाई हैं। तभी और तभी संसार में सर्वत्र शान्ति का राज्य होगा।

प्रभो! भवत्कृपया हमारी यह भावनायें पूर्ण हों

ज्ञान के रंग में कर्म और उपासना

(आश्रम की ओर से)

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विवर्तयेत्।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिर संघवत्॥

अर्थ—जो जिस वस्तु का विरोधी होता है, वह उसका नाशक है। तेज, तिमिर (अन्धकार) का विरोधी होने से उसका नाश करता है। कर्म और अविद्या का परस्पर विरोध नहीं है, अतएव कर्म अविद्या की निवृत्ति करने में समर्थ नहीं होता। परन्तु विद्या, (तेज) अविद्या (तिमिर, अन्धकार) को हरण करती है।

कर्म और उपासना, ये दोनों ही परम आवश्यक हैं, परन्तु जब ज्ञानोत्पत्ति हो जाती है तब यह दोनों स्वयमेव ही छूट जाते हैं।

"ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।"

ज्ञान रूप अग्नि जब मुमुक्षु के हृत्पटल में प्रगट हो जाती है, तो वह (अग्नि) सब कर्मों को भस्म कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती है। यह ज्ञानोत्पत्ति तभी होती है जब शास्त्र वचन और तत्ववेत्ता महापुरुषों के सदुपदेशों पर बारम्बार मनन किया जाय, मनन के द्वारा ही ज्ञान रूपी अमृत की प्राप्ति हो सकेगी। जैसे दही को मटके या घड़े में भर कर वार-बार मथन करने से उस में से मक्खन निकल आता है, उसी प्रकार अन्तःकरण रूपी घड़े में गुरु-वाक्य रूपी दही का मथन (मनन) करने से नवनीत (मक्खन) रूपी वाक्यान्तर्गतसार प्राप्त होता है अर्थात् समझ में आजाता है। इस रहस्य को दृष्टान्त के द्वारा इस प्रकार समझना चाहिये।

किसी नगर में एक धन-धान्य, स्त्री-पुत्रादि सकल-सुख सम्पन्न प्रसिद्ध धनिक रहता था। यद्यपि उसे सांसारिक सभी सुख ऐश्वर्य प्राप्त थे, परन्तु एक बात से वह अत्यन्त दुःखित था। जिससे वह संसार को विष समान देख रहा था। धन, मान, प्रतिष्ठा, स्त्री, पुत्रादि सुख के सभी साधनों के होते हुए भी जिस वस्तु से उन सुखों का उपभोग किया जाता है, वह शरीर आरोग्य न हो तो ये सम्पूर्ण सुख निरर्थक हैं। क्योंकि—

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम्।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-साधन का मूल कारण शरीर का स्वस्थ और नीरोग होना है। शरीर द्वारा तभी मनुष्य इन चारों पदार्थों को प्राप्त कर सकता है, यदि उसका शरीर स्वस्थ है,। रोगी शरीर कभी भी मोक्ष-मार्ग में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

पहला सुख निरोगी काया

इसके अनुसार वह धनी पुरुष सर्व सुख सम्पन्न होने पर भी शरीर से दुःखी होने के कारण संसार को सब प्रकार से दुःख रूप समझता था। उसके उदर में एक महान् व्याधी यह थी कि वह जो कुछ भी खाता, थोड़ी मात्रा में खाने पर भी उसे पचता नहीं था और किसी प्रकार कुछ पथ्य सेवन कर भी लिया, तो वह तत्काल अतीसार (दस्त) द्वारा बाहर निकल पड़ता और पीड़ा अधिक बढ़ जाती, इस प्रकार कई वर्षों तक वह रोग पीड़ित रहा। एक समय उसके नगर में कोई अनुभवी वैद्य आये, वैद्यराज बहुत दयालु और नम्र स्वभाव होने से जिस किसी को दुःखित देखते उसे अपनी दिव्य अनुभूत औषधि देकर रोग मुक्त कर देते। उनकी प्रशंसा सारे नगर में फैल गई। उस धनिक ने भी यह चर्चा सुनी तो दूसरे दिन प्रातःकाल वह भी वैद्यराज के पास पहुँचा, तो देखता क्या है कि उस जैसे अनेक रोगी वैद्यराज के पास बैठे हैं। वैद्यराज को प्रणाम कर वह भी उनके पास बैठ गया। तदनन्तर अपने रोग का सम्पूर्ण वृत्तान्त वैद्यराज को सुनाया। वैद्यराज ने उसके शरीर की परीक्षा कर रोग को पहचान लिया। इसी प्रकार सब रोगियों को देखने के पश्चात् वैद्य जी ने कहा कि—मैंने आप सबके रोगों को पहचान लिया है। अतः आप सब मेरे साथ इस समीप वाले वन में चलें, वहाँ जाकर मैं आप लोगों को रोगनाशक जड़ी बूटियाँ बताऊँगा। आपको चाहिये कि अपने-अपने रोग शान्त करनेवाली बूटियों को वहाँ से लेते आवें।

यह सुनकर सब लोग उनके साथ-साथ बन में गये। वहाँ जाकर वैद्यराज ने कहा कि मैं अपनी छड़ी की नोक से मार्ग में जो-जो औषधियाँ आवेंगी बताता जाऊँगा तथा उनके नाम और गुण कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाऊँगा। तुम्हारे जिस-जिस के काम की जो जो औषधि हो उसे लेते हुए तुम नगर को चले जाना वैद्यराज जी छड़ी की नोक से जंगल की जड़ी बूटियों को बताने लगे, साथ ही उनके नाम, गुण और सेवन विधि भी रोगानुसार बताने लगे, जिसके काम की जो औषधि होती, वह उसे लेकर अपने घर वापस आ जाता, धनी पुरुष वैद्यराज के पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी दृष्टि आतुरता से वैद्यराज के मुख से किस रोग का और किस औषधि का नाम निकलता है, इसी पर लग रही थी।

इसके अनन्तर जब छड़ी की नोक से औषधि बताते, तब उसकी दृष्टि छड़ी के अग्र भाग पर फिर रही थी, जिस वनस्पति की ओर यष्टिका का अग्र-भाग होता, उसी की ओर दृष्टि घूम जाती थी, इतने में ही वैद्यराज ने उसी के रोग का नामोच्चारण किया और उसके उपयोग की औषधि यष्टिका के अग्रभाग से दिखाई, उस औषधि को देखते ही उसकी दृष्टि जो अब तक लकड़ी की अनी पर ठहरी हुई थी, तुरन्त उस औषधि पर स्थित हुई, तब वह धनिक, वैद्यराज की बात और उनकी छड़ी इन सब को छोड़कर उस औषधि के पास खड़ा रह गया। वैद्यराज अन्य रोगियों को उसी प्रकार औषधि बतलाते हुए आगे चले गये। वह धनी पुरुष उस औषधि को लेकर तुरन्त घर आकर यथा विधि श्रद्धा से सेवन करने लगा। थोड़े ही समय में उस असाध्य रोग से मुक्त होकर सम्पूर्ण सुख भोगने लगा।

तात्पर्य यह है कि जीवात्मा को यह भव (संसार) रूप महा रोग प्राप्त हुआ है। इसीलिए उसका महात्मा, ज्ञानी और परम दयालु, परोपकारी गुरु रूप वैद्यराज की शरण में प्रेम सहित जाना, गुरु के वचन पर श्रद्धा का होना अत्यावश्यक है क्योंकि—

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं

श्रद्धा वाला पुरुष ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अतः हेतु पर लक्ष रख कर जिस प्रकार गुरु आदेश करे उसी के अनुसार विचार करना और उस प्रकार व्यवहार करने से जैसे, बन में धनिक को वैद्यराज ने औषधि बताई, उसी प्रकार जीव को इस संसार रूप रोग में से मुक्ति रूप महौषधि (आत्मज्ञान) तत्व प्राप्त होकर उसके द्वारा वह जीवन मुक्त होकर परमानन्द में प्रवृत्त हो जाता है "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामपरमं मम" ॥ जहाँ जाकर फिर जीवात्मा लौट कर भव बन्धन में नहीं पड़ता, वही मोक्ष है। मुमुक्षु को प्रथम गुरु प्रदर्शित शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने में साधन रूप भिन्न-भिन्न कर्म, उपासना तथा ध्यान, धारणा इत्यादिक सब परब्रह्म के दर्शन होने के अनन्तर आप सहज ही छूट जाते हैं।

इस आत्म अनुभूति की अवस्था पर पहुँचकर जीव में जीवत्व भाव नहीं रहता, वह ब्रह्मत्व अवस्था को प्राप्त हो जाता है। फिर कर्म और उपासना का बन्धन कैसा ? इसका तात्पर्य यह भी नहीं हैकि— वह जड़वत् हो जावे, शारीरिक प्रारब्धानुसार वह कर्म रूप से चेष्टा करता ही रहता है, या साधना काल की भाँति स्वभाव से ही शुभ कर्म उसके द्वारा होते ही रहते हैं। इस स्थान पर पूर्ण निष्काम कर्म-योग का वह स्वामी है। यहाँ पर यह गम्भीर रहस्य विचारणीय स्थल है कि जीव की जब तक देह बुद्धि है, तब तक वह वास्तविक निष्काम कर्म-योग को प्राप्त नहीं। केवल इच्छा मात्र से निष्काम कर्म की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकरण (नक़ल) कर रहा है। इस ज्ञान शिखर पर पहुँचते ही उपास्य देव में अभेद भावना हो जाती है। भेद के लिये वहाँ स्थान नहीं रहता, दूसरे शब्दों से वह अनन्य भक्ति को जिसे (आत्म-समर्पण) नवीं भक्ति कहा है को प्राप्त हो जाता है। जिसका महत्व भगवान् के शब्दों में यह है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषांनित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(गी० ६, २२)

जो भक्तजन अनन्य भाव से मुझ में स्थित हुए मेरा ही चिन्तन करते हैं, निष्काम भाव से मुझे भजते हैं, ऐसे भक्तों का योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर लेता हूँ। अर्थात् भगवत् के स्वरूप की प्राप्ति का नाम "योग" है और भगवत्प्राप्ति के निमित्त किये हुए साधन की रक्षा का ही नाम "क्षेम" है। यही आत्म-समर्पण है, इसी को अनन्य भक्ति कहते हैं। आत्म-ज्ञान तथा मोक्ष स्थल भी यही है। ऐसे मुनि के जन्म, कर्म, उपासना, दिव्य रूप से श्रुति ने वर्णन किये हैं। उसके कर्म और जन्म दोनों दिव्य हैं। प्रकृति उसकी वन्दना करती है, काल भयभीत होकर अपना स्वरूप बदल देता है। नवजीवन सुन्दरता व सफलता उसके मनोरंजन का साधन बन जाते हैं। ऐसा कालातीत ब्रह्मयुक्त योगी निर्भयता की ढाल हाथ में लेकर संसार क्षेत्र में उतरता है। ज्ञान के गोले बरसाकर अज्ञान तथा देहाभिमान के बल को निस्तेज करके फिर इस सृष्टि से कुछ समय के लिये अदृश्य सा हो जाता है।

स्थिर मन ही ईश्वर प्राप्ति का रहस्य है

(आश्रम की ओर से)

इस विशाल जगत् में अनेक प्रकार के मनुष्य दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीमन्त, दरिद्री, विद्वान्, अज्ञ तथा भौतिक साधन-सम्पन्न एवं कितने ही विपद्ग्रस्त, भाग्यहीन जिनके सहारे के लिये पैरों के नीचे पृथ्वी और सिर पर आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं। निर्धनों की यह धारणा होती है कि बड़े-बड़े भवनों में निवास करनेवाले तथा उत्तमोत्तम सुख ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले मनुष्य अधिक सुखी होंगे। वे अवश्य ही शान्ति लाभ करते होंगे। इसी प्रकार धन-सम्पन्न लोग ग़रीबों को यह समझकर कि इन्हें कोई विशेष सांसारिक चिन्ता नहीं। और न अपमान का ही दुःख। अतः उन्होंने अवश्य शान्ति प्राप्त की होगी। यह विचारते हैं। परन्तु वास्तविक शान्ति कहाँ है? इस पर विचार करना आवश्यक है। मनुष्य अल्पज्ञ होने के कारण हर समय अपने भीतर किसी न किसी आवश्यकता का अभाव अनुभव करता रहता है। वह जीवत्व भाव में रह कर ईश्वरीय सुखों का उपभोग करना चाहता है। सर्वज्ञ ईश्वर की शरण आये बिना तथा आत्म रूप से एकी भाव हुए बिना त्रुटियों और इच्छाओं की पूर्ति असम्भव है। यह नियम के विरुद्ध है कि ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करके जीव सुखी रह सके। आओ! जो अन्तःकरण सुख का स्रोत है उसके रहस्य को समझें।

तमोगुण का स्वरूप अन्धकार है, जैसे अन्धकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वाह्य दृष्टि से कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार जिसके मन में अज्ञान का निवास है उसे अपने आत्म-सुख का अनुभव नहीं होता। रजोगुण का स्वरूप प्रलोभन है। जिस समय मन में रजोगुण का आधिक्य होता है तो हृदय की शान्ति सांसारिक पदार्थों के प्राप्त करने की इच्छा से दब जाती है। परन्तु जब मन में सतोगुण का राज्य स्थापित होता है तो साथ ही अन्तःकरण में श्रद्धा और विश्वास रूपी मन्त्री भी प्रगट होजाते हैं। इनकी सहायता से जीव को ईश्वर भक्ति में दृढ़ता प्राप्त होती है। तब बुद्धि में विवेक का प्रकाश होते ही जीव का व्यवहार भी निष्पाप और शुद्ध होने लगता है। परमार्थ तो स्वभावतः ही शुद्ध था, केवल व्यवहार ही अशुद्ध था, वह निर्दोष तथा निष्पाप होने से परमार्थ का रूप धारण कर लेता है। मानो कि शुद्ध व्यवहार और परमार्थ दोनों एक ही रूप हैं।

वशीभूत मन ही ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन है!

(आश्रम की ओर से)

"मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः"
(गीता)

जिसने मन विजित कर लिया, वही भगवत्प्राप्ति कर सकता है, भगवत्प्राप्ति के लिये सर्व प्रथम मन की शुद्धि आवश्यक है। जब तक सांसारिक वासनाओं से मन को रहित न कर लिया जाय, तब तक भगवत्प्राप्ति असम्भव है, क्योंकि "कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्तितः। तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष इत्यभि धीयते ॥" अन्तःकरण के भीतर कामनाओं (इच्छाओं) का रहना ही तो संसार है, यदि मन से इच्छाओं का नाश हो गया तो जीव की सर्व दुःखों से मुक्ति हो गई "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति" सर्व प्राणियों के हृदय में ईश्वर निवास करते हैं। परन्तु वे तभी प्रगट होते हैं जब सांसारिक वासनायें (संकल्प) नष्ट हो जाती हैं; हृदय शुद्ध और निर्मल जब तक नहीं हो जाता, भगवान् अपवित्र हृदय में प्रगट नहीं होते। जब मन या अन्तःकरण पवित्र हो जाता है तभी भगवान् हृत्कमल में आ विराजते हैं। तब अखण्ड आनन्दकी अनुभूति स्वतः ही होने लगती है।

महाराजा जनक ने अपने गुरु अष्टावक्र जी से प्रश्न किया कि 'क्या आप मुझे क्षण मात्र में ब्रह्म-दर्शन करा सकते हैं?' अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि 'हाँ मैं आप को क्षण मात्र में ही ईश्वर दर्शन करा सकता हूँ। 'परन्तु इस अलभ्य लाभ की गुरुदक्षिणा आप को पहले ही देनी होगी।' यह सुन कर राजा ने अपना सम्पूर्ण राज्य गुरू के चरणों में समर्पित कर दिया। गुरू ने कहा यह राज्य और कोष आपका किस प्रकार हो सकता है? क्या यह राज्य आपके उत्पन्न होने से पूर्व नहीं था? यदि था तो यह आपका नहीं हो सकता, यह तो प्रजा का धन है। राजा जनक ने विचार कर कहा, भगवन्! यह शरीर तो मेरा हो सकता है। इसे कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिये। गुरु अष्टावक्र जी ने फिर कहा राजन्!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह शरीर भी आपका नहीं हो सकता, क्योंकि कभी भी आप रोगी तथा सर्व-हर मृत्यु के ग्रास हो सकते हैं। तत्पश्चात् महाराजा जनक जी ने कहा प्रभो! यह मन तो मेरा है, इसी के संकल्प विकल्प से हम समस्त सांसारिक राज्य कार्य करते हैं। बस इसे सहर्ष स्वीकार कीजिये। इसके अनन्तर ब्रह्मज्ञानी गुरु अष्टावक्र जी ने कहा। राजन्! स्मरण रखिये जब आपने अपना मन मुझे समर्पण कर दिया, तब किसी भी वस्तु की कल्पना आप किस प्रकार कर सकते हैं। जब मन नहीं है तो संसार भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब मन न रहा तो संकल्प (वासना) कहाँ से होंगी जब मन और मन के धर्म लुप्त हो गये तो उसे शीघ्र ही आत्म साक्षात्कार हो जाता है। इसी कारण राजा जनक विदेह कहे जाते हैं। विदेह की पुत्री होने के नाते जगदम्बा जानकी 'वैदेही' कही जाती हैं इस प्रकार जो ज्ञानी जन अपने मन को संकल्प-विकल्प से रहित कर लेते हैं, वही संसार समर में विजयी होते हैं।

तात्पर्य यह है कि जब तक आप अपने मन से फ़र्ज, क़र्ज और ग़र्ज को सर्वथा निकाल नहीं देंगे, इन से रहित नहीं हो जायेंगे; कभी भी त्रिकाल में परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकते। यही रहस्य है वेदों और शास्त्रों का और यही सार है, श्रवण, मनन, निदिध्यासन कर इस अनुपम तत्त्व को अपने व्यवहार में लाइये। स्वयं अपना कल्याण कीजिये और अपने ज्ञान द्वारा संसार का भी कल्याण कीजिये। प्रतिज्ञा कीजिये और निभाइये। वचन की दृढ़ता ही पुरुषत्व की पहचान है।

यां मर्द वही कहलाते हैं,
जो जाकर फिर नहीं आते।
जो आते हैं और जाते हैं,
वह मर्द नहीं अस्लाहबाबा॥

कमर कस कर तैयार होजाइये, इसी जीवन में आत्म प्राप्ति हो सकती है। कभी-कभी लोग आत्म समर्पण तो करते हैं किन्तु सच्चा नहीं। सच्चा समर्पण तो वह है जिसमें अपना समझा जाने वाला तन, मन, धन उससे गुणों के कार्यरूप होने वाले कर्म तथा उनके फल, चाहे वे सुखदाई हों या दुखदाई, चाहे वे शुभ हों या अशुभ, सब कुछ उनके चरणों में समर्पित कर दें। परन्तु हम सब साधारणतया करते क्या हैं?

सुख की वेला को तो हम अपनी समझते हैं और उस सुख के उपयोग में आत्म समर्पण भूल जाते हैं। किन्तु दुःख के समय (तत्काल) हमें अपनी प्रतिज्ञा स्मरण आती है, और कह देते हैं भगवन्! यह भी आपके समर्पण है। क्या यह सच्चा समर्पण है? कदापि नहीं। हमें उस दुःख से छुटकारा नहीं मिल सकता अपितु वह भोगना ही पड़ेगा। भला इस संसार में ऐसा भी कोई कार्यालय या फ़र्म है जिसके दो भिन्न-भिन्न अधिकारी हों? कभी नहीं। इसी प्रकार यदि सुखोपभोग का समर्पण हमने भगवान् को नहीं किया तो भला केवल दुःख का ही समर्पण कैसे होगा? दुःख का उत्तरदायित्व भगवान् तभी स्वीकार करेंगे जब सुख को भी उन्हीं के चरणों में अर्पण करदें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यस्तु कर्म फल त्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।"

(गीता)

जो शुभाशुभ कर्मफल का त्याग कर देता है, उसी को सच्चा त्यागी कहना चाहिये। इसलिये अपने प्रिय भक्तों के लिये भगवान् की आज्ञा है कि,

"सर्व कर्म फल त्यागं ततः कुरु यतात्मवान्" ॥

(गी० अ० १२ श्लो० ११)

मेरी प्राप्ति रूप योग के शरण होकर सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग कर, त्याग का स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

(गी० अ० ६ श्लो० २७)

त्याग की कितनी अच्छी मीमांसा है, भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू जो कुछ भी कर्म करता है, खाता पीता जो कुछ यज्ञ करता और दान देता है, जो स्वधर्माचरणरूप तपस्या करता है; वह सब मेरे समर्पण करदे, तू पाप-पुण्य के चक्र से छूट जायगा। अस्तु इस परम गहन तत्त्व को समझाने के लिये पथ-प्रदर्शक गुरु की आवश्यकता होती है और उनके चरणों में अपने समस्त जीवन को समर्पित कर देने की अत्यावश्यकता है। जैसे कि अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण उपदेश कर रहे हैं।

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी० अ० १८ श्लो० ६६)

इस रहस्य को स्मरण रखना चाहिये कि परमात्मा से (Direct) सीधा सम्बन्ध केवल अवतारों का ही होता है। अन्य जीवों का चाहे वह योग भ्रष्ट हों या साधारण जीव हों, सद्गुरु द्वारा (Indirect) ही परमात्म तत्त्व से योग हो सकता है। और अनात्म पदार्थों शरीर, धन, सम्पत्ति आदि से मन की वृत्ति का जब तक वियोग नहीं होता, तब तक योग प्राप्ति की सम्भावना स्वप्नवत् है। वियोग तथा वैराग्य का अर्थ एक ही है। जिसको साधारणतया त्याग कहते हैं। इष्ट चरणों में अपने आपका आत्म-समर्पण ही पूर्ण त्याग है।

समर्पण रूपी त्याग का वास्तविक रहस्य है, किसी महान शक्ति को अपने लोक परलोक की जीवन सफलता के कार्यों में सम्मिलित कर लेना। ऐसे आत्म-समर्पण कर देने वाले निष्काम कर्मयोगी को गुप्त रूप से सदैव सहायता प्राप्त होती रहती है।

श्री स्वामीजी के उपदेश

मनुष्य जब तामसी प्रकृति वाले पुरुषों से मिलकर उनके विचारों से प्रभावित हो जाता है, तो उसके अन्तःकरण में तमोगुण की भावनाओं के अङ्कुर प्रादुर्भूत होते हैं और वह भावनाएँ शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग में फैलकर जीव को विवश कर देती हैं और वह पाप, आलस्य, प्रमाद, राग-द्वेष के रङ्ग में अनर्थ करने लगता है। जिस प्रकार (Action) अर्थात् कर्म होता है। वैसा ही फल होने लगता है और जीव अपने आपको विविध दुःखों में एक दिन घिरा हुआ पाता है।

जब मनुष्य का अन्तःकरण राजसी प्रकृति और ऐसे लोगों के विचारों से प्रभावित होता है तो उसके हृदय में लोभ, मान और पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा बलवती होकर उसके शरीर और इन्द्रियों से स्वार्थ और कामना से भरपूर कर्म होने लगते हैं। अब जीव भी अपनी कामनाओं के जाल में जकड़ा हुआ बारम्बार इसलिए जन्म लेता है कि शुभ अशुभ सकाम कर्मों का फल भोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नियम के आधार से जीव के मन में जब सतोगुण का बल होता है जिसका मूल सत्सङ्ग सत् शास्त्र का अध्ययन तथा विचार, साधु सेवा और निष्काम कर्म है। तो जीव एकान्त और वैराग्य निरभिमान व निष्काम सेवा का प्रत्यक्ष नमूना बन जाता है। ऐसा जीव धन्य है। उसके फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व संसार में सुख रूप से प्रकट होता है। वह ज्ञान के कोष का स्वामी बन जाता है। सत् तथा भक्ति का स्रोत उसके भीतर से वह निकलता है जिसके द्वारा कई पुण्यात्मा पवित्र हो जाते हैं।

ज्ञानी और भक्त के मन और शरीर प्रारब्ध और प्रकृति के वश होकर संसार में कर्म करते रहते हैं। चूँकि इसकी चेतना इनसे ऊपर है इसलिए ऐसे पुरुष की आत्मा को दुःख सुख कष्ट नहीं देते। क्योंकि उसका सम्बन्ध अब ईश्वर से है और वह ऊँची उड़ान कर रही है। अब वह किसी कर्म और उसके फल में लिप्त नहीं हो सकती।

इसी प्रकार तुरीया अवस्था अथवा परमात्मा तक पहुँची हुई चेतना जागृत काल के सांसारिक सुख दुःखों की चिन्ता और मोह में ग्रसित नहीं रहती। क्योंकि अब दुनिया और उसका प्रभाव ऐसा ही निष्फल और असार है, जैसे जाग उठने पर स्वप्न का संसार ही तुरीया में पहुँचकर भी संसार की गाथा उसे स्मरण रहती है और उसको वह ऐसे दुहराता रहता है जैसे स्वप्न से उठा हुआ मनुष्य स्वप्न की कहानी को सुनता या सुनाता है।

आह! कैसा निराला जादू है।

बस मन की हार जीत का स्थान यही मनुष्य देह है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। यदि नाम रूप संसार में तेरे मन की वृत्ति अटक गई है, तो तू हार चुका है। यदि वृत्ति ऊपर सत् चित् आनन्द परमात्मा तक जा पहुँची है, तो यही तेरी जीत है। देख संग्राम का बिगुल बज चुका है शेष सामान की परवाह न कर अपनी ढाल और तलवार को सँभाल। अगर तेरी जीत होगई तो शत्रु का सामान भी तेरा हो जावेगा। अगर हार हो गई तो तेरा सब कुछ छीन लिया जावेगा। इसी तरह ऐ प्राणी! चेत, जाग, विचार और सत्संग की तलवार और ढाल हाथ में पकड़ शेष सब कुछ छोड़ सबको पीछे रह जाने दे भय मत कर अगर तूने अज्ञान, मूढ़ता और पाँचों शत्रुओं को जीत लिया तो सुन और अच्छी तरह से कान लगा कर सुन, माया के सब पदार्थ और त्रिलोकी के सुख तेरे पाँव चूमेंगे देवताओं में तेरी जय जयकार होगी।

जैसे एक सेना अपने शत्रु से मुक़ाबला करती हुई परास्त हो जाती है, तो उसका सब गोला बारूद शत्रु के हाथ लग जाता है। अब बारूद उलटा उसी सेना पर बरसने लग जाता है, जिसने उसे बनाया था। इसी तरह मनुष्य दुनियाँ का साजो सामान बनाता है और अपनी सम्पूर्ण शक्ति ख़र्च करके उसे अपनाता और सजाता है किन्तु जीव जब मन से हार खा जाता है और मन उसे जीत लेता है तो यह सुख-सामान छीन लिया जाता है और सिवाय दुःख और दर्द के कोई उसका साथ नहीं देता। आशक्ति और मोह का गोला उसके जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देता है।

अमेरिका वाले कहते हैं हम एक वर्ष में ३५००० हज़ार टैंक तैयार करेंगे। ऐसे ही रूस कहेगा कि मैं ५० हज़ार टैंक बनाऊँगा। इसी प्रकार चीन, भारतवर्ष और फिर पाकिस्तान में यह रोग फैल सकता है। सब देशों की शक्ति आज युद्ध की ओर तनी हुई है। परन्तु ऐ दुनियाँ के राजा महाराजाओ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रजागण! स्मरण रखो और राम के वचनों पर ध्यान दो कि जब तक आप पवित्रता, ज्ञान और आत्मिक शान्ति की प्राप्ति न करेंगे संसार की कोई शक्ति आपको सुख और जीत न दे सकेगी। कोई भी देश, जाति तथा घर तब तक सुखी और प्रसन्न चित्त न हो सकेगा जब तक वह (यूनिवर्सल लव) प्रेम शान्ति और न्याय रूपी देवता के आगे सिर नहीं झुका देता।

आज राशन की कमी है। निर्वाह नहीं होता। विश्व युद्ध छिड़ गया तो भारत कैसे सुखी होगा। स्वामी राम का फरमान है और उनकी चेतावनी भी है कि ऐ भारतवासियो! ज्ञान के प्रकाश में जाग उठो। आँखें खोलो, सत्य की शक्तियों का आदर और सन्मान करो। भारतवर्ष इन्द्रपुरी (स्वर्ग) बन जावेगा। भारत सुखों का जन्मदाता बनकर अपनी शान में सबसे ऊँचा होगा।

आश्रम समाचार

नियमानुसार फ़र्वरी का सत्सङ्ग आश्रम में ५ तारीख को हुआ। इस मास में बहुत से प्रेमी भक्त श्री पूज्यवर स्वामीजी को अपने-अपने स्थान पर ले जाते रहे और सत्सङ्ग होता रहा।

हमने फ़र्वरी के राम सन्देश में वचन दिया था कि श्री स्वामी जी के उपदेशामृत का कुछ भाग सभी सज्जनों को पत्रिका द्वारा भेजा जावेगा। इसका पालन करते हुए हम आपकी सेवा में श्री स्वामीजी के उपदेशों का कुछ भाग भेज रहे हैं। आशा है कि सभी स्त्री-पुरुष इससे लाभ उठायेंगे।

४ मार्च को सत्सङ्ग आश्रम में ६-३० से ११-३० तक होगा। पूर्ववत् बसें सत्संगियों को आश्रम पर लायेंगी।

सैक्रेटरी
श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम
राजपुर, देहरादून

प्रश्नोत्तर

प्र० नं० १—माया का स्वरूप क्या है? उत्तर—नाम रूप जो जड़ और परतन्त्र है वही माया है।

प्र० नं० २—ब्रह्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर—अस्ति, भाति, प्रेय जो चेतन और स्वतंत्र शक्ति इस जगत् में है, वही ब्रह्म या परमात्मा है।

प्र० नं० ३—वेदान्त सिद्धान्तानुसार जगत् किससे उत्पन्न है?

उत्तर—मन से, मन ही माया या जगत् है।

प्र० नं० ४—मेरा जीवन संसार में किस प्रकार सुखी हो सकता है?

उत्तर—पाप रहित स्व-धर्म (कर्त्तव्य) पालन करने से।

प्रश्न नं० ५—मुझे नित्य सुख की प्राप्ति किस तरह हो सकती है? और इन वासनाओं से कैसे छुटकारा हो, या मेरी इच्छायें कैसे पूर्ण हो सकती हैं?

उत्तर—सुख स्वरूप परमात्मा में अभेद रूप हो जाने से नित्य सुख की प्राप्ति हो सकती है, सर्व शक्तिमान् परमात्मा में अपने अस्तित्व को मिलादो और अपनी इच्छा को परमात्मा की इच्छा के आधीन करदो। केवल यही एक उपाय है इच्छा से छुटकारा पाने और इच्छाओं के पूर्ण करने का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

جگیاسو دنیا کے مخمصوں سے گھبرایا ہوا دنیا کو الوداع کہہ کر ایکانت مقام کی تلاش میں وہاں آپہنچا۔ ایسے سہاونے نظارہ کو دیکھ کر سوچا کہ یہاں بیٹھ جاؤں۔ شاید یہاں ہی دل بہل جاوے۔

دنیا کی محفلوں سے اکتا گیا ہوں یارب
کیا لطف انجمن کا جب دل ہی بجھ گیا ہو

دل تو بہل جاتا۔ مگر تفکراتِ دنیا نے جو اودھم مچا رکھا تھا۔ پھر ماضی اور حال کے طوفانی سمندر میں غوطہ لگایا اور وہی کلفتیں شروع ہوگئیں۔ جن سے جان بچا کر بھاگا تھا۔ اب کہاں پناہ لوں۔ ایسا اچھا نظارہ۔ مگر اس دل کی پریشانی اور سوزِ نہانی کا بھی کچھ علاج ہے۔ ہے ایشور ظاہری کلفتوں کے مٹانے کو تو یہ پرفضا مقام نہایت ہی موزوں اور اعلیٰ ہے مگر کوئی ایسا گوشۂ عافیت بھی ہے۔ جہاں اندرونی تشویشوں سے نجات پاسکوں کاش کوئی ایسا محفوظ مقام ہوتا کہ افکار و آلام کا لشکر اس کے پاس پھٹکنے نہ پاتا۔ دائمی یکسوئی اور شانتی میں کوئی خلل انداز نہ ہوتا۔ اسی سوچ میں ہی تھا کہ باغ کی ایک طرف سے کچھ گانے کی آواز آئی۔

پجاری اپنی پوجا میں لاگ
ایسا اَدبھت ٹھاکر دوارا ؛ جس کے اندر ٹھاکر نیارا
جہاں چلو وہاں چلتا سارا ؛ جتنا ہلکا اتنا بھارا
ایسے کو نہ تیاگ ۔ پجاری اپنی پوجا میں لاگ
چلا چل تو اس کے اندر ؛ نظر پڑے گا پھر اک بندر
بندر دکھلائے گا اک مندر ؛ جا میں بیٹھا شام ہے سندر
ایسے کو نہ تیاگ پجاری اپنی پوجا میں لاگ

وہ سجن ان شبدوں کو سن کر چونک پڑا۔ حیران ہو کر سوچنے لگا کہ میں تو ایسے آنند کی تلاش میں باہر سرگرداں تھا۔ اور مارا مارا پھرتا تھا۔ لیکن یہ غیبی آواز کہاں سے آئی۔ جو کہہ رہی ہے "اپنی پوجا میں لاگ" دیوانہ وار دوڑا۔ اور جس طرف سے یہ آواز آرہی تھی۔ فوراً وہاں پہنچا، پہنچتے ہی دیکھا کہ ایک سنیاسی گیروا وستر دھارن کئے میٹھے میٹھے سوروں میں کچھ گا رہے ہیں۔ ان کا بشاش نورانی چہرہ شاہد ہے کہ تسکین ابدی اور سرور دائمی کا مسکن ہے تو انہیں کا دل ہے۔ بے اختیار پرنام میں سر جھک گیا۔ بیٹھنے کی آگیا چاہی۔ مہاتما نے بیٹھنے کا اشارہ کیا۔ اور مسکرا کر بولے۔

(باقی آئندہ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اور دیوتاؤں میں تیری جے جے کار ہوگی۔

جیسے ایک فوج اپنے دشمن سے مقابلہ کرتی ہار جاتی ہے۔ تو اس کا سب گولہ۔ بارود دشمن کے ہاتھ لگ جاتا ہے۔ اب وہ بارود اُلٹا۔ اُسی فوج پر برسنے لگ جاتا ہے۔ جس نے اسے بنایا تھا۔ اسی طرح انسان دنیا کا سارا سامان بناتا ہے۔ اور اپنی ساری شکتی خرچ کر کے اسے اپناتا اور سجاتا ہے۔ لیکن جیو جب من سے ہار کھا جاتا ہے من اُسے جیت لیتا ہے۔ تو یہی سکھ سامان چھین لیا جاتا ہے۔ اور سوائے دکھ اور درد کے کوئی انس کا ساتھ نہیں دیتا۔ آسکتی اور موہ کا گولہ اس کے جیون کو نشٹ بھرشٹ کر دیتا ہے۔

امریکہ والے کہتے ہیں۔ ہم ایک سال میں ۳۰ ہزار ٹینک (Tank) تیار کریں گے۔ ایسے ہی روس کہے گا کہ میں ۵۰ ہزار ٹینک بناؤں گا۔ ایسے ہی چین۔ ہندوستان اور پھر پاکستان میں بھی یہ مرض پھیل سکتا ہے۔ سب دیشوں کی شکتی آج لڑائی کی جانب متوجہ ہے۔ لیکن اے دنیا کے بادشاہو اور باشندو یاد رکھو۔ اور رام کے الفاظ پر غور کرو۔ کہ جب تک پوترتا۔ گیان۔ اور آتمک شانتی کی آپ پراپتی نہ کریں گے دنیا کی کوئی شکتی آپ کو سکھ اور جیت نہ دے سکے گی۔ کوئی بھی ملک۔ قوم۔ جاتی۔ گھر تب تک شاد اور سکھی نہ ہو سکے گا۔ جب تک وہ (Universal Love) پریم۔ شانتی اور انصاف روپی دیوتا کے آگے سر نہیں جھکا دیتا۔

آج راشن کی کمی ہے۔ گزارہ نہیں ہوتا۔ (World war) چھڑ گئی تو بھارت کیسے سُکھی ہوگا۔ سوامی رام کا فرمان ہے۔ اِن کی یہ چیتاونی ہے۔ کہ اے بھارت واسیو گیان کے پرکاش میں جاگ اٹھو۔ آنکھیں کھولو۔ ستیہ کی شکتیوں کا آدر اور سنمان کرو۔ یہ بھارت اندر پوری سورگ بن جاوے گا۔ بھارت سکھوں کا جنم داتا بن کر اپنی شان میں سب سے اونچا ہوگا۔

اوم تت ست

ست۔ چت۔ آنند

(از شری دیوان چند شرما۔ الہ آباد)

گنگا کا کنارہ۔ صبح کا سہاونا وقت۔ بسنت رُت۔ موسم خوشگوار۔ ہوا میں اعتدال۔ قدرتی باغ و بہار کا نظارہ۔ جابجا چھوٹی خوشنما پہاڑیاں۔ سبزے اور بیل۔ بوٹوں سے لدی گویا سبز پریوں کا منظر پیش کر رہی تھیں پہاڑیوں کے دامن میں اونچے اونچے تناور درخت گویا من کے تپسوی صفیں باندھے پہاڑی ندی کے پانی کی سریلی صدائیں شوق سے کان لگائے سنتے اور وجد میں آ آ کر سر ہلاتے تھے ہوا کے نرم جھونکوں کے ساتھ جنگل کے رنگا رنگ پھولوں اور پتیوں کی خوشبو بھک بھک آ رہی تھی۔ جس کی مہک سے روح راحت پاتی تھی۔ ایسے سمے میں ایک

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

یعنی کرم ہوتا ہے۔ ویسے ہی (reaction) یعنی پھل ہونے لگتا ہے۔ اور جیو اپنے آپ کو کئی قسم کے دکھوں میں ایک دن گھرا ہوا پاتا ہے۔

جب منشیہ کا انتہ کرن راجسی پرکرتی اور ایسے لوگوں کے زیر اثر ہوتا ہے۔ تو اس کے دل میں لوبھ مان اور پدارتھوں کی پراپتی کی خواہش زبردست ہو کر اس کے اعضا اور قویٰ سے سوار تھ اور کامنا سے بھرپور کرم ہونے لگتے ہیں۔ اب جیو بھی اپنی کامناؤں کے جال میں جکڑا ہوا بار بار اس لئے جنم لیتا ہے کہ شبھ اشبھ سکام کرموں کا پھل بھوگے۔

اس نیم کے آدھار سے جیو کے من میں جب ستوگن کا زور ہوتا ہے۔ جس کا مول ست سنگ بست شاستر کا وچار۔ سادھو سیوا۔ اور نشکام کرم ہے۔ تو جیو ایکانت اور ویراگ۔ نرابھمان و نشکام سیوا کا پرتیکش نمونہ بن جاتا ہے۔ ایسا جیو دھنیہ ہے۔ اس کے پھل اس کی ہستی سنسار میں سکھ روپ سے پرگٹ ہوتی ہے۔ وہ گیان کے خزانہ کا مالک بن جاتا ہے۔ ستیہ اور بھگتی کا چشمہ اس کے اندر سے بہہ نکلتا ہے۔ جس کے ذریعہ کئی بنیہ آتما پوتر ہو جاتے ہیں

(۲) گیانی اور بھگت کے من اور شریر پراربدھ اور پرکرتی کے وش ہو کر دنیا میں کرم کرتے رہتے ہیں۔ چونکہ اس کی چیتنا ان سے اوپر ہے۔ اس لئے ایسے پرش کی روح کو دکھ۔ سکھ۔ تنگ نہیں کرتے۔ کیونکہ اس کا ناطہ اب ایشور سے ہے۔ اور وہ اونچی پرواز کر رہی ہے۔ اب وہ کسی کرم اور اس کے پھل میں آلودہ نہیں ہو سکتی۔

(۳) اسی طرح تریا اوستھا یا پرماتما تک پہنچی ہوئی چیتنا جاگرت کال کے دنیاوی سکھوں دکھوں کی چینتا اور موہ میں گرفتار نہیں رہتی۔ کیونکہ اب دنیا اور اس کا اثر ایسا ہی بے معنی اور اسار ہے۔ جیسے جاگ اٹھنے پر سوپن کا سنسار۔ البتہ تریا میں پہنچ کر بھی دنیا کی کہانی یا (ی sto) یاد رہتی ہے۔ اور اس کو وہ ایسے دہراتا رہتا ہے جیسے خواب سے اٹھا منشیہ خواب کی کہانی کو سنتا یا سناتا ہے۔ آہاہا۔ کیسا نرالا جادو ہے۔

(۴) بس من کی ہار جیت کا ہی مقام منشیہ دیہ ہی ہے۔ من کے ہارے ہار۔ من کے جیتے جیت۔ اگر نام روپ سنسار میں تیرے من کی برتی اٹک گئی ہے تو ہار چکا ہے۔ اگر برتی اوپر ست۔ چت آنند پرماتما تک جا پہنچی ہے۔ تو یہی تیری جیت ہے۔ دیکھ لڑائی کا بگل بج چکا ہے۔ باقی سامان کی پرواہ نہ کر۔ اپنی ڈھال اور تلوار کو سنبھال۔ اگر تیری جیت ہو گئی تو دشمن کا سامان بھی تیرا ہو جاوے گا۔ اگر ہار ہو گئی تو تیرا سب کچھ چھین لیا جاوے گا۔ اسی طرح اے پرانی چیت۔ جاگ۔ وچار۔ اور ست سنگ کی تلوار۔ اور ڈھال ہاتھ میں پکڑ۔ باقی سب کچھ چھوڑ۔ سب کو پیچھے رہ جانے دے۔ خوف مت کھا۔ ڈر مت۔ اگر تو نے اگیان۔ جہالت اور پانچوں شترو کو جیت لیا۔ تو سن اور غور سے یہ خوش خبری سن کہ مایا کے سب پدارتھ۔ ترلوکی کے سکھ تیرے قدم چومیں گے۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ج) جس وشے پر تم اِن کے ساتھ ہم خیال نہیں۔ اُس پر بات چیت مت کرو۔

(د) اگر وہ تم سے کسی معاملہ میں رائے مانگیں تو مناسب رائے دیدو۔ اور اگر نہ مانگیں تو اپنی رائے اُن کے اندر مت ٹھونسو۔

(ہ) انکا ستکار ساد ھارن یا اعتدال کے ساتھ کرو۔ تاکہ وہ نہ تو اپنا اپمان سمجھیں اور نہ کمال بے تکلفی۔

(۴) اجنبیوں کے ساتھ برتاؤ کرنے سمبندھ۔

(الف) جان پہچان والوں کی طرح ان سے پیش آؤ۔ تاکہ وہ یہ نہ سمجھیں کہ ہمیں اجنبی سمجھا ہے۔

(ب) گھریلو پن ان کے ساتھ مت ظاہر کرو۔

(ج) نہ ان سے ڈرو۔ (د) نہ ان سے دھوکہ کھاؤ۔

(ہ) اور ان کے ساتھ ایسا ویوہار ہو کہ وہ یہ سمجھیں کہ تم ایک سبھیہ اور سمجھدار آدمی ہو۔

(۵) شتروؤں کے ساتھ ویوہار کرنے سمبندھ۔

(الف) دل سے شترو تا دور کردو۔ چاہے باہر سے رہے۔

(ب) جس طرح وہ تم سے پیش آویں تم ان سے مت پیش آؤ یعنی جواب ترکی بہ ترکی مت دو یعنی نفرت اور کینہ کے ساتھ ان سے بات چیت مت کرو۔ چاہے وہ تم سے گھرنا اور دویش سے بولیں

(ج) غصہ میں آکر ان سے بات چیت مت کرو۔ سمجھداری کے ساتھ ان سے بولو تاکہ وہ اپنی ہار مان جاویں۔ کیونکہ ان کی کٹھور بانی یا سخت کلامی تمہیں پریشان نہیں کرسکی۔

(د) جب آوشکتا ہو تب اُن سے ملو۔ پرنتو ان کے دھوکے میں مت آؤ۔

(ہ) ان کو حکمت عملی یا (Tactics) اور ہوشیاری سے نیچا دکھاؤ۔ نہ کہ گھرنا۔ کرودھ اور دویش سے۔ جہاں کینہ اور غصہ نہیں۔ بلکہ دیا اور دھرم ہے۔ وہیں جے اور فتح ہے۔

یتو دھرمو تتو جے

شری سوامی جی کے اپدیش

(۱) منشیہ جب تامسی پرکرتی والے لوگوں سے مل کر ان کے خیالات کے زیر اثر ہو جاتا ہے۔ تو اُس کے انتہ کرن میں تموگن کی بھاؤنا کے انکور کھلتے ہیں۔ اور وہ بھاونائیں شریر کے انگ انگ میں پھیل کر جیو کو مجبور کردیتی ہیں۔ اور وہ پاپ۔ آلسیہ۔ پرماد۔ راگ، دویش کے رنگ میں انرتھ کرنے لگتا ہے۔ جیسا (action)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ان سے نفرت نہ کرنی چاہیئے ۔ بلکہ محبت اور ہمدردی کرنا چاہیئے
محبت کا جواب محبت میں اور نفرت کا نفرت میں عموماً ملتا ہے ۔ اگر نفرت کا جواب
محبت میں دیا جاوے تو نفرت محبت میں بدل جاوے گی ۔

(ج) گھر میں گھرنا سے کرودھ نہ کرنا چاہیئے ۔ یہ کرودھ وہ اگنی ہے ۔ جو گھر کیا دیش اور سنسار کو بھسم کر دیتی ہے ۔ سدھارنے کے لئے محبت سے غصہ کرنا منع نہیں ہے ۔ لیکن محبت نفرت میں نہ بدلنے پاوے ۔

(د) پرتیک گھر میں رہنے والے کو یہ سمجھنا چاہیئے کہ یہ گھر ہمارا ہے اور اس کی اُنتی میں لگا رہنے چاہیئے اور یہ سمجھ کر کہ گھر ایک مسافر خانہ ہے ۔ یا پرتیک بھون ہے جس میں تھوڑے کال کے لئے ہم لوگ جمع ہوئے ہیں ۔ آپس میں لڑائی جھگڑا بیکار ہے ۔

(ہ) گھر کے مکھیا کو بھی اپنی اُنتی کرتے رہنا چاہیئے ۔ اگر اس کی انتی گھر والوں سے کم ہو تو وہ اس کا مذاق اڑائینگے اور اگر وہ اپنے پوزیشن ۔ طاقت یا ڈر، کے زیر کرنا چاہے گا ۔ تو لڑائی جھگڑا پیدا ہو جاویگا

جو کچھ اوپر گھر کے لئے کہا گیا ہے ۔ وہ پرتیک سنستھا یا انجمن، سماج اور دیش کے لئے بھی لاگو ہے ۔ یہ کرتی ماتا چاہتی ہے کہ سارا سنسار ایک ہو جاوے ۔ اور پرم پتا کو جو پرم پد ہے ۔ پراپت کرے ۔ اکثر دیکھنے میں آتا ہے کہ بھائی بھائی ۔ پتی ۔ پتنی ۔ پتا اور پتر میں شتروتا پائی جاتی ہے ۔ اسی شتروتا کے دور کرنے کے لئے مادیہ قدرت ایک ہی گھر میں انہیں لاتی ہے ۔ اور جب تک یہ شتروتا مترتا میں نہ بدلے گی ۔ تب تک پرکرتی ماتا اس پریورتن کے لئے یتن کرتی رہے گی ۔

سارے سنسار کے ایک ہونے کا سادھن کیول پریم ہے ۔ یہ وہ سیمنٹ ہے ۔ جو نہ کیول گھر والوں کو بلکہ سماج اور دیش کو بھی ملا کر ایک کر دیتا ہے ۔ یعنی مترتا کا بھاؤ اتپن کر دیتا ہے ۔ وید بھگوان سب سے مترتا پیدا کرنے کا اپدیش دیتے ہیں ۔ دویت یا مغائرت کے دور ہوتے ہی سنسار دکھ ساگر سے سکھ ساگر بن جاتا ہے ۔ پرنتو پریم بنا وچار یا بدھی کے موہ ہو جاتا ہے ۔

(۳) جان پہچان والوں کے ساتھ ۔ برتاؤ کرتے سمہ ہم کو نیچے لکھی باتوں پر دھیان دینا چاہیئے ۔

(الف) گھر والوں اور اجنبیوں کے بیچ کا ویوہار ہو ۔ یعنی نہ گھر والوں کا سا گھریلو پن ہو اور نہ اجنبیوں کا سا الگ سا تھلگ رہنا ۔

(ب) جو بات چیت ان سے کی جاوے ۔ وہ اچھی اور ان کے پسند یا رچی کی ہو ۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

مانوتا یا انسانیت

(گذشتہ سے پیوستہ)

ایک سبھیہ پُرش یا مہذب انسان کے شبد کم ہوں۔ پورن یا مکمل ہوں سپشٹ یا صاف ہوں۔ اور ایک بار بولے جائیں۔ بار بار کہنے کی ضرورت نہ رہے۔ جس کی بدھی شدہ یا عقل صاف ہے وہی ایسے شبد اُچارن کر سکتا ہے۔ شدہ بدھی وہی ہے جو من کے بہکانے میں نہ آوے۔ جیسا اوپر کہہ چکے ہیں۔ جب اندر سے پیار۔ تب باہر سے سداچار یا شدہ ویوہار ہوگا۔

ہمارا بیوہار کس کے ساتھ کیسا ہو اس کا جاننا بھی ضروری ہے۔

ہمیں بیوہار کرنا پڑتا ہے۔

(۱) اپنے ساتھ (۲) اپنے کنبہ والوں کے ساتھ (۳) اپنے جان پہچان والوں کے ساتھ۔
(۴) اجنبیوں کے ساتھ (۵) اپنے شتروؤں کے ساتھ۔

(۱) اپنے ساتھ ویوہار یا برتاؤ کرتے سمے ہم اپنے آپ کو دھوکا نہ دیں بدھی کا من کی اشٹد رُچی انوسار ہونا ہی اپنے آپ کو دھوکا دینا ہے۔ اروچی اور برُی رُچی کے بیچ میں شدھ بدھی ہے جس میں خود غرضی نہیں بلکہ خدا غرضی ہے یعنی سوارتھ نہیں بلکہ پرمارتھ ہے۔ یا یوں کہو سب کے بھلے میں اپنا بھلا سمجھنا۔ کیونکہ بھگوان کا نام سرب یا سرو بھی ہے۔ شدہ بدھی ہی بلا و رعایت ستیہ اور استیہ میں وویک کرتی ہے۔ یعنی حق اور باطل میں تمیز کرتی ہے۔

(۲) اپنے کنبہ والوں کے ساتھ۔ برتاؤ کرتے سمے ہمیں کمن لکھت باتوں کا خیال رکھنا چاہیئے۔

(الف) ہمارے خیالات یا بھاؤ کنبہ والوں کے بھاؤوں کو ٹھیس تو نہیں لگاتے۔ یہ اختلاف رائے یا مت کا ورودھ ہونا رواداری یا سہن شکتی سے دور ہو سکتا ہے۔

(ب) گھر کا مُکھیا یہ نہ سمجھے کہ وہ گھر والوں کی اُنتی کا اتر داتا یا ذمہ وار ہے۔ یہ کام تو پرکرتی ماتا کا ہے۔ گھر کے مکھیا کو چاہیئے کہ جیسے مالی برکش کی دیکھ بھال کرتا ہے ویسے ہی اُسے گھر والوں کی دیکھ بھال کرنا چاہیئے۔ جیسے ادھک پانی دینے سے برکش سڑ جاتا ہے اور کم پانی دینے سے سوکھ جاتا ہے۔ ویسے ہی ادھک پریم یا موہ۔ اور پریم کے ابھاؤ سے یعنی اُواپیکتا سے گھر والے نشٹ بھرشٹ ہو جاتے ہیں۔ ان کی اُنتی رُک جاتی ہے۔ اس لئے

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

کے نئے دے تھے۔ ان کی مکمل فہرست ہمارے پاس موجود نہیں ہے۔ اس لئے نویدن ہے کہ کرپا کر کے ایسے اصحاب اپنا نام ضرور لکھ کر ارسال فرماویں۔ تاکہ اگلے مہینے ان رام بھگتوں کے نام درج ہو سکیں۔

۴۔ رام پریمیوں کو علم ہوگا کہ آشرم کی بلڈنگ ۹ ستمبر ۱۹۴۸ء کو خرید کی گئی تھی۔ اس وقت وقت کی تنگی کی وجہ سے نشچے نہ ہو سکا۔ کہ بلڈنگ کس نام پر رجسٹری کرائی جاوے۔ جو ست سنگی اس وقت موجود تھے۔ انہوں نے رائے دی کہ فی الحال رجسٹری شری سوامی جی کے نام کرا دی جاوے۔ بعد میں دیکھا جاوے گا کہ کیا کرنا اُچت ہے۔ چنانچہ ایسا ہی ہوا۔ کئی مہینوں سے شری سوامی جی ذہرا رہے ہیں کہ آشرم کا بیع نامہ کسی رام کمیٹی کے نام ہونا چاہیئے۔ وہ فرماتے ہیں کہ ہم سنیاسی ہیں۔ جائداد بنانا یا دھن سنگرہ کرنا وغیرہ ہمارا دھرم نہیں ہے۔ دو ڈھائی سال تو یہ بوجھ ہم نے اپنے اوپر اٹھایا ہے۔ اب وقت ہے اور مناسب بھی ہے کہ ہم کو اس سے سبکدوش کیا جاوے اور ست سنگی کوئی کمیٹی بنا کر اس کی دیکھ ریکھ اور انتظام اپنے ہاتھوں میں لیں اور بلڈنگ کی رجسٹری بھی اُچت ڈھنگ سے کمیٹی کے نام ہو جائے۔ ساتھ ہی وہ یہ وشواش بھی دلاتے ہیں۔ کہ ہم یتھاشکت سیوا بدستور کرتے رہیں گے۔ یہ وچار ان کا کیول اصول کی بنا پر ہے۔

اس لئے ست سنگیوں سے پرارتھنا ہے کہ وہ ہمیں اپنی نیک رائے سے مستفید فرماویں تاکہ اس معاملہ کو خوش اسلوبی سے طے کیا جاوے۔

سکریٹری

شری رام تیرتھ مشن آشرم (راجپور) ڈیرہ دون

آشرم سماچار

نیم انوسار فروری کا ست سنگ آشرم میں ۴ تاریخ کو ہوا۔

اس مہینے میں بہت سے پریمی بھگت شری سوامی جی کو اپنے استھان پر لیجاتے رہے اور ست سنگ ہوتا رہا۔

ہم نے فروری کے رام سندیش میں وعدہ کیا تھا کہ شری سوامی جی کے اپدیش امرت کا کچھ حصہ میگزین دوارا پریمی بھگتوں تک پہنچایا جائیگا۔ چنانچہ وعدہ ایفائی کرتے ہوئے ہم شری سوامی جی کے اپدیشوں کا کچھ خلاصہ ہدیہ ناظرین کرتے ہیں۔ امید ہے سبھی ست سنگی اس سے لابھ اٹھائیں گے۔

مارچ کا ست سنگ ۴ تاریخ کو آشرم میں ہوگا جب دستور بسیں آوینگی۔ $9\frac{1}{2}$ بجے سے $11\frac{1}{2}$ تک ہوگا۔

سکریٹری

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ضروری اطلاع

۱۔ شری رام تیرتھ اکھل بھارتیہ ادھیاتم سمیلن

شری رام تیرتھ اکھل بھارتیہ ادھیاتم سمیلن ۱۳، ۱۴، ۱۵؍ اپریل سنہ ۱۹۵۱ء شکر، سنیچر، اتوار، تین دن کے لیے شری رام تیرتھ مشن آشرم راجپور۔ ڈیرہ دون میں ہونا قرار پایا ہے۔ یہ سمیلن اس سے قبل مرالی والہ، امرتسر، گوالیار، دہلی۔ ڈیرہ دون میں بھی ہو چکا ہے۔

سوامی رام تیرتھ۔ سوامی وویکانند۔ جگت گورو شنکر اچاریہ۔ گورو نانک دیو و دیگر رشیوں۔ اور اوتاروں نے دکھ بھرے سنسار کو جو امن اور شانتی کا راستہ دکھایا ہے۔ اس پر روشنی ڈالی جاویگی۔ اس سمیلن میں موجودہ زمانہ کے بھارتیہ وِدوان۔ آتم ودیا۔ و ادھیاتم فلاسفر اپنے انوبھو۔ دلیل اور یکتیوں سے سدھ کریں گے، کہ وِدیا سے ہی اوِدیا کا ناش ہو سکتا ہے۔ جب تک بھارت یا دنیا میں آتم سکھ روپی سورج اودے نہیں ہوتا۔ تب تک جنگ و جدل اور آفات ناگہانی سے چھٹکارا نہیں ہو سکتا۔ پرکرتی کی آسُری شکتیوں کا مقابلہ آتم بل اور آتم تیج ہی کر سکتا ہے۔

ہماری یہ پرارتھنا ہے بلکہ آپ کا کرتویہ یا فرض بھی ہے کہ آپ اس مہان برہم یگیہ میں شامل ہو کر اپنی اسنگھتا اور خودی سے بھرپور پاپوں و دوشوں کی آہوتی دیویں۔ اور تن، من، دھن سے اس اہم سمیلن کو کامیاب و سپھل بنا کر ادھیاتم ینیہ و لابھ پراپت کریں۔

سروے شامیو دانانام۔ برہم دانم وِشِشتے۔

سنسار میں جتنے بھی اُتم دان ہیں۔ ان میں سرو اتم دان (ودیا) برہم دان کہا گیا ہے۔ ہمیں آشا ہے کہ اس مہان اتم یگیہ میں آپ اوشیہ پدھاریں گے۔ اور اس کے پرتیکش ینیہ کا لابھ پراپت کریں گے اور کرائیں گے۔

۲۔ سادھنا کورس کا کچھ سروپ ماہ فروری کے رام سندیش میں دیا گیا تھا۔ جو کہ رام بھگتوں نے پڑھ لیا ہوگا۔ سادھنا کورس میں شامل ہونے والوں پریمیوں کو الگ پتر لکھدئے جاویں گے۔ جن پانچ سادھکوں کو پتر لکھے جاویں گے۔ وہ ۲۵؍ اپریل سنہ ۱۹۵۱ء شام تک آشرم پہنچ جاویں۔ تاکہ کورس ۲۶؍ اپریل برہسپت وار کو شروع ہو سکے۔ ۲۶؍ اپریل سے ۶؍ مئی تک کورس ہوگا۔

۳۔ ماہ جنوری کے رام سندیش میں لکھا گیا تھا کہ جن رام پیاروں نے ۲۵ روپیہ پہلے رام سندیش پتر کا

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

شہرۂ آفاق

حساب کی کتاب

حصہ او

پی - سی

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ضروری اطلاع

۱- شری رام تیرتھ اکھل بھارتیہ ادھیاتم سمیلن

شری رام تیرتھ اکھل بھارتیہ ادھیاتم سمیلن ۱۳، ۱۴، ۱۵ اپریل سنہ ۱۹۵۱ء شکر، سنیچر، اتوار تین دن کے لیے شری رام تیرتھ مشن آشرم راجپور- ڈیرہ دون میں ہونا قرار پایا ہے- یہ سمیلن اس سے قبل مرالی ۱۹ لہ امرتسر، گوالیار، دہلی- ڈیرہ دون میں بھی ہو چکا ہے-

سوامی رام تیرتھ- سوامی وویکانند- جگت گورو شنکر اچاریہ- گورو نانک دیو و دیگر رشیوں- اور

... ہے- اس پر روشنی ڈالی جاویگی-

... سفر اپنے انوبھو- دلیل اور یکتیوں

... ت یا دنیا میں آتم سکھ روپی سورج

... ہو سکتا- پرکرتی کی آخری

... ن برہم یگیہ میں شامل ہو کر اپنی

... من، دھن سے اس اہم سمیلن کو

... برہم دان کہا گیا ہے- ہمیں آشا

... پنیہ کا لابھ پراپت کریں گے

صحت نامہ اردو

صفحہ ۳— آخری لاین - استی کي جگہ اُنتی پڑھئے —

صفحہ ۷— سوامی جی کے اپدیش کی آخری لاین میں سورگ کي جگہ سورک چھپ گیا ھے —

صفحہ ۷— صفحہ کے نیچے سے تیسري لاین میں من کی جگہ بن پڑھئے —

صفحہ ۸— ایک جگہ پوجا کي جگہ بوچا چھپ گیا ھے — درست کرلیں —

۲- سادھنا کورس کا کچھ سروپ ماہ فروری کے رام سندیش میں دیا گیا تھا- جو کہ رام بھگتوں نے پڑھ لیا ہوگا- سادھنا کورس میں شامل ہونے والوں پریمیوں کو الگ پتر لکھ دئے جاویں گے- جن پانچ سادھکوں کو پتر لکھے جاویں گے- وہ ۲۵ اپریل سنہ ۱۹۵۱ء شام تک آشرم پہنچ جاویں- تاکہ کورس ۲۶ اپریل برہسپت وار کو شروع ہو سکے- ۲۶ اپریل سے ۶ مئی تک کورس ہو گا-

۳- ماہ جنوری کے رام سندیش میں لکھا گیا تھا کہ جن رام پیاروں نے ۲۵ روپیہ پہلے رام سندیش پتر کا

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

شہرۂ آفاق

حساب کی کتاب

ہندی و اردو

علم الحساب مکمل

و

حصہ اول - دوئم - سوئم - چہارم و پنجم اور ششم

مصنفہ

یادو چندر چکرورتی ایم - اے

سابق پروفیسر

محمڈن کالج علی گڑھ

ناشر

پی - سی - دوادش شرینی اینڈ کمپنی لمیٹیڈ علیگڑھ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ضروری اطلاع

اردو و فارسی دان اصحاب کی خدمت میں گزارش ہے کہ ہم نے کتب ذیل کو نہایت محنت و مشقت اور زرکثیر کے صرفہ سے عوام کے فائدہ کی غرض سے طیار کروایا ہے - یہ کتابیں ایسی ہیں جو اپنا نظیر نہیں رکھتی ہیں لہذا امید کیجاتی ہے کہ ضرورت مند اصحاب ان جواہرات نادرہ سے مستفید ہونگے اور پبلشرز کی محنت کی داد دینگے —

۱— اردو ہندی ٹیچر و ہندی اردو ٹیچر (Combined) یہ بات تو سب کو ظاہر ہے کہ آجکل ہر ایک باشندہ ہندوستان کو ہندی کا جاننا ضروری ہے کیونکہ عدالت میں - دفتروں میں اور اسکولوں میں ہر کام ہندی میں بحکم کانگریس گورنمنٹ ہورہا ہے - لہذا اردو دان اصحاب کی رفع تکلیف کے لئے ہم نے یہ کتاب بڑی محنت و صرفہ سے طیار کرائی ہے کہ جس کے ذریعہ سے اردو جاننے والا ایک مہینہ میں بخوبی ہندی جان سکتا ہے اسمیں ہر ایک مشکل طلب مسئلہ کا حل نہایت خوبی کے ساتھ دکھایا ہے - اور ایک زبان کے ملے ہوئے حروف کا دوسری زبان میں مقابلہ تلفظ - اوزان خط و کتابت وغیرہ وغیرہ اس خوبی کے ساتھ دکھائے ہیں کہ ایک زبان کا جاننے والا دوسری زبان کو بہت جلدی سیکھ سکتا ہے ملاحظہ شرط ہے قیمت باوجود ان اوصاف کے صرف ایک روپیہ علاوہ محصول ڈاک و وی - پی خرچ - ایک روپیہ کا منی آرڈر پیشگی آنے پر کتاب گھر بیٹھے بلا محصول ڈاک وغیرہ بھیجدی جاویگی —

۲— لغات ہیرا - یہ ایک فارسی و عربی زبان کا لغت ہے کہ جسمیں عربی و فارسی کے الفاظ کے معنی اردو میں دئے گئے ہیں - ہر ایک لفظ کا تلفظ بذریعہ اعراب دکھایا گیا ہے اور اسکے معنی وضاحت کے ساتھ دکھلائے ہیں - مشکل الفاظ کا استعمال مستند شعرا کے اشعار و دیگر محاورات کے ذریعہ سے دکھایا ہے - سائز رام سندیس اخبار کے برابر - ضخامت ۱۳۰۰ صفحہ ہے کاغذ سفید و دبیز ہے - لکھائی عمدہ - مجلد کتاب کی قیمت علاوہ محصول ڈاک صرف پانچروپیہ —

۳— لغات پی - سی - یہ اردو و فارسی لفظوں کا لغت ہے اسمیں اردو و فارسی کے الفاظ و محاورات ہیں کہ جنکے معنی تشریح و وضاحت کے ساتھ درج کئے گئے ہیں - مشکل لفظوں کا تلفظ بذریعہ اعراب اور معنی و محاوروں کا حل بذریعہ اشعار و محاورات دکھلایا ہے اسکے تتمہ میں قریب دو ہزار ہندی الفاظ و محاورات کا مطلب ردیف وار دیا گیا ہے - اسمیں قریب قریب وہ سب خوبیاں موجود ہیں جو لغات ہیرا میں ہیں - اسمیں بھی تلفظ کا استعمال دکھلایا ہے - اور تشریح کیلئے با موقعہ اشعار کا بھی استعمال کیا گیا ہے - کاغذ دبیز و سفید - لکھائی عمدہ اور کتاب مجلد ہے - قیمت علاوہ محصول ڈاک صرف تین روپیہ —

۴— Twentieth Century Urdu-English Dictionary } یہ لغت انگریزی و اردو دان اصحاب کیلئے ایک نادر تحفہ ہے اسمیں الفاظ اردو کے معنی انگریزی میں نہایت تشریح کے ساتھ دئے گئے ہیں - قیمت علاوہ محصول ڈاک دس روپیہ —

۵— جیبی ہندی کوش - اسمیں ہندی الفاظ کے معنی ہندی زبان میں دئے گئے ہیں چھوٹے سائز کی ۱۵۰۰ کے قریب صفحہ کی کتاب ہے - قیمت علاوہ محصول ڈاک پانچ روپیہ —

:o:

ملنے کا پتہ — پی سی دوادش شرینی اینڈ کمپنی امیڈی علیگڑھ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन

ले०:—श्री मेलाराम खन्ना (इलाहाबाद)

बैठ अकेला दो घड़ी, कभी तो ईश्वर ध्याया कर।
मन मन्दिर में मूर्खा, झाड़ू रोज़ लगाया कर॥
सोने में तो रात गुज़ारी, दिन भर करता पाप रहा।
इस तरह बरबाद प्राणी, करता अपना आप रहा॥
एक घड़ी तो प्यारया, सत्संग में भी जाया कर॥ बैठ०॥
पास तेरे जो दुखिया भाई, तुमने मौज उड़ाई क्या।
भूखा प्यासा पड़ा पड़ोसी, तुमने रोटी खाई क्या॥
पहले सब को पूछ कर, पीछे भोजन खाया कर॥ बैठ०॥
बारम्बार जनम का मिलना, बच्चों वाला खेल नहीं।
जनम जनम के शुभ कर्मों का, होता जब तक मेल नहीं॥
नर तन पाने के लिये, उत्तम कर्म कमाया कर॥ बैठ०॥
देख दया उस परमेश्वर की, वेदों का जिस ज्ञान दिया।
सोच करे जो देख प्राणी, इतना जिस कल्याण किया॥
हरि ओ३म् है नाम प्रभू का, प्रात समय उठ गाया कर॥ बैठ०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान की होली

(भजन)

(राम वर्षा से)

रे कृष्ण कैसी होरी तैंने मचाई, अचरज लख्यो न जाई ।
असत सत कर दिखलाई, रे कृष्ण कैसी होरी तैंने मचाई ॥ टेक ॥

एक समय श्री कृष्ण के मन में, होरी खेलन की आई ।
एक से होरी मचे नहिं कबहुँ, यातें करूँ बहुताई ॥
यहो प्रभु ने ठहराई, रे कृष्ण कैसी होरी तैंने मचाई ॥ १ ॥

पाँच भूत को धातु मिलाकर, अंड पिचकारी बनाई ।
चोदह भुवन रंग भीतर भरकर, नाना रूप धराई ॥
प्रगट भये कृष्ण कन्हाई, रे कृष्ण कैसी होरी तैंने मचाई ॥ २ ॥

पाँच विषय की गुलाल बनाकर बीच ब्रह्मांड उड़ाई ।
जिस जिस नैन गुलाल पड़ी, उसकी सुध बुध बिसराई ॥
नहीं सूझत अपनाई, रे कृष्ण कैसी होरी तैंने मचाई ॥ ३ ॥

वेद-अंत अंजन की शलाका, जिसने नैनन में पाई ।
तिसका ही ठीक सब तम नाश्यो, सूझ पड़ो अपनाई ॥
होरी कछु बनी न बनाई, रे कृष्ण कैसी होरी तैंने मचाई ॥ ४ ॥

—:❀ ❀:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printed by M. Ram Narayan Vedik Dharam Bhushan at the "Hira Lal Printing Works," Aligarh.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

राम सन्देश

सर्वं खल्विदम् ब्रह्म

ॐ अयमात्मा ब्रह्म

प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म

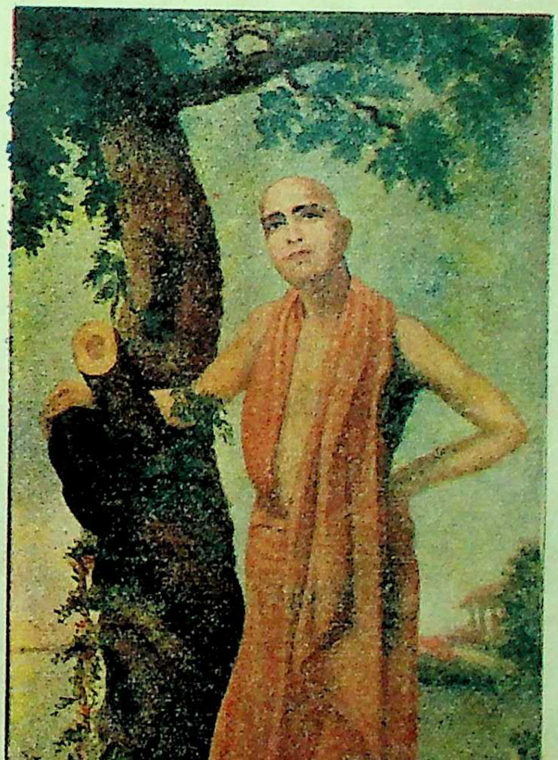

तत्त्वमसि

अहम् ब्रह्मास्मि

श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम
राजपुर, देहरादून

सितम्बर, अक्टूबर १९५१
वार्षिक मूल्य ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम् । गोविन्दम् भज मूढमते ॥

सम्पादक :—
हरिओ३म् जी
सेवक, श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम,
(राजपुर) देहरादून ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. राम की जीवन-ज्योति ...	१
२. (रामहृदय) Heart of Rama ...	४
३. उपनिषद् ज्ञान	६
४. श्री शंकराचार्य कृत आत्म-बोध ...	८
५. कुल्याते राम से ...	११
६. असंग और साक्षी होना	१३
७. स्वामी राम से अमेरिका में किये हुए प्रश्न का उत्तर	१७
८. आत्म-दान	१६
९. सर्व में ब्रह्म का दर्शन (साक्षात्कार) ...	२१
१०. संसार में सुखी कैसे बनें	२४
११. अन्तःकरण का सुधार तथा आत्म-ज्ञान ...	२६
१२. अयाचना	२८
१३. शरीर रहस्य	३१
१४. प्रारब्ध और पुरुषार्थ	३४
१५. सर्व में ब्रह्म का दर्शन (साक्षात्कार) ...	३६
१६. आश्रम-समाचार	४०
१७. (इङ्गलिश लेख)	४०—४४
१८. उर्दू-लेख	१—१६
१९. भजन कवर टाइटिल के तीसरे व चौथे पृष्ठ पर	

सेठ फूलचन्द द्वादशश्रेणी
गवर्निङ्ग डाइरेक्टर,
पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड कं०, लि०,
पब्लिशर्स ऐण्ड बुकसेलर्स अलीगढ़ ने
अपने प्रेस में छपवाया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते॥

ओ३म्

जाग्रदादि त्रयोन्मुक्तं जाग्रदादिमयं तथा।
ओङ्कारैक सुसंवेद्य यत्पदं तन्नमाम्यहम्॥

राम सन्देश

द्वितीय वर्ष | सितम्बर, अक्टूबर १९५१ | अङ्क ९, १०

राम की जीवन-ज्योति

[श्री सरदार पूरनसिंह द्वारा]

[गतांक से आगे]

सन् १८९३ में शिकागो में होने वाले सर्व-धर्म-सम्मेलन से हमें संसार के अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्तियों का पता चला। इनमें पूर्वीय देशों के कलकत्ता निवासी श्री स्वामी विवेकानन्द, लंका निवासी श्री अंगारिक धर्मपाल, जापान के श्री कंजो हिराई और जेंशिरो नगूची सर्वाधिक विख्यात हुए। दूसरी बात यह हुई कि समस्त संसार के धार्मिक नेता उत्सुकता से सोचने लगे कि यदि इस सम्मेलन का कोई दूसरा अधिवेशन हो, तो अच्छा हो! किन्तु यह दुःख की बात है कि उस अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर संसार में फिर कभी वैसा धर्म सम्मेलन नहीं हुआ।

भारतवर्ष में एक घोषणा प्रकाशित हुई थी कि एक ऐसे ही अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन टोकियो में होगा। यह घोषणा जापान के स्वर्गीय श्री ओकाकुरा के कुछ बंगाली मित्रों ने की थी। शायद यह घोषणा समय से पहले प्रकाशित हो गयी थी। उन दिनों श्री ओकाकुरा जल्दी में किसी कार्यवश भारतवर्ष आये हुए थे। संभव है उन्होंने अपनी ऐसी इच्छा स्वर्गीय आदरणीय निवेदिता बहिन से प्रकट की हो और जापान लौटने पर वे शायद उसके लिए प्रबन्ध भी करने वाले हों, किन्तु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री ओकाकुरा तो अभी कलकत्ते में ही थे कि टोकियो के समाचार-पत्रों ने इस समाचार को उड़ाया और अपने यहाँ उसका विरोध भी किया। चूँकि श्री ओकाकुरा स्वयं जापान में न थे, अतएव जापान में उनकी अनुपस्थिति के कारण किसी ने उसका स्वागत न किया।

स्वामी रामतीर्थ उन दिनों टेहरी गढ़वाल के आसपास रहते थे। वे रात दिन निरन्तर ध्यान में डूबे रहते थे। वे वैदान्तिक चेतना के एक बन्धन-हीन अल्हड़ आह्लाद का उपभोग कर रहे थे। उनकी अधिकांश कविताएँ इसी समय लिखी गई थीं किन्तु सर्वोत्तम कविता तो वे स्वयं हो रहे थे। वे प्रायः मौन रहते, किन्तु जो उनसे भेंट करने जाते, उन्हें उनके पास परमात्मा की सुगंध आती। उनकी आँखें ज्ञान के विशुद्ध प्रकाश से चमकती रहतीं। उनके मुखमण्डल पर सदा एक अत्यन्त उच्च पवित्रतम भावना का निर्मल तेज बरसता रहता। अपने पैरों तले की घास को वे अनेक प्यार भरे नामों से पुकारते, और न जाने कितनी गंभीर मधुर भावना से उसका स्पर्श करते। वह गंगाजी को मेरी गंगी कहते, यहाँ तक कि उन्होंने अपनी पेंसिल क़लम व काग़ज़ को भी मीठे-मीठे नाम दे रखे थे और इस प्रकार अपनी ही सृष्टि के सहवास में समय बिताते थे। मानों उनके यहाँ आनन्द की भीड़ मची रहती थी, आत्मा की कम्पनशील मधुरता से सभी आनन्द अपने आप उनके पास खिंचे चले आते थे। वे आनन्द को नहीं खोजते थे, वरन् आनन्द स्वयं उनसे साहचर्य की प्रार्थना करता था।

ऐसी स्थिति में वे काम-काज को एक ओर परे फेंक हिरण की भाँति चारों ओर दौड़ने लगते, कभी हिमशिलाओं पर चढ़ते, कभी हिमालय की गुफाओं में घुस जाते, कभी नदियों में नहाते रहते, कभी अँधेरी रात्रियों में ही सड़कों पर दौड़ने लगते। भय और मृत्यु का सामना करते, जैसे कोई शारीरिक व्यायाम कर रहे हों, उन्हें अपने लिए कुछ न चाहिए था। उनके आनन्द ही उनके लिये देव रूप बन गये थे। वे उन्हीं के साहचर्य में मस्त रहते थे। अनेक बार लोगों ने उन्हें आनन्द से आत्म-विस्मृत, अर्द्ध-चैतन्यावस्था में देखा। बिना कहे सुने चुपचाप कभी किसी शून्य गुफा में जा पड़ते और बिना कुछ खाये पिये लगातार कई दिनों तक उसी में पड़े रहते। कभी गंगा तट पर बैठ जाते जहाँ आनन्दाश्रु अपने आप उनके नेत्रों से झरने लगते। इस त्रिवेणी की याद से उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। तीन नदियों का संगम, दो उनके नेत्रों के निर्झर और एक आकाश के नेत्र को गंगा तीनों का सम्मिलन टेहरी में होता था।

आदमी उनके पास जाते थे। किन्तु उन्हें आदमियों के पास जाने की इच्छा न थी। तत्कालीन टेहरी महाराज उनके बड़े भक्त थे। राजा साहिब प्रायः स्वामी जी के दर्शनार्थ आते थे। किन्तु स्वामी जी अपने उल्लासमय दीर्घ-अट्टहास और अपनी काव्यधारा के उज्ज्वल प्रकाश से राजा की इस श्री सम्पन्न भेंट के अवसर को उतना ही महत्त्व देते थे जैसे उन्हें किसी उत्तम अश्व को देखने का निमन्त्रण मिला हो। लाहौर छोड़ने के बाद तीन वर्ष के हिमालय प्रवास का अधिकांश समय प्रकृति के नंगे वक्षस्थल पर ही बीता और इस प्रकृति देवी के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके परिचय की घनिष्ठता इतनी अधिक बढ़ गयी कि जब वे नीचे मैदानों में उतरे, तो वे पूर्णतः उसके गुह्यतम रहस्य से भरे हुए थे और आत्म-विश्वास के बल पर वे प्रायः कहा करते थे कि प्राकृतिक तत्त्व तो मेरे मित्र हैं, प्रकृति देवी स्वयं मेरी आज्ञाओं की प्रतीक्षा में रहती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा शरीर है, नदियां मेरी नसें हैं, पहाड़ मेरी हड्डियाँ, जैसे मेरा हाथ शरीर के किसी हिस्से को खुजलाने के लिए अपने आप चला जाता है, उसी प्रकार प्रकृति मेरी आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तत्पर रहती है। हिमालय के शिखरों पर बर्फ़ के तूफ़ान, जहाँ दूसरे बच नहीं सकते, मेरे लिए सुकोमल स्वच्छ मखमली चादर बिछा देते हैं, जिससे पैर रखने में कोई कष्ट न हो। चट्टानों पर मोजा या जूता पहन कर चलना पाप, घोर पाप है। नंगी भूमि के स्पर्श से नंगे पैर में सर्वज्ञता उत्पन्न हो जाती है। मेरे माँस को शिलाओं के माँस से स्पर्श करना होगा। पूर्ण रूप में एक दूसरे को पूर्ण समझने। जब हम लोग हृदय से हृदय मिला कर दूसरे से बातें करते और एक दूसरे को समझते हैं, तो हमारा प्रेम चुपचाप पृथ्वी के भीतर चलता हुआ दोनों वक्षस्थलों में प्रवेश कर जाता है। खुदी की 'ई' गिरा देने से मनुष्य ख़ुदा हो जाता है। आओ, इस 'ई' को बहती गंगा में बहादें।

नर नारायण है, यदि उसके हृदय का प्रेम ऊपर ईश्वर की ओर उठता है और ईश्वर के आशीर्वाद के साथ पुनः एक दूसरी धार में उसके पास लौट आता है। मैं शिव हूँ, मालाबार और कोरोमण्डल मेरी दो टाँगें हैं। राजपूताने की मरुभूमि मेरा वक्षस्थल है, विन्ध्याचल पर्वत मेरी कमर है, पूर्व और पश्चिम ओर मैंने अपनी बाहें फैला रखी हैं। हिमालय मेरा जटाजूट सम्पन्न सिर है और मेरी ही जटाजूटों में वह शुद्ध पवित्र निर्मल गंगा लहराती फिरती है। मैं भारतवर्ष हूँ, मैं मनुष्य हूँ, पशु हूँ, पक्षी हूँ। ऐसी थी हमारे राम की भाषा।

उनकी भाषा में यदि एक ओर उनके आँसुओं की वर्षा है, तो दूसरी ओर उनके अट्टहास का प्रखर प्रकाश। इसमें यदि शान्त और गंभीर ध्यान और समाधि का तुषारपात है, तो उदासी-भरी पतझड़ की सूखी पत्तियों का बवण्डर भी है, जो उन पत्तियों को हवा के झोंकों की इच्छा के अनुसार इधर उधर चारों ओर बिखेर रहा है। उन्होंने कहा था लोग मेरे निरन्तर परिश्रम की यातना को नहीं देख पाते, जो मुझे फूलों से हरे भरे वसन्त की प्रफुल्लता खिलाने में मेरी जड़ों को करना पड़ता है। संसार केवल मेरे आनन्द और अह्लाद में हाथ बटाना चाहता है। वह मेरी घोर वेदना को नहीं जानता।

उनके हृदय में एक संदेश था, जिसे वे देना चाहते थे, उनके पास आनन्द का भण्डार था, जिसे वे सारे संसार में बाँटना चाहते थे। सत्य की लगन भीतर-ही-भीतर उनके हृदय में धड़क रही थी, जैसीकि किसी अवतार में अपनी कार्य-सिद्धि के लिए अनंत बेचैनी होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन श्री आर० ऐस० नारायण स्वामी द्वारा स्वामी राम के चुने हुए अमूल्य वचनामृत

"Heart of Rama"

Instead of wasting the Precious Ghee into the mouth of artificial Five, Why not offer even hard crusts of day bread to the castric Five, Which is eating up the Flesh and bones of; millions of Starving but living & Narayans.

रामहृदय—अपने हाथ से जलाई हुई अग्नि के मुख में उस बहुमूल्य घी को व्यर्थ नष्ट करने के स्थान पर आप सूखी रोटी के छिलके उस जठराग्नि के अर्पण क्यों नहीं करते, जो कि भूखे मरते किन्तु जीवित लाखों नारायणों के हाड़-माँस को खाये जा रही है।

व्याख्या—तात्पर्य यह है कि जहाँ पर यज्ञ हवन द्वारा घी आदि खाद्य पदार्थों को अग्नि की भेंट करना शास्त्रीय कर्मकाण्ड की दृष्टि से पुण्य का कारण है। इससे भी अधिक लाभ क्षुधाग्रस्त भूखे और रुग्ण प्राणियों की सहायता और दान में निश्चित है। (Too much of every thing is bad) अति सर्वत्र वर्जयेत्। इस स्थल पर स्वामीजी ने यज्ञ हवनादि का खण्डन नहीं किया, बल्कि जठराग्नि को भी अग्नि कुण्ड की दृष्टि से देखा है। यह शरीर एक कुण्ड है और भूख, प्यास रोगादि का दुःख अग्नि ताप है, जिसमें जीवात्मा बोल-बोलकर अन्नादि की आहुतियों का इच्छुक है। यह चेतन-नारायण अग्नि, वायु आदि देवताओं से महान् माना गया है। यदि दरिद्रनारायण की सेवा न की जाए और केवल अग्नि आहुतियों को ही अपना परम लक्ष्य मानकर खाद्य पदार्थों को स्वाहा किया जावे, तो यह हवन यज्ञादि अज्ञान और मूर्खता के चिह्न ही को प्रकट करेंगे। इस रहस्य को भली भाँति विवेक-दृष्टि से अपनाते हुए सेवा-धर्म जितना भी बन सके करना आवश्यक धर्म है। अपने धन-धान्य से प्राप्त खाद्य-सामग्री का बलिदान प्राणिमात्र के लिए सदैव करते रहना ब्रह्म-यज्ञ होगा। यही चेतन की सेवा और सहायता हो सकती है, जिसका फल भी चैतन्य और जीवित रूप से शीघ्र प्राप्त होना आवश्यक है। भारतीय हिन्दुओं को उदासता-परायण इस तथ्य को आचरण में लाने से ही कल्याण की सम्भावना करनी चाहिए।

The highest gift you can confer on a man is to offer him knowledge you may feed a man today, he will be just as hungry tomorrow; teach him an art and you enable him to earn his living all his life.

रामहृदय—सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं, वह विद्या या ज्ञान का दान है। आप किसी मनुष्य को आज भोजन खिलादें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल वह फिर उतना ही भूखा हो जायगा। आप उसको कोई कला सिखला दें, तो वह जीवन पर्यन्त अपनी जीविका प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

व्याख्या—सर्व श्रेष्ठ दान वह है जिसका फल दीर्घकालीन हो। किसी को भोजनादि कराना यद्यपि उसकी क्षुधातृप्ति का एक मात्रोपाय है, परन्तु परतन्त्र रूप से कब तक कोई किसी के द्वार पर बैठा रहेगा और अन्नदाता भी एक ही व्यक्ति को अधिक समय तक अन्नदान दे भी नहीं सकेगा। उलटा ही ऐसा दाता भिक्षु और कर्त्तव्यहीन पुरुषों की संख्या को अधिक करने का कारण बनेगा। जिस दरिद्रता और भिक्षा-वृत्ति से प्राणी देश में आलस्य, प्रमाद का राज्य स्थापित कर देंगे।

अधिक श्रेष्ठ यह है कि असमर्थ देशवासियों को विद्या तथा कला-कौशल से सम्पन्न किया जावे, ताकि वह स्वयम् विद्वान् और समर्थशाली बन कर अपने सहित और प्राणियों का भी पालन-पोषण कर सकें।

अति उत्तम दृष्टि से तो आत्म-ज्ञान जैसा दिव्य दान और कोई हो ही नहीं सकता। जिससे भय, प्रमाद, अज्ञान, आलस्य, अविद्या समूल नष्ट होते हैं। ज्ञान की कृपा से जीव का अन्तःकरण शुद्ध और एकाग्र होकर प्राकृतिक और दैवी नियमों को अपना कर सफलता के परम शिखिर पर जा पहुँचता है।

Indian charity does not trouble itself so much about the starving labouring classes (shudras) but it takes the charitable donours straight to heaven by feeding the over satiated idlers, in the store House of God, the high representatives of Religion petrigical.

रामहृदय—भारतवर्ष की दानशीलता उन भूखे मरते श्रम जीवियों और शूद्रों की तो कोई अधिक सुधि नहीं लेती, वरन् वह ईश्वर के दरबार में पाषाणवत् जड़ बने हुए धर्म के उच्च प्रतिनिधियों और आकण्ठ तृप्त आलसियों को भोजन दिलवा कर दानशील दाताओं को सीधा स्वर्ग में ले जाने का दावा करती है।

व्याख्या—भारतवर्ष की दाता जनता अपने पास-पड़ोस के शूद्र तथा भूखी जातियों को कमीन और घृणा की दृष्टि से देखती है। पाषाणादि से बने हुए देव-मन्दिर जहाँ परमात्मा सामान्य रूप से विराजमान है, की शोभा और सेवा से बढ़कर किसी को आदर नहीं दिया जाता। यद्यपि शरीर मात्र में प्राणधारी ब्रह्म का विशेष स्वरूप है। जैसे गगन-मण्डल में अग्नि सामान्य रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु चूल्हे और अँगीठी में दहकती हुई ज्वाला विशेष रूप से अग्नि का स्वरूप है।

इस प्रकार ही पाषाण और काष्ठादि में परब्रह्म की सामान्य सत्ता अवश्य है, परन्तु शरीरधारी जीवात्मा परब्रह्म का प्रत्यक्ष स्वरूप है। अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष की सेवा का अधिक माहात्म्य है। जैसे, आकाश में व्याप्ताग्नि को प्रत्यक्ष करने में समय की आवश्यकता है, परन्तु चूल्हे या अँगीठी में दहकती हुई अग्नि सरदी की निवृत्ति का तत्काल साधन है। इसी प्रकार पाषाणादि की अपेक्षा प्राणिमात्र की सेवा, सहायता तथा पूजन तत्काल फल-सिद्धि और सुख का हेतु है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी रहस्य को अपनाते हुए व्यासादि मुनियों ने आराध्य देवताओं में प्रत्य गुरु-मूर्ति की आराधना तथा सेवा को अधिक पूज्य और सेव्य दृष्टि से अपनाया है।

The weak-minded yatri who pays a pittance to the persistent beggardrone may compliment himself on having done something to save his soul in the next world. Be it as it may; there is not the least doubt that he has done some-thing to ruin the nation here now.

रामहृदय—दुर्बल चित्त यात्री जो भीख माँगने का पेशा करनेवाले मुड़चिरों को कुछ पैसे देकर परलोक में अपनी आत्मा के उद्धार निमित्त कुछ पुण्य कमाने में भले ही सन्तोष माने, पर इसमें तो किंचित् सन्देह नहीं है कि उसने इस लोक में राष्ट्र को पतन की ओर ले जाने में अवश्य ही हाथ बटाया ।

व्याख्या—प्रायः यात्री लोग जो तीर्थाटन तथा पवित्र नदियों के स्नान के लिए कुछ द्रव्य सहित घर से निकलते हैं, वे तीर्थस्थानों पर दान करना अधिक पुण्य समझते हैं। परन्तु विचारहीन और कुपात्र भिक्षुओं को जो कि माँगना अपना पेशा बना चुके हैं, दाता लोग दान देकर स्वर्ग की रसीद लेते हैं।

भारतवर्ष धर्म और दान की महिमा को कलंकित करके उन मूढ़ और विषयासक्त भिक्षुओं का हनन कर रहा है। दूध, घृतादि के लिए पात्र शुद्ध और निर्मल देखने की आवश्यकता होती है। अपने बच्चे को भी पैसे तब दिये जाते हैं जब कि वह इस योग्य हो, अन्यथा पैसों के दुरुपयोग द्वारा कुपथ-दृष्टि से उसके रोगग्रस्त हो जाने की अवश्य ही सम्भावना है। इसी न्याय-दृष्टि से दान देने का पात्र भी देख लेना आवश्यक है। अन्यथा आप एकमात्र कारण हैं राष्ट्र पतन के।

सहयोग परहित में रहते हुए सन्तजनों को जो अज्ञात रूप से पवित्र स्थान तथा आश्रमों में रह कर देश की अज्ञान शक्ति का नाश कर रहे हैं और धर्म परायण अपना जीवन व्यतीत कर चुके हैं, स्वयं आत्म-तृप्त होकर जीवों के हृदयों का अज्ञान नाश करके शान्ति के पथ-प्रदर्शक हैं। उनके प्रति सम्मान और दान ही वास्तविक मुक्ति और भक्ति का केवल साधन है।

उपनिषद्-ज्ञान

(आश्रम की ओर से)

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

अन्वयः—पूषन=सर्व का भरण पोषण करनेवाले, सत्यस्य=सत्स्वरूप परमात्मा का, मुखम्=श्रीमुख, हिरण्यमयेन=ज्योतिस्वरूप, पात्रेण=पात्र से, अपिहितम्=आच्छादित है। सत्य धर्माय=सत्य प्राप्ति के लिए जो कर्म हैं उसके करनेवाले मुख को, दृष्टये=अपने दर्शन कराने के लिए, तत्=उस आवरण को, अपावृणु=हटा दीजिये ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ—परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, किन्तु सच्चिदानन्द का अनुभव होता नहीं। जैसे सूर्य का स्वरूप प्रकाश और उष्ण रूप हर एक प्राणी को मालूम होता है, वैसे ही परमात्मा का रूप क्यों नहीं दीखता? सत्य उसका नाम है, जो तीनों कालों में स्थित रहे और मिथ्या पदार्थ वह है जो कभी रहे और कभी न रहे। जैसे गन्धर्व नगर, मृगतृष्णा का जल, स्वप्न का जगत् झूठा है। स्वप्न का जगत् आदि देखने में आते हैं और कालान्तर में लय हो जाते हैं, इसलिये मिथ्या है। सत्य पदार्थ तो हर समय में रहता है। हर समय उसका बोध ज्ञान होना चाहिये। यदि परमात्मा सत्य पदार्थ है, तो तीनों कालों में उनका ज्ञान होना चाहिये, किन्तु होता नहीं है। कारण कौन है जिससे वह छिपा हुआ है? उनका मुख तो सबको प्रत्यक्ष होना चाहिये।

इस पर श्रुति भगवती कहती है कि परमात्मा सत्य स्वरूप सदा सनातन है, किन्तु उसके ऊपर एक आवरण आगया है। सूर्य के ऊपर काला बादल आ जाता है, तो ढक जाता है दिखायी नहीं देता, वैसे ही सत्य परमात्मा के ऊपर शुभ्र स्वर्ण के रंग के समान चमकीला आवरण आ गया है जिसके प्रकाश के कारण से सच्चा प्रकाश दब गया है। जैसे झूठे स्वर्ण का प्रकाश सच्चे स्वर्ण के प्रकाश को दबा देता है, उसी प्रकार इस झूठे आवरण ने सच्ची वस्तु को दबा दिया है। वह आवरण अनादि है, किन्तु इस अनादि आवरण का अन्त भी होता है। इस आवरण के नाश का उपाय है, प्रार्थना। भगवान की आराधना द्वारा भगवत् कृपा ही इस आवरण को जला कर भस्म कर देती है। जैसे ही आवरण भस्म होने लगता है, तैसे ही परम प्रचण्ड प्रकाश सामने दिखाई देने लगता है। हमारे ऋषि, प्रार्थना द्वारा सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। प्रार्थना है ईश्वर की स्तुति। प्रेम और दीनता द्वारा ईश्वर के अनन्त गुण और शक्ति का अनुवाद ही स्तुति है। इस मन्त्र में ऋषि पुकार करते हैं:—हे सर्व जगत् के पालक, सर्व के अन्तर्यामी, नियन्ता भगवन्! 'इस आवरण को दूर करो, ताकि हम सत्य के अभिलाषी आपका दर्शन कर सकें। दूसरे मन्त्र में अनेक नामों द्वारा भगवान को पुकारते हैं:— पूषन्=हे भक्तों का पोषण करने वाले; ऋषे=हे सर्वज्ञ; यम=हे सर्व के नियन्ता; सूर्य=स्वयं प्रकाशस्वरूप; प्राजापत्य=प्रजापति के प्रिय भगवान, इस तेज को समेट लीजिये, ताकि हम आप का अच्छी तरह से दर्शन कर सकें।

अर्जुन ने विभूति देखने के लिए भगवान् से प्रार्थना की और भगवान ने उनको अपना तेजोमय विराट विश्वस्वरूप दर्शाया। अर्जुन देख कर घबरा गया। काँपने लगा और फिर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म युक्त चतुर्भुज रूप के देखने की प्रार्थना की, भगवान ने आवरण को दूर किया। अर्जुन फिर चतुर्भुज रूप का दर्शन कर समाहित हुए। अर्जुन की तरह ऋषि विराट स्वरूप को देख रहे हैं, किन्तु उससे परे जो वास्तविक सच्चिदानन्द अखण्ड स्वरूप है उसके दर्शन की इच्छा ऋषि के मन में है।

आवरण क्या है?

मल, विक्षेप और आवरण तीन प्रकार के दोष हैं। मल नाम पापों का है; विक्षेप का अर्थ मन की चंचलता है, आवरण अविद्या का परदा है। यज्ञ, दान, तप शुभ कर्मों से पाप नाश होता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम, भक्ति, उपासना से चित्त स्थिर होता है और आवरण की निवृत्ति ज्ञान सहित भक्ति से होती है।

व्यास महर्षि ने आवरण को दूर करने के लिए सुगम मार्ग विष्णु सहस्रनाम को बताया है जिसमें अविद्या आवरण से उत्पन्न सुख-दुःख रूप संसार बन्ध से निवृत्त होने की आराधना की गयी है। भगवान के उत्तम नामों का संग्रह किया गया है।

उसके पाठ करने से और मनन करने से अविद्या अज्ञान रूप आवरण का ध्वंस होता है। जैसेः—

यस्य स्मरण मात्रेण जन्म संसार बन्धनाद्वि-मुच्यते। नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

उस सर्व व्यापक विष्णु भगवान् की वन्दना करते हैं, जिसके केवल स्मरण से जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि दुःखों से मुक्ति होती है। ईश्वर के अनेक नाम हैं, जिनके उच्चारण, विचारण से मनुष्य अज्ञान आवरण को दूर करने में समर्थ हो जाता हैं। इसलिए हर एक प्राणी को अपने कल्याण के लिए निरन्तर परम पिता परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये॥

श्री शंकराचार्य-कृत आत्म-बोध

(आश्रम की ओर से)

ओं तपोभिः क्षीणपापानां
शान्तानां वीतरागिणाम्॥
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते॥१॥

अन्वयः—ॐ तपोभि = जप, तप उपासनादि द्वारा, क्षीण पापानाम् = नष्ट हो चुके हैं पाप जिनके, वीतरागिणाम् = अन्तःकरण से निकल गए हैं राग द्वेषादि जिनके, शान्तानाम् = शान्त हो गए हैं मन जिनके, मुमुक्षूणाम् = ऐसे मोक्ष की इच्छा करने वाले जिज्ञासुओं के, अपेक्षः = आपेक्षित अर्थात् योग्य, अयमात्मबोध = यह आत्मबोध नामक ग्रन्थ, विधीयते = विधान किया जाता है।

व्याख्या—विविध प्रकार के जप, मन्त्र, दीन-दुखियों की सेवा तथा गुरुजनों की सेवा, कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत नित्य नैमित्तिक-कर्म, उपासना, अनुष्ठानादि और अन्य विविध प्रकार के निष्काम कर्मों द्वारा पाप जिनके नष्ट हो चुके हैं और जिनका अन्तःकरण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक इन त्रिविध तापों के सन्ताप से ऊपर उठ चुका है और जिन महापुरुषों के मन को शारीरिक तथा मानसिक और दैव सम्बन्धी बाधाएँ विचलित नहीं करतीं और जिनका अन्तःकरण अविद्या, अस्मितः, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों से युक्त हो चुका है। निष्कामकर्म द्वारा जिनका मल का परदा प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है। उपासना द्वारा जिनका विक्षेप अर्थात् मन की चञ्चलता भी पूर्णतया नष्ट हो चुकी है। ईर्ष्या, द्वेषादि से शून्य शान्तात्मा विवेक वैराग्यादि चतुष्टय साधन सम्पन्न सच्चिदानन्द परमात्मा के अतिरिक्त सब वस्तु अनित्य हैं, केवल एक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसी धारणा का नाम विवेक है। इस धारणा से युक्त इहलोक और परलोक के भोगों से विरक्ति शम दमादि निम्नलिखित षट् सम्पत्ति से युक्त मन को शान्त किये हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ दम—इन्द्रियों का विषयों से पूर्णतया निग्रह।

२ शम—मन का शान्त करना।

३ तितिक्षा—सुख-दुःखों का सहन करना।

४ उपरति—संसार के कर्मों से उपराम हो जाना।

५ श्रद्धा—वेद, उपनिषद् और गुरु के वाक्य सत्य हैं उनमें दृढ़ विश्वास श्रद्धा कहलाती है।

६ समाधान—ब्रह्मात्मैक्य के विषय में किसी संशय का न रहना समाधान कहलाता है।

जरा-मरण संसाररूप जड़ ग्रन्थि के छेदन की जिनको उत्कट लालसा है, जो सदैव ब्रह्म-प्राप्ति के इच्छुक और अनर्थ की निवृत्ति में तत्पर हैं, ऐसे चतुष्टय साधन सम्पन्न मुमुक्षु पुरुषों के लिए यह आत्मबोध नामक ग्रन्थ लिखते हैं, अर्थात् जिससे आत्मा का ज्ञान हो ऐसा प्रकरण लिखते हैं।

बोधोऽन्यसाधनेभ्योहि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ॥
पाकस्यवह्निवज्ज्ञानं बिना मोक्षो न सिद्ध्यति॥२॥

अन्वय—अन्यसाधनेभ्यो = कदाचित् कहो कि जप, तप आदि अन्य साधनों द्वारा, बोधः = ज्ञान हो सकता है, साक्षात् = आत्म-ज्ञान, हि = केवल, मोक्षैकसाधनम् = मोक्ष का एकमात्र उपाय है, वह्नि-वत् = अग्नि की तरह अर्थात् अग्नि ही, पाकस्य = पाकादि का साक्षात् कारण है, ज्ञानम् = आत्म-ज्ञान के, बिना = अतिरिक्त, मोक्ष = जगत् से छुटकारा, न सिद्ध्यति = नहीं सिद्ध होता।

व्याख्या—यदि कोई कहे कि विविध प्रकार के मन्त्र, जप, द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, तपयज्ञ, प्राणायाम तथा योगादि द्वारा मोक्ष होता है, तो आत्म-ज्ञान को क्यों फिर मोक्ष का साधन कहा है? यह जप, तप, यज्ञ और योगादि सब अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु हैं। यद्यपि यह सब सहकारी रूप से मोक्ष के साधन हैं। यह सब साधन अन्तःकरण को पवित्र करते हैं। जब तक प्रथम इन साधनों से अन्तःकरण शुद्ध न किया जावेगा, तब तक आत्म-साक्षात्कार कदापि नहीं हो सकता। जैसे कलई से लिप्त दर्पण में मुख नहीं दिखाई देता, परन्तु जब कलई के धब्बों को पूर्णरीति से दर्पण से साफ किया जाता है तथा दर्पण को स्थिर रखा जाता है, तभी उसमें मुख प्रतिबिम्बित होता है। इसी प्रकार जब जप, तपादि साधनों द्वारा अन्तःकरण से राग, द्वेष, निन्दा, विरोधादि को बाहर निकाल कर स्वच्छ किया जाता है, तथा सविकल्प समाधि के द्वारा अहंता ममता की निवृत्ति होती है। ऐसे शुद्ध अन्तःकरण में आत्म-ज्ञान से ब्रह्मसाक्षात्कार होता है। वस्तुतः आत्म-ज्ञान ही मोक्ष का एकमात्र साधन है। जब तक मनुष्य को अपने स्वरूपभूत आत्मा का पूर्णतया बोध नहीं होता कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है, तब तक मोक्ष असम्भव है। यदि कर्मद्वारा ही मोक्ष सिद्धि होती, तो सुवर्णादि दान करने वाले सर्वदा अश्वमेधादि यज्ञ करने वाले कर्मकाण्डियों जैसा मुक्त कोई न होता। परन्तु देखने में आता है कि महात्मा लोग, जो कि ऐसे यज्ञादिकों से सर्वथा वञ्चित ही रहते हैं और जिनको अपने आत्मा का पूर्ण बोध अर्थात् मैं सत्, चित्, आनन्द परिपूर्ण ब्रह्म हूँ, शरीर नहीं हूँ। यह शरीर क्षेत्र है, मैं क्षेत्रज्ञ हूँ। मैं तटस्थ और साक्षीरूप से देखने वाला अन्तर्यामी आत्मा हूँ। कर्म मुझे लिप्त नहीं करते, संसार में रहते हुए भी जल में कमल पत्र-वत् लिप्त नहीं होते, वे ही मुक्त हैं।

जैसे अग्नि के बिना पाकादि का निर्माण नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता। काष्ठ अन्न जलादि पाक के सहकारी कारण हैं, परन्तु विशेष कारण अग्नि ही है। इसी प्रकार आत्मज्ञान से ही मोक्ष की सिद्धि होती है। श्रुति भी कहती है "ज्ञानादेव तु कैवल्यम्, ऋते ज्ञानन्न मुक्ति"। ज्ञान से ही मोक्षपद की प्राप्ति होती है, ज्ञान के बिना मोक्ष सिद्ध नहीं होता। जब तक ज्ञान न हो जीव आवागमन के चक्र से नहीं छूट सकता। शुभ कर्म किये, तो स्वर्गादि में चले गए, जब पुण्यों का क्षय हुआ तो मर्त्यलोक में आ गए। जैसे श्रुति कहती है "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति"। पुण्यों के क्षीण होने पर मर्त्यलोक में प्रवेश करता है। पत्थर से लेकर ब्रह्म-लोक पर्यन्त सब जीव की ही अवस्थाएँ हैं। अपने आप को समेटता है, तो नहुष बन कर इन्द्र पद को प्राप्त होता है और बिखेरता है तथा गर्व करता है, तो अजगर बन जाता है। परन्तु यह आवागमन का चक्र आत्मज्ञान से ही छूटता है। प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को जान लेने से ही बन्धनों से निवृत्ति होती है। भगवद्गीता में कहा है—

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"।

इस संसार में ज्ञान के तुल्य कोई पवित्र वस्तु नहीं है और भी—

"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा"।

जैसे प्रज्वलित अग्नि सम्पूर्ण लकड़ियों के ढेर को जला कर राख कर देती है, वैसे ही ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मों (क्रीयमाण, सञ्चित) को जला देती है।

इसलिए आत्मज्ञान ही केवल मोक्ष का एकमात्र साधन है। उस के बिना कदापि जगत् के बन्धनों से नहीं छूट सकता। लिखा भी है "ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः"। उस आत्मभूतदेव को जान लेने से सर्वविध पाशों से मुक्त हो जाता है, यही सिद्धान्त है।

अविरोधितया कर्म नाविद्या विनिवर्तयेत्
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥

अन्वयः—अविरोधितया=विरोध न करनेवाला, कर्म=कार्य, नाविद्या=अविद्या को नहीं, विनिवर्तयेत् =विशेष रूप से दूर नहीं कर सकता, विद्या=मैं सत्, चित्, आनन्द और परिपूर्ण हूँ ऐसा ज्ञान, अविद्याम्=अज्ञान को, निहन्त्येव=ही नष्ट करता है। तेजः=सूर्यप्रकाश, तिमिरसंघवत्=अन्धकार समुदाय को नष्ट करता है॥

व्याख्या—विचित्र शक्ति वाले योग, यज्ञ, जप, तपादि कर्मों द्वारा ही सिद्धि होती है, क्या यह सत्य नहीं है? यद्यपि इन कर्मों को भगवान् ने लिखा है कि नहीं त्यागना चाहिए। जैसे—

"यज्ञदान, तपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्"।

हे अर्जुन यज्ञदान और तपादि कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए, क्योंकि यज्ञदान तपादि कर्म मननशील पुरुषों की अन्तःकरण की शुद्धि के निमित्त हैं।

कहते हैं कि जनकादि भी कर्मों द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। भगवद्गीता में लिखा है—

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः"

जनकादि महापुरुषों ने कर्म द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की है। यहाँ पर भगवान् का अभिप्राय चित्तशुद्धि से है। महाराज जनक को भी जब तक ज्ञान नहीं हुआ था, तब तक वह शान्त नहीं हुए। अष्टावक्र द्वारा आत्मसाक्षात् होने के पश्चात् ही वह जीवन्मुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। कर्मों द्वारा अविद्या रूप अज्ञान का नाश नहीं होता, क्योंकि विरोधी पदार्थ ही एक दूसरे को नष्ट करता है। जैसे दिन रात्रि को दबाता है, प्रकाश अन्धकार को, वैसे ही आत्मज्ञान मैं सत्, चित्, आनन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त परिपूर्ण ब्रह्म हूँ। ऐसा जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान जो ज्ञान है, वही ज्ञान मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, हाय मैं मरा, शरीर के नाश से ही अपना नाश मानना रूप अविद्या का नाश करता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार समूल नष्ट हो जाता है, वैसे ही आत्मज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण अज्ञान का नाश हो जाता है।

कुल्याते राम से

(स्वामी रामतीर्थ द्वारा)

रंगदार महताबी का उजाला (प्रकाश) काले तवे पर भी पड़ जाय, तो उसे जगमगा देता है, प्रकाशित कर देता है; वैसे ही प्रेमपात्र (माशूक़ा) के मल, रक्त, हाड़ और मांस भरे चर्म पर प्रेमी की दृष्टि पड़ कर उसे ज्योतिर्मय और कान्तिमान् बना देती है।

A thing giveth but little delight,
That never can be mine (Wordsworth)

अर्थ—जो वस्तु बहुत कम आनन्द देती है, वह मेरी कदापि हो नहीं सकती।

बादा अज़ मा मस्त शुद नै मा ज़ि मय।
हम ज़ि मादाँ बूए-गुल आवाज़े-नय ॥

अर्थ—मदिरा हमसे मस्त होती है, हम मदिरा से नहीं, सुमन की सुगन्ध और बाँसुरी की ध्वनि हमसे ही जान।

वह महात्मा जो इस सौन्दर्य और उत्तमता को वास्तव में जानता है और अपने स्वरूप को पहचानता है, उसे ज्योतियों की ज्योति के सामने विषय भोग के भावों के खद्योत (fire flies) भला किस प्रकार चमकेंगे?

ऐ प्यारे! सूर्य तेरा अपना आप है। तेरी आँख खोलने पर सूर्य प्रकट होता है, आँखें बन्द करके अविद्या की अँधेरी रात क्यों बना रखी है?

मातः किं यदुनाथ, देहि चषकं, किं तेन, पातुं पयः
तन्नास्त्यद्य, कदास्ति वा, निशि, निशा का, वान्धकारोदये;
आमील्याक्षि युगं निशाप्युपगता देहीति मातुर्महः।
वक्षोजांशुकमध्य उद्यतकरः कृष्णस्तु पुष्णातु नः।

(लीला शुक)

तात्पर्य—

कृष्ण—मैया! मैया!

यशोदा—क्यों मेरे लाल, क्यों?

कृष्ण—मुझे एक कटोरा दो, जल्दी!

यशोदा—उसे क्या करोगे? कटोरे से भी कोई खेलता है? वे खिलौने पड़े हैं, उनसे खेलो।

कृष्ण—(अदा से गर्दन निहुराकर) खेलने के लिए थोड़े ही माँग रहा हूँ। हम तो दूध पियेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोदा—लाल ! अभी से दूध कहाँ ? यह कोई समय है दूध का ? दूध तो है नहीं कटोरा क्या करोगे ?

कृष्ण—(दुलार से झल्लाकर) ऊँ-ऊँ ! और कब दूध होगा ?

यशोदा—अभी तुम मक्खन खाओ, और रात होने दो, फिर पेट भरके ताजा दूध पी लेना ।

कृष्ण—(ओंठ बिसूरकर) हाय, रात कब होगी ?

यशोदा—जब अँधेरा होगा ।

यह सुनकर नन्हे कृष्ण ने झट आँखें मीच लीं; और फुरती से हाथ फैलाकर ज़ोर से कहने लगा—"ला, दूध दे दे, अँधेरा हो गया । ला दूध दे दे, रात हो गई ।"

माता अपने बच्चे की यह चतुरता देखकर विस्मित रह गई । खिलखिला कर हँस पड़ी, और प्रेम से विह्वला होकर बच्चे को छाती से लगा लिया और प्यार करने लगी ।

वही कृष्ण (परमात्मा) आँख मींच कर दिन को रात बनाने वाला, क्षीर समुद्र का स्वामी, दूध के कटोरे के लिये रोने वाला तुम्हारे सिर पर, आँखों पर और हृदय पर बैठकर लीला कर रहा है; वही चोरों का लाट (तस्कराणां पतिः) तुम्हारे मन और बुद्धि की कोठरी (गुहा) में छुपकर इंद्रिय आदि की पुतलियाँ नचा रहा है; वह कृष्ण तुम्हारा आत्मदेव है ; वह तुम्हीं हो; आँखें बन्द करके रात बनाने की मखौलबाजी छोड़ो ।

यह हँसी खूब नहीं ओ गुले-खंदाँ हमसे ।

हँसी की खसी कर रहे हो । ओ शिवशंकर ! तेरे सामने तेरी लापरवाही मूर्तिमान् होकर कामदेव के रूप में प्रकट हो तुझ पर तीर और तुफंग बरसा रही है । खोल अपना तीसरा नेत्र (ज्ञान चक्षु) और इस कामदेव को भस्म कर ।

न मारा आपको जो ख़ाक हो अक्सीर बन जाता ।
अगर पारे को ऐ अक्सीरगर ! मारा तो क्या मारा ॥

ओ सूर्य रूप मनुष्य ! आप ही अविद्या को बनाकर अपने प्रकाश को मत छिपा ले । क्यों नहीं तुमसे प्रकाश के सोते प्रतिक्षण चारों ओर जारी रहते ? ओ सत्य जिज्ञासु ! तेरी सुगंध से संसारोपवन महक जाना चाहिए, तेरे शुद्ध जीवन के प्रभाव की बदौलत शान्ति और आनन्द (Peace on earth and good will) से संसार की वायु सुगंधित हो जानी चाहिए । जैसे दीपक से प्रकाश फैलता है, वैसे ही तुझसे आनन्द चारों ओर बरसते रहना चाहिए । स्त्री या पुरुषों की छातियों में कामदेव के उपद्रव एवं ईर्ष्या-द्वेष की आँधियों को तेरे अमृत बरसानेवाले दर्शनों से ही रुक जाना चाहिए, जैसा कि भगवान् दत्तात्रेय को दूर से दो-एक बार देखने से प्रथम श्रेणी की पुंश्चली स्त्री (वेश्या) का जीवन पलटा खा गया था; हृदय को सुख और आँखों को शीतलता देनेवाले दर्शनों से शान्ति की ऐसी वर्षा हो गई कि मानों भयानक आँधी का तूफ़ान दूर होगया; बेचारी के मन का कलमष और कलुषता की धूलि आदि सब एक दम बैठ गई (दूर हो गई) ।

हर ज्ञान-प्रदीप सदा लश ।
मन मन्दिर योगिन के बस के ॥
बहु मोह उदय जो हृदय तिनके ।
तमपंज वही ताको हनि के ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति लौल अनंग पतंग महा।
छिन माहिं स्वभाविक ताहिं दहा ॥
निहकाम समूह सुवाअदि पै।
सो सनेह-सनेह वही अरपै ॥
जिनके अति भाल के भाग भले।
अस दीपक ता मन-धाम जले ॥

अर्थ—ज्ञान का दीपक सदैव जलता है ज्ञानियों के मन-मन्दिर में स्थिर होकर और यदि उनके हृदय में मोह उदय होना चाहे, तो उसके अंधकार समूह को वह दीपक निवारण करता है। कामरूपी पतंग महाचपल और चंचल है, जो क्षण-क्षण में अपने आप ही इस ज्योति में पड़ कर जलता है। निष्काम कर्म इस दीपक की बत्ती है और प्रेम रूपी तेल इसमें खर्च होता है। जिनका भाग्य अति उत्तम, बलवान होता है, उन्हीं के मन-मन्दिर में यह प्रदीप जलता है।

अला ऐ गौहरे-बहरे-सुफ़क़ा।
कि दर आलम तुई पिन्हाँ व पैदा ॥

अर्थ—खबरदार, ऐ निर्मल सागर के मोती! संसार में गुप्त और प्रकट तू ही है।

असंग और साक्षी होना

[श्री अरविन्द घोष की अनुभूति]

(रामप्रताप मनोट रिटायर्ड इन्सपैक्टर आर० ऐम० ऐस०, रायकोट)

नोट:—इस लेख का सम्बन्ध "आत्म-समर्पण तत्त्व" के लेख से है जो गतांकों में प्रकाशित हो चुका है।

आत्म-ज्ञान द्वारा अपने आपको आधार (देह, प्राण, मन आदि) से भिन्न आत्मा या 'पुरुष' जानकर असंग और साक्षी होना आत्म-समर्पण-रूपी साधन का आवश्यक परिणाम ही नहीं, किन्तु इसके अभ्यास का अनिवार्य अंग है। जीवात्मा ब्रह्म है और परमात्मा के साथ जो इसका अपना ही सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और सर्वज्ञस्वरूप है, एक है भेद केवल इतना है कि यह व्यक्तिगत ईश्वर है और भगवान् विश्वव्यापी ईश्वर है।

भगवान् कृष्ण ने गीता में इसका स्पष्ट रूप में विवेचन किया है:—

उपद्रष्टानुमता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥
॥ १३-२२ ॥

अर्थात्—इस देह में स्थित जो परम पुरुष है वह उपद्रष्टा (सर्व साक्षी, केवल देखनेवाला), 'अनुमंता' (कर्म करने के लिए शक्ति को अनुमति अर्थात् मनजूरी या हुकम देने वाला), 'भर्त्ता' (देह प्राण और अंतःकरण को सहारा अथवा शक्ति देने वाला), 'भोक्ता' (कर्मों के फल को जीव भाव से भोगनेवाला), 'महेश्वर' और 'परमात्मा' भी कहलाता है।

यह तुम्हारा यथार्थ स्वरूप है। तुम देह रूपी यंत्र के स्वामी और ईश्वर हो। परन्तु अज्ञान के कारण मनुष्य ईश्वर पद से गिर कर अनीश बन जाता है और अपने वास्तविक स्वभाव, अवस्था और अधिकार को भूल कर यह नहीं जानता कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि जो उसके कर्मचारी और अधिकारी हैं, उसका अधिकार न मानते हुए उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ क्या व्यवहार कर रहे हैं। वह भूल जाता है कि वह इन सबसे असंग है, कूटस्थ है और महाशक्तिमान् है। अब उसे यही करना है कि वह अपने राज्य की बाग अपने हाथ में ले ले और इस बात को स्मरण रखे कि वह स्वयं स्वामी, सम्राट् और ईश्वर है और इस ज्ञान के सहारे अपने यथार्थ-स्वरूप का अनुचिंतन करता हुआ साक्षी और असंग भाव से अपने कर्मचारियों की क्रिया को देखा करे।

भगवान् इस विश्व के स्वामी और परमेश्वर हैं। वह अपनी दैवी शक्ति 'पराप्रकृति' को केवल हुक्म देते हैं और प्रकृति उनकी आज्ञापालन करती हुई संसार की क्रिया को चलाती है। भगवान् स्वयं साक्षी और असंग होकर इस लीला को देखते हैं। इसी प्रकार तुम भी अपने शरीर, प्राण और अंतः-करण के ईश्वर होते हुए हुक्म देते हो और तुम्हारी संकल्प शक्ति (will power) तुरंत ही तुम्हारी आज्ञा का पालन करती हुई मन, बुद्धि, इन्द्रियों को कर्म में प्रेरित करती है। तुम भी भगवान् की भाँति असंग और साक्षी होकर बुद्धि और इन्द्रियों को क्रिया करते और अपनी आज्ञा का पालन करते देखो उनमें आसक्त और लिपायमान न हो। गीता के इन वचनों को सदैव स्मरण रखो—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥
१३ । ३१ ॥

अर्थात्—यह अविनाशी परमात्मा अनादि और निर्गुण होने के कारण शरीर में रहता हुआ भी न कुछ करता और न किसी से लिप्त होता है।

आत्म-समर्पण का संकल्प करते समय तुम भगवान् के चरणों में अपनी इच्छाओं का बलिदान कर चुके हो। तुम्हारी अपनी इच्छा ही कोई नहीं रही। भगवान् की इच्छा में ही तुमने अपनी इच्छा को लय कर दिया है। अब तुम्हारे अंतः-करण और शरीर रूपी यंत्र द्वारा तुम्हारी इच्छा-शक्ति नहीं बल्कि भगवान् की इच्छा शक्ति, जिसका नाम "दैवीशक्ति" है, कार्य करेगी। इसलिए तुम असंग और साक्षी होकर दैवीशक्ति की क्रिया को देखा करो। यही इस साधन का विशेष अंग है।

इस साधन में सारा कार्य भगवान् स्वयं ही 'शक्ति' के रूप में करते हैं। यह शक्ति अपने कार्य को श्रीकृष्ण (भगवान्) के आगे यज्ञ के रूप में अर्पण करती है और तुम तो केवल यजमान हो जिसकी उपस्थिति यज्ञ की प्रत्येक क्रिया के लिए आवश्यक है और जो यज्ञ के फल को भोगने वाला है। यह असंग भाव और कर्तृत्व अभिमान का त्याग तुम्हारे लिए सहज हो जायेंगे, यदि तुम भली प्रकार जान लो कि "आधार" क्या है और तुम्हारा निवास उसमें कहाँ है ?

पांच कोशों (अर्थात्—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोश) के संयोग से निर्मित हुए इस शरीर रूपी यंत्र या मशीन को "आधार" कहते हैं। इस यंत्र के दो भाग हैं : स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल भाग के दो अंग हैं : एक अन्नमय कोश (स्थूल देह) और दूसरा स्थूल प्राण। सूक्ष्म भाग के भी दो अंग हैं : सूक्ष्म प्राण और सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण और इन्द्रियाँ)। अन्तःकरण के तीन विशेष अङ्ग हैं, मन, बुद्धि और चित्त।

छाती में दिल के ऊपर 'मन' का स्थान है जो पांच इन्द्रियों द्वारा पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन के नीचे और दिल से लेकर नाभी तक 'चित्त' का स्थान है जिसमें पूर्वजन्मों के संस्कार, भाव और स्मरण की हुई बातें एकत्रित रहती हैं। चित्त के नीचे नाभी के साथ और उसके नीचे तक सूक्ष्म प्राण रहता है। यह सब सूक्ष्म शरीर के अङ्ग हैं। परन्तु इन स्थानों पर वह स्थूल देह से सम्बन्ध रखते हैं।

अन्तःकरण का सबसे श्रेष्ठ अङ्ग 'बुद्धि' है जिसका स्थान दिमाग़ में है। बुद्धि के निचले भाग (मति) का सम्बन्ध मन के साथ है। यह दिमाग़ में नीचे की ओर है। इसके ऊपर दिमाग़ के बीच में "तर्क बुद्धि" है और उससे ऊपर "उच्च बुद्धि" का स्थान है। यह भी सब सूक्ष्म शरीर के अङ्ग हैं, परन्तु स्थूल दिमाग़ के साथ इनका सम्बन्ध है। यह सब अङ्ग मनुष्य के अन्दर जाग्रत हैं और अपने-अपने कर्म में लगे रहते हैं।

बुद्धि से भी ऊपर 'परा बुद्धि' या 'विज्ञान' का स्थान है। इसमें सत्य धर्म (सत्य ज्ञान, सत्य भाव, सत्य कर्म) का निवास है और 'विज्ञान' की इस आदर्श शक्ति से भी ऊपर 'आनन्द'—परम विश्वव्यापक ब्रह्मानन्द का स्थान है जिसमें तुम्हारा "ईश्वरी अंश" तुम्हारा "आत्म-स्वरूप" अपने परम ऐश्वर्य के साथ विराजमान् है। इसी विज्ञान और आनन्द को ही ईसामसीह (Christ) ने तुम्हारा 'अन्तरीय स्वर्ग राज्य' (Kingdom of heaven within you) कहा है।

इस समय हम अपने आधार के निचले अङ्गों और उनकी क्रिया में तो जाग्रत हैं, परन्तु 'विज्ञान' और 'आनन्द' के अङ्गों में घोर निद्रा में पड़े सोते हैं। अब हमारा कर्त्तव्य यह है कि अपने अन्दर चेतनता के इन अङ्गों को जाग्रत करें। इन अङ्गों की जागृति और इनकी विशेष क्रिया ही अध्यात्म योग की सिद्धि है। क्योंकि इस अत्युत्तम क्रिया और जागृति को प्राप्त करके ही हम इस अवस्था तक पहुँचते हैं जिसे भगवान् में वास करना कहते हैं और जिसके सम्बन्ध में गीता में भगवान ने कहा है—

"मय्येव निवासिष्यसि"

अर्थात्—निश्चय ही मुझ में निवास पाओगे। जब यह अवस्था एक बार भी प्राप्त हो जाये, तो हम मुक्त, आनंदित, पवित्र, भाग्यशाली और पूर्ण-काम हो जाते हैं, अर्थात् हमें वह सब कुछ मिल जाता है जिसके लिये हम प्रयत्न कर रहे हैं।

यह जागृति कैसे हो?

'विज्ञान' और 'आनन्द' में आत्म-ज्ञान द्वारा जाग्रत होने के लिये तीव्र वैराग्य भी एक साधन कथन किया गया है, परन्तु वैराग्य को ही समस्त ज्ञान का मूल समझ लेना भूल है। वैराग्य केवल एक सहायक और अस्थायी अवस्था है। भगवान् ने गीता में अभ्यास के साथ वैराग्य को इसलिए रखा है कि यदि अभ्यास हमारे पुराने संस्कारों को पदार्थों और विषयों के संयोग से मुक्त करके हमें असंग (संसार से, परिवार से और शरीर से) न कर सके, तो वैराग्य द्वारा ज्ञान की सहायता कराई जाये। जब अन्तःकरण स्थिर और शान्त होकर जाग्रत होने लगता है, फिर वैराग्य की आवश्यकता नहीं रहती। मन को निरन्तर वैराग्य में लगाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन में ऐसा ही बाधक है जैसे लोभ में मन को फँसाना।

इसलिए तुम बौद्ध लोगों की भाँति यह कदापि न समझो कि जीवन निरा दुःख है और इसे किसी न किसी प्रकार मिटा देना ही हमारी परमगति है, या हम इस जगत् में केवल इसी उद्देश्य से आये हैं कि जितना शीघ्र हो सके, इससे मुक्त हो जायें। आत्मा तो नित्य मुक्त ही है और बंधन एक भ्रांति है। वास्तव में हम बद्ध (क़ैदी) नहीं हम केवल बद्ध होने की क्रीड़ा करते हैं। भगवान् परमात्मा देव (जो हमारा अपना ही महान् आत्मा है) इस लीला के स्वामी हैं उनकी इच्छा, कृपा और आज्ञा के बिना कोई जीव भी इस खेल को छोड़ नहीं सकता।

मैं (अरविन्द घोष) तो जगत् को आनन्द से जन्म लेकर आनन्द से जीने और आनन्द से आनन्द की ओर भ्रमण करनेवाला मानता हूँ। आनन्द और शक्ति इस जगत् के वास्तविक भाव हैं। शोक और दुर्बलता ऐसे विकार हैं जो अज्ञान और अपने शुद्ध उच्च सत्यस्वरूप के प्रमाद से उत्पन्न होते हैं। यह अस्थायी और अनित्य हैं। मैं अंधकार और शोक उत्पन्न करने वाली ऐसी शिक्षा को स्वीकार नहीं कर सकता, जो इस संसार को दुःखमय बताती हुई इसमें अकर्मण्यता और इससे भिन्न हो जाने को ही मोक्ष और आनन्द का एकमात्र साधन नियत करती है और बुद्धि ज्ञान के विरुद्ध यह विचार प्रकट करती है कि परमात्मा स्वयं तो आनन्द स्वरूप है, परन्तु उनका प्रकाश घृणा के योग्य और शापग्रस्त है। मैं यह कदापि नहीं मान सकता कि ब्रह्म मूर्ख होकर या नशे में चूर होकर अपने ऐसे-वैसे स्वप्न से दुःख-दाई धोखों में फँस रहा है। वेदों में ऐसे विचार का कोई चिह्न नहीं। पुरुष भाव से भेद के होते हुए भी मेरी सत्ता पुरुषोत्तम की सत्ता के साथ एक है और मेरी शक्ति भगवान् की अनन्त शक्ति की एक विशेष क्रिया है।

मैं अज्ञानी नहीं हूँ। मैं बुद्ध नहीं हूँ और मैं दुःखी नहीं हूँ। मैं केवल अज्ञानी का स्वाँग रचता हूँ। मैं बद्ध होने का केवल खेल खेलता हूँ और एक अभिनेता या (actor) की भाँति शोक और दुःख का केवल रस लेता हूँ और जब मैं चाहूँ इस शोक को परे फैंक सकता हूँ। कौन है जो मुझे पापी, पतित और पृथ्वी पर दूसरे कीटों के बीच में एक सरकने वाला कीट समझता है। मैं ब्रह्म हूँ। सोहम्। पाप मुझे छू नहीं सकता। कौन मुझे दुर्बल और शक्ति हीन कहता है। मैं सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साथ एक हूँ। उसने एक होकर भी अनेक होना चाहा। वह अनन्त होकर अपने आपको अनेक केन्द्रों में स्थापन करता हुआ भी प्रत्येक केन्द्र पर फिर अनंत है। यही जीवन का रहस्य, उत्तम रहस्य और भगवान् का महान् आश्चर्य और आनन्ददायक रहस्य है। इस रहस्य तक तर्क बुद्धि नहीं पहुँचती, परन्तु ज्ञान इसे समझता है और यह ज्ञान तर्क से नहीं मिलता, वरन् केवल शुद्ध मुक्त, सिद्ध और आनन्द भोगने वाली आत्मा के अनुभव द्वारा प्राप्त और प्रमाणित होता है। ऐसे दृढ़ निश्चय के निरंतर अभ्यास द्वारा "विज्ञान" और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आनन्द" के अङ्गों में ज्ञान को जाग्रत करो। परन्तु स्मरण रखो कि केवल आत्म-ज्ञान ही इस मार्ग में पर्याप्त नहीं। केवल आत्म-ज्ञान की बातें करने और वाद-विवाद से लाभ नहीं होता, जब तक विज्ञान या अध्यात्म अनुभव द्वारा अन्तः-करण का एक-एक परमाणु इसके रंग से रँगा जाकर जीवन को पूर्णतया बदल न दे। आत्म-ज्ञान भी अपना स्थान रखता है, परन्तु अध्यात्मानुभव के आगे इसकी अवस्था एक दासी की है, जो किसी समय इसे मार्ग तो दिखाती है, परन्तु अधिकांश अनुभव के बिना जीवित नहीं रह सकती। आत्मानुभव के बिना आत्म-ज्ञान केवल पंडिताई और शुष्क निर्जीव वस्तु है, जो प्रायः सहायता करने की अपेक्षा पतित करने वाला बंधन बन जाती है। **इसलिये ज्ञान द्वारा मन, वचन, कर्म की समता प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इस अध्यात्मानुभव के लिये—**

"आत्म-ज्ञान सम्मिलित आत्म-समर्पण" रूपी साधन का निरंतर अभ्यास ही एक सहज और सर्वोत्कृष्ट उपाय है जो शीघ्र से शीघ्र तुम्हें परमात्मा का साक्षात्कार कराके गुणातीत भूमापद की प्राप्ति करा सकता है। यही गीता में भगवान् कृष्ण के उपदेश का मध्य विन्दु है।

इस मार्ग पर पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ता के साथ चलते चलो। पराज्ञान के प्रकाश के लिये अपनी बुद्धि को हर समय तैयार रखो। जो-जो अनुभव हो उस पर दृढ़ता करते हुए उन बातों में प्रकाश की प्रतीक्षा करो जिनमें तुम अभी अंधकार में हो। साथ ही अभिमान का त्याग करके तुम उन जीवित पथ-प्रदर्शकों से सहायता ग्रहण करो जो इस मार्ग पर चल चुके हैं। सदैव धैर्य रखते हुए किसी परिणाम तक पहुँचने में शीघ्रता न करो और अपने जगत्‌गुरु पर जो अंदर से तुम्हारी सहायता कर रहे हैं, विश्वास रखते हुए और भी अधिक पूर्ण अनुभव और पूर्ण प्रकाश की प्रतीक्षा करते रहो।

॥ ॐ तत्सत् ॥

स्वामी राम से अमेरिका में किये हुए प्रश्न का उत्तर

(स्वामी राम)

एक दूसरे मनुष्य ने कहा, "अच्छा, यदि आप परमेश्वर हैं, यदि आप ईसा के समान हैं, तो ईसा ने बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किये थे, आप भी कोई अलौकिक कार्य करो, तब हम तुम पर विश्वास करेंगे।" राम कहता है, "भाई, ईसा ने अलौकिक कार्य किये थे, फिर भी उस पर विश्वास नहीं किया गया था। उसे उत्पीड़ित किया गया, उसे सूली दी गई थी। क्या अलौकिक कार्य तुम्हें विश्वास दिला सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं।"

और अलौकिक कार्य करने का अर्थ क्या है? यह सब है क्या? यदि संसार के सारे चमत्कार यह शरीर कर दिखावे, तो उसे मेरे परमेश्वरत्व, ब्रह्मत्व में रंचमात्र भी वृद्धि न होगी। मैं यह देह नहीं हूँ। मैं तुम्हारी अपनी आत्मा भी हूँ। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक देह अद्भुत कार्य करती है, तो क्या हुआ। दूसरी देह अद्भुत काम नहीं करती, किन्तु मैं वह भी हूँ। यदि यह देह अद्भुत कार्य सम्पन्न करेगी, तो तुम इस देह को परमेश्वर मान लोगे जो एक महान् अनर्थ की बात होगी? ऐसा तुम्हें कदापि नहीं करना चाहिए। राम चाहता है कि तुम निजात्मा को ही परमेश्वर समझो। केवल इस देह को परमेश्वर मत बनाओ। अद्भुत कार्यों के द्वारा और अपने विशेष व्यक्तित्व की धाक जमा कर राम तुम्हारी स्वाधीनता नहीं हरण करना चाहता। तुम्हें गुलाम बनाना, तुम्हारी स्वतन्त्रता छीनना राम का काम नहीं, जैसा कि पूर्ववर्ती पैगम्बर करते आए हैं।

तुम चाहते हो कि यह देह कोई अलौकिक कार्य करे, किन्तु यह देह मैं नहीं हूँ। मैं तो वही ईश्वर हूँ, जिसने संसार रूपी यह महान् अलौकिक कार्य पहले ही से कर रखा है। वही ईश्वर हूँ मैं। यह विशाल विश्व मेरा अलौकिक कार्य है। मैं वही हूँ, यह सम्पूर्ण विश्व जिसकी कारीगरी है।

भारतवर्ष में यह शरीर जिस घर में रहता था, उसमें एक लड़का भी चाकरी करता था। हर घड़ी राम के संसर्ग में रहने के कारण एक दिन वह लड़का एक ऊँचे भवन की सबसे ऊँची छत पर चढ़कर उच्च स्वर से पुकारने लगा, "मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ।" जिस मकान की चोटी से वह चीख रहा था, उसके अगल-बगल के मकानों में जो लोग रहते थे उन्होंने उससे कहा, "यह क्या बक रहे हो, यह क्या कह रहे हो? क्या तुम कहते हो कि तुम ब्रह्म हो, यदि तुम ब्रह्म हो, तो छत से फाँद पड़ो और देखें हम कि तुम्हें चोट लगती है या नहीं। यदि तुम्हारे चोट न लगी, तो हम तुम्हें ईश्वर मान लेंगे। यदि तुम्हारे चोट लगी, तो हम तुम्हें मार डालेंगे, तुम्हें पीड़ा देंगे। तुम ऐसा क्यों बकते हो? ऐसी अधार्मिक बातें कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं"।

बच्चे में ब्रह्म-भावना की उमंग भरी हुई थी। वह बोला, "ऐ मेरे निजात्मन्! मैं नीचे कूदने के लिए तैयार हूँ, मैं जिस नीचे से नीचे गढ़े को तुम बताओगे उसमें कूदने के लिए तैयार हूँ। मैं जिस समुद्र को बताओगे उसमें भी फाँद पड़ूँगा, किन्तु कृपा करके मुझे ऐसा स्थान बताइए जो मुझ से खाली है, जहाँ मैं अभी विद्यमान् नहीं हूँ। मैं तो देवताओं का देवता हूँ। बस, जहाँ मैं पहले ही से विद्यमान् नहीं हूँ, ऐसा स्थान मुझे बताइए और मैं फाँद पड़ूँगा। जो पहले ही से सर्वत्र व्याप्त है वह कैसे फाँद सकता है? फाँद तो केवल वही सकता है, जो परिमित हो, एक जगह हो और दूसरी जगह न हो।"

तब वह सज्जन, जिसने लड़के से फाँद पड़ने के लिए कहा था, बोला, "वाह क्या तुम वह परमेश्वर हो? तुम तो देह हो, देह।" लड़के ने कहा, "यह शरीर तुम्हारी अपनी कल्पना से बना है। मैं यह शरीर नहीं हूँ। तुम्हारे प्रश्न और आपत्तियाँ मुझ तक नहीं पहुँच सकतीं। उनकी पहुँच केवल तुम्हारी कल्पना तक है। इसी तरह, वह कैसे कूद-फाँद सकता है अथवा कैसे ऐसे काम कर सकता है, जो पहले ही से सर्वत्र व्यापक है? एक भी ऐसा स्थल नहीं है, जहाँ वह पहले ही से विद्यमान् न हो। मैं तो वही हूँ। यदि मैं केवल इस एक शरीर में मौजूद होऊँ और उस शरीर में न होऊँ, तो अवश्य मुझे इस देह द्वारा ऐसे अद्भुत कार्य करने चाहिए, ताकि मैं संसार में अपनी परमेश्वरता को सिद्ध करूँ। पर सारे शरीर मेरे हैं। पहले ही से वह मेरे अपने हैं। मुझे केवल अपना अधिकार होता है। मुझे कुछ बनाना नहीं है; हरेक वस्तु मेरे द्वारा बनी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-दान

(लेखक—एक अवधूत द्वारा)

यदि तुम कहीं दुःखी हो, दलित हो, भूले हो, बद्ध, व्यथित, दरिद्र और पीड़ित हो, तो निस्सन्देह तुम अपने ही किसी पाप या दोष के दुर्भाव और दुर्विकार के कारण हो। अज्ञान-अन्धकार में अपने-आपको, जैसे कुछ हो, छिपाते रहते हो, जैसे नहीं हो वैसे दिखाते रहते हो। अभीतक यदि तुम इस सत्य को नहीं जानते, तो अब समझ लो कि तुम जैसे भी पापी या पुण्यवान्, मूर्ख या विद्वान्, दोषी या गुणवान्, बद्ध या मुक्त हो, वैसे ही अपने शरीर की क्रियाओं, मन के भावों और विचारों में स्पष्ट होते रहो। तुम्हारे सुखों-दुःखों के पीछे पाप या पुण्य-कर्मों का अनुभव होता है। प्रत्येक कर्म के पीछे दुर्भाव या शुद्धभाव रहता है। भावों के पीछे कुविचार या सुविचार दीख पड़ता है। विचारों के पीछे कुसंग या सुसंग की प्रेरणा प्रतीत होती है। संग के अनुसार ही सत्य या असत्य की जानकारी होती है और ज्ञान के अनुरूप ही दुर्गति अथवा सद्गति मिलती है।

यदि तुम दुःखों से बचना चाहते हो, तो पाप-कर्म न करो, कहीं भी दोष न रहने दो। पापों का प्रेरक दुर्भाव है, तथा दोष अविवेक के कारण बनते रहते हैं। इसलिये दुर्भाव को मन में स्थान न दो, विवेकी बनो। दुर्भाव का सहायक कुविचार है, इसलिए कुविचारों को बुद्धि में आते ही हटा दो। कुविचारों का पोषक कुसंग है, कुसंग का निवारक सत्संग है, इसलिए संतों, विरक्तों और ज्ञानी पुरुषों के संगी बनो। सत्संग से ही प्रत्येक जीव का अभ्युत्थान होता चला आ रहा है।

यदि तुम सुख चाहते हो, तो दूसरों की यथाशक्ति विचारपूर्वक सेवा करो। पुण्यवान् और सद्गुण-सम्पन्न बनो, शारीरिक और मानसिक दुःखों की मूल-भूमि दोष है और सुखों का अधिष्ठान पुण्य है। यदि तुम शक्ति चाहते हो, तो दूसरों की सेवा करते हुए तपस्वी बनो, तप से दुर्बलता दूर होती है तथा शक्ति मिलती है। यदि तुम सुख-दुःख के बन्धन से थककर शान्ति चाहते हो, तो जो कुछ 'अहम्' के साथ मेरा स्वीकार कर रखा है, उसका त्याग करो। यदि तुम मुक्ति चाहते हो, तो जो कुछ संसार में बद्ध है, उसका आश्रय न लेकर ज्ञानी पुरुषों के सत्संग से ज्ञान प्राप्त करो। यदि तुम भक्ति चाहते हो, तो श्रीभगवान् को ही अपना जानकर उन्हीं के अभिमानी बनो।

अपने जीवन में जहाँ तक तुम भोगजनित सुखों की तृष्णा को तृप्त करने के लिए अनावश्यक और नीच विचारों के आधीन होकर समय और शक्ति का दुरुपयोग करते हो, वहाँ तक मूर्खता, अदूरदर्शिता और अयोग्यता का ही परिचय देते हो; इसके विपरीत जब तुम कभी न तृप्त होनेवाली तृष्णा का त्याग करते हो और विचारों को स्ववश रखते हुए परार्थी और दूरदर्शिता का परिचय देते हो।

जहाँ तक तुम में आहार में अति आसक्ति, भोग-कामनाओं की प्रबलता, अमर्यादित निद्रा तथा अपनी ही शरीर रक्षा पक्ष और केवल बद्ध दशा में ही यन्त्रवत् कार्य करते रहने की आदत है, वहाँ तक तुम अपने में पशु-प्रकृति की प्रधानता समझो। जहाँ तक तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ही शक्ति की वृद्धि चाहते हो और प्राप्त शक्ति का अपनी ही तृप्ति के लिए सुखोपभोग में दुरुपयोग करते हो, साथ ही सुखद पदार्थों की प्राप्ति के लिए दूसरे प्राणियों के प्रति निर्दयता, क्रूरता, कठोरता-पूर्वक हिंसात्मक व्यवहार करते हो, वहाँ तक तुम अपने में आसुरी प्रकृति को ही प्रबल समझो। जब तुम भोजन, निद्रा और सुखोपभोग में समुचित मर्यादा का पालन करते हो, अपने सर्वाङ्गों पर संयम रखते हो, शक्ति का कहीं भी दुरुपयोग नहीं होने देते, सद्भावना पूर्वक शुभ कर्म करते हुए सद्गुणों को बढ़ाते हो और जीवन में दिव्यता को प्राप्त करना तुम्हारा लक्ष्य होता है, तब तुम अपने में मानवी प्रकृति जाग्रत समझो। जब तुम संयमित शक्ति को अपनी अहङ्कृत रुचि-पूर्ति में व्यय न कर दूसरों की सेवाओं में सदुपयोग करते हो, भोगाभ्यास के स्थान पर योगाभ्यास करते रहते हो, क्रोध के बदले दया और क्षमा, कृपणता के स्थान में उदारता, लोभ के बदले दानशीलता, कामना के स्थान में निष्कपटता, मोह के स्थान में गम्भीर विवेक और द्वेष के स्थान में प्रेमपूर्वक व्यवहार से काम लेते हो, तुम्हारा अभ्युदय निःश्रेयस में परिणत होने लगता है, प्रपञ्च से उदासीनता एवं सांसारिक-सुख-कारक वस्तुओं और व्यक्तियों से विरक्ति का भाव प्रबल होता है और वह तुम्हें परमशान्ति का दान करता है, तभी तुम में दैवी प्रकृति की प्रधानता कही जा सकती है।

तुम में जहाँ कहीं कायरता, दुर्बलता, प्रभाव-शून्यता और दूसरों के प्रति घृणा, विश्वासघात, छल तथा कपट आदि दोष दीख पड़ते हैं, वहीं तुम अपनी चरित्रहीनता का परिचय देते हो। जहाँ कहीं वीरता, दृढ़ता, प्रभावशीलता, सत्यता, सरलता, विनम्रता, जितेन्द्रियता तथा परोपकार आदि की क्रियाएँ दीखती हैं, वहीं तुम सच्चरित्रवान् सिद्ध होते हो। जब तुम्हारे मन में भोग-विलासों की इच्छा प्रबल होती है और तुम उसकी पूर्ति का प्रयत्न करते हो, तब तुम दुःख के पथ पर उतरते हुए दरिद्रता का वरण करते हो। जब भोगेच्छाओं को रोक कर और संतोष धारण कर दूसरों की सेवा के लिए शक्ति और अपने लिए शान्ति की आकांक्षा करते हो, तब तुम अपनी प्रकृति में उदारता का परिचय देते हो।

यदि तुम धनी होकर दानी नहीं, निर्धन होते हुए भी तपस्वी नहीं, विद्वान् होकर विनम्र नहीं, अशिक्षित होकर मितभाषी नहीं, बलवान् होकर परिश्रमी नहीं, निर्बल होकर विनयी नहीं, सुखी एवं सम्पन्न होकर सेवापरायण नहीं, दुःखी होकर दोषों के त्यागी नहीं, वयोवृद्ध होकर संसार से विरक्त नहीं तथा मानवहोकर भगवान् के भक्त नहीं हो, तब निस्सन्देह तुम अपने दुर्भाग्य को ही परिपुष्ट कर रहे हो।

जब तुम प्रिय सम्बन्धियों का वियोग होने पर अनुद्विग्न रह सको, तभी तुम मोहजित् हो। जब अपने पास सञ्चित धन आदि वस्तुओं की हानि में भी चिन्तित और व्यथित न हो सको, तभी लोभजित् हो। जब अपनी हानि पहुँचाने वाले के प्रति, अपना विरोध और अनादर करने वाले के प्रति भी अनुत्तेजित रह कर उससे प्यार करते रहो, तभी क्रोधजित् हो। जब रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श आदि सुखद विषयों का संयोग होने पर भी मन को असमर्पित रख कर किसी की भी इच्छा नहीं करते हो, तभी तुम कामजित् हो। जब तुम संसार की किसी सुखद या दुःखद वेदना से विचलित न हो कर सत्स्वरूप में स्थित रहोगे, तब समदर्शी या तत्त्वदर्शी होगे। जब तुम प्राणिमात्र के प्रति प्यार का परिचय देते हुए अहिंसाव्रत-पालन का स्वभाव बना लोगे और किसी भी वस्तु के आने तथा जाने में संयोग-वियोग का अनुभव न करोगे, तभी तुम नित्य योगी बन सकोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व में ब्रह्म का दर्शन (साक्षात्कार)

[महर्षि अरविन्द घोष की अनुभूति]

अध्यात्म योग की पूर्णता ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। इस योग के तीन अंग हैं—

(१) परमात्मा के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण।

(२) आत्म-ज्ञान द्वारा असंग और साक्षी होकर रहना।

(३) सब वस्तुओं को परमात्मा का रूप देखना। सब स्थानों में, प्रत्येक वस्तु और पदार्थ में, प्रत्येक घटना में भगवान् को ही देखना, कर्मफल और कर्म को भी भगवान् के अर्पण करके अज्ञान, अहंकार, द्वंद्व और वासना से मुक्त होकर अपने आप में शुद्ध, मुक्त, सिद्ध और आनंद से भरपूर हो जाना। यही परमात्मा का साक्षात्कार है।

पहले दो अंगों का विवेचन तो पीछे हो चुका है। अब तीसरे अंग में प्रवेश करना है। आत्म-ज्ञान-सम्मिलित-आत्म-समर्पण रूपी सर्वोत्कृष्ट साधन का पूर्णतया अभ्यास करने वाले साधक को तीसरे अंग में प्रवेश करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह स्वतः ही भगवान् की कृपा से प्राप्त हो जाता है।

"सनत सुजातीय" में लिखा है कि सिद्धि के लिये चार बातें आवश्यक हैं—(१) शास्त्र (२) उत्साह (३) गुरु (४) समय (काल)।

(१) 'शास्त्र' का अर्थ है कि जिस मार्ग पर चलना है उसको भली प्रकार समझ लेना अर्थात् उसकी विधि, नियम, ऊँच, नीच, आदि, अन्त का पूरा पता ग्रहण करना।

(२) तुम्हारा दृढ़ संकल्प और नित्य स्मरण ही "उत्साह" है।

(३) जगद्गुरु भगवान् स्वयं ही तुम्हारे गुरु बन जायेंगे। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि जीवित सांसारिक गुरु या पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं। वह तो अनिवार्य है। सांसारिक गुरु ने ही तुम को शास्त्र समझा कर, मार्ग दिखला कर, तुम्हारे अन्दर उत्साह भर कर, तुम्हें जगद्गुरु भगवान् के सन्मुख लाकर उनके हवाले करना है। ज्ञान उदय होने के पश्चात् ही तुम्हें अनुभव होगा कि भगवान् स्वयं ही तुम्हें इस मार्ग पर चला रहे हैं।

(४) समय (काल)—शास्त्र, उत्साह और गुरु की प्राप्ति हो जाने पर साधन की अथवा इस योग की पूर्णता के लिए समय तो लगेगा ही, परन्तु इसकी चिन्ता न करो, इसको भगवान् पर छोड़ दो। यदि समय अधिक लगता है, तो दुःख न करो। इस साधन का अभ्यास करते हुए तुम देखोगे कि भगवान् कितनी सुन्दरता, सूक्ष्मता और अनन्त बुद्धि या ज्ञान द्वारा तुम्हारे जीवन की प्रत्येक आन्तरीय और बाह्य घटना को योग की सिद्धि के लिए प्रकट करते हैं। प्रत्येक कार्य की गति और प्रभाव का इस प्रकार संबन्ध रखते हैं कि अपूर्णता का बहिष्कार करके पूर्णता को अन्दर लाया जाये। एक सर्वशक्तिमान् प्रेम और ज्ञान तुम्हारी उन्नति में लगा हुआ है। अतः यदि तुम्हें परमात्मा का साक्षात्कार करने में अधिक समय लगता है तो व्याकुल न होओ। अप्रमत्त और धीर रहते हुए उत्साह को न छोड़ो, शेष सब भगवान् कर देंगे। यह अत्यंत महान् कार्य है जो तुम्हारे अन्दर किया जा रहा है क्योंकि तुम्हारी सारी मानवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृति को थोड़े वर्षों में ही दैवी प्रकृति में बदलना है। इसलिए समय को देखकर अधीर होना उचित नहीं।

साक्षात्कार की श्रेणियाँ

आत्म-समर्पण का अभ्यास करने वाले और असंग और साक्षी होकर भगवान् की लीला को संसार में और अपने अन्दर और बाहर देखने वाले साधक को बिज्ञान के उदय होने पर नियमपूर्वक परमात्मा का साक्षात्कार इस प्रकार होने लगता है—

(१) पहले साधक एक दिव्य अव्यक्त सत्ता "सद् आत्मा" (चेतन) को सर्व-देश-काल में अनुभव करने लगता है, जो निराकार है, अचल है और अदृश्य है, शान्त और अलक्षण है और उसमें यह नाम रूप वाला दृश्य जगत् (व्यक्त) असत्-सा प्रतीत होने लगता है। आत्म और अनात्म, चेतन और जड़, अव्यक्त और व्यक्त, सत् और असत् भिन्न अनुभव होते हैं। ऐसा भी होता है कि साधक केवल एक चेतन सद् आत्मा को ही सत् अनुभव करता है और शेष सारे जगत् को माया, निरर्थक और अनिर्वचनीय धोखा देखता है।

(२) परन्तु यह तो आरम्भ है। अव्यक्त सद्-आत्मा का अनुभव सीमित है। तुम्हें यहीं पर ही नहीं ठहर जाना है। इसके पश्चात् तुम अनुभव करने लगोगे कि सृष्टि के उत्पन्न हुए सब पदार्थ इसी आत्म के अन्दर और इसी के सहारे हैं। यही नहीं, बल्कि यह भी उन सब के भीतर व्यापक और पूर्ण है और अन्त में तुम यह अनुभव करोगे कि यह सब नामरूप जगत् भी ब्रह्म ही है।

(३) इसके पश्चात् तुम्हारे जीवन में परिवर्तन हो जायेगा। अब तुम्हारा जीवन इस नये अनुभव के रंग में अधिक से अधिक रँग जायगा। इसे ही उपनिषदों और भगवद्गीता ने वास्तविक जीवन का नियम बतलाया है। अर्थात् तुम अपने आपको समस्त प्राणियों और पदार्थों में और सब प्राणियों को अपने आप में देखोगे—

"आत्मानं सर्व भूतेषु सर्व भूतानि चात्मनि"

और तुम्हें सब कुछ ब्रह्म ही प्रतीत होगा (सर्वं खल्विदं ब्रह्म), परन्तु अभी तुम्हें इससे भी आगे जाना है।

(४) इस योग का उच्च से उच्च और अन्तिम अनुभव उस समय होगा जब तुम अखिल ब्रह्माण्ड को एक अनन्त दैवी व्यक्ति का स्वरूप, खेल और लीला देखोगे, जब तुम पूर्व प्राप्त किये हुए अनुभव द्वारा सर्व में केवल इस व्यक्त जगत् के आधार "अव्यक्त सद् आत्मा" को ही नहीं देखोगे, बल्कि इस अनुभव के रहते हुए भी सर्व में भगवान् कृष्ण (परब्रह्म) का दर्शन करोगे, जो एक साथ ही अर्थात् एक ही समय में स्वयं ही यह सब व्यक्त और अव्यक्त है, इससे भिन्न होकर स्वयं ही इसका आधार है और फिर इस सब से परे है:—"अव्यक्तो व्यक्तात्परः"। क्योंकि सद् आत्मा से परे असद् का वह मौन (खामोशी) है जिसे बौद्ध और शून्यवादी लोगों ने "शून्य" के रूप में अनुभव किया है। इस मौन (असत्) से भी परे "परात्पर पुरुषः"

"पुरुषो वरेण्य आदित्य वर्णास्तमसः परस्तात्"

अर्थात्—अंधकार से परे सूर्य के समान ज्योतिर्मय वह पुरुष है, जिसने अपने अन्दर से ही इस संसार को उत्पन्न किया है और अनन्त और शान्त ईश्वर के रूप में इसमें सर्व व्यापक होता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका सहारा है, जो शिव, नारायण और लीलामय श्रीकृष्ण हैं, जो हम सब को अपने प्रेम से अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपनी अपार शक्ति द्वारा हम से इस नाटक में अभिनय कराते हैं और इस बहुरंगे विचित्र जगत् में अपने आनन्द, शक्ति और सौंदर्य की नित्य अनन्त लीला कर रहे हैं।

यह संसार भगवान् के सत्, चित्, आनन्द स्वरूप की ही लीला है। तुम एक दिन यह भी अनुभव करोगे कि प्रकृति (matter) भी जड़ नहीं है। यह कोई पदार्थ नहीं, बल्कि चेतना का ही एक रूप है। इसका गुण यही है कि इसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हो जाता है। पदार्थों का ठोसपन (solidity) भी जो दो गुणों "संघति" और "धृति" के मिलाप का परिणाम है, चेतन की ही एक अवस्था है और कुछ नहीं। प्रकृति, जड़, चेतन, प्राण, मन और जो मन से परे है, यह सब कुछ श्रीकृष्ण भगवान् (अनन्त गुण ब्रह्म) ही हैं, जो अपने सच्चिदानन्द रूप में इस जगत् में लीला कर रहे हैं।

इसलिए केवल जीवित वस्तुओं (जानदारों या प्राणियों) में ही नहीं, बल्कि बेजान जड़ पदार्थों में भी हमें नारायण का दर्शन करना है, शिव को अनुभव करना है, माता प्रकृति (शक्ति) को आलिंगन करना है। जब हमारी आँखें, जो अब जड़ता के विचार से अन्धी हुई हैं, परम ज्योति की ओर खुलेंगी, तो हमें यह ज्ञान होगा कि संसार में कोई वस्तु भी बेजान या जड़ नहीं है बल्कि हर वस्तु के अन्दर दृश्य या अदृश्य, व्यक्त या अव्यक्त, गुप्त या प्रकट अथवा प्रकाशित अवस्था में उस गुप्त (छिपी हुई) चेतना के अतिरिक्त जिसे हम "अक्षम्" (matter) कहते हैं, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द, चित् और सत् भी विद्यमान् हैं। सब वस्तुओं के अन्दर स्वयं ज्ञान स्वरूप परमात्मा व्यापक होकर अपने गुणों का आनन्द ले रहे हैं। पुष्प, फल, पृथिवी, वृक्ष, धातु सब एक आनन्द से भरपूर हैं, क्योंकि इनमें भगवान् कृष्ण प्रवेश करके निवास करते हैं। उनका प्रवेश शारीरिक रूप से नहीं है क्योंकि इस प्रकार की कोई स्थिति हो ही नहीं सकती। देश और काल तो पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए केवल हमारे नियम और व्यवस्थायें हैं जिनके द्वारा हम भगवान् की सृष्टि को रचने वाली चातुर्य कला का दृश्य लेते हैं। इसलिए भगवान् इन सब वस्तुओं में केवल उस "चित्त" के रूप में प्रवेश करते हैं, जो उनकी सर्वोत्तम, परम पवित्र, सर्व श्रेष्ठ सत्ता में दिव्य ज्ञान का स्वरूप है।

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्चित् जगत्यां जगत्"।

अर्थात्—यह सारा संसार और इस प्राकृतिक जगत् की प्रत्येक वस्तु ईश्वर का निवास-स्थान बनाई गई है।

ब्रह्मानुभव (साक्षात्कार) का फल

जब हम इस अनुभव को प्राप्त कर लेते हैं और इसमें पूर्ण रूप से दृढ़ता के साथ स्थापित होकर इसमें निवास करने लगते हैं, तो शोक, पाप, भय, भ्रम, धोखा, मानसिक क्लेश, कष्ट और दुःख की संभावना बहुत जोर के साथ हमारे अन्तःकरण और शरीर से बाहर निकाल दी जाती है। तब हम अपने जीवन में उपनिषदों के इस कथन को सत्य अनुभव करते हैं:—

"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"।

अर्थात्—जिसको ब्रह्म का आनन्द प्राप्त है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे संसार में किसी वस्तु से भी भय नहीं होता। फिर ईश उपनिषद् में वर्णन की हुई इस स्थिति का भी प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः,
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

अर्थात्:—जब विज्ञान की प्राप्ति पर सब भूत और पदार्थ अपने आत्मा के साथ एक हो जाते हैं, तो उस ज्ञानी को क्या मोह और क्या शोक हो सकता है, जो सब वस्तुओं में उनकी अन्तरीय एकता देखता है।

उस समय सारी सृष्टि हमारे सामने एक नया रूप धारण कर लेती है। समस्त संसार एक परम सुन्दर सागर प्रतीत होता है जिसमें कल्याण, श्रेय, प्रकाश, आनन्द, सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और शाश्वत शान्ति की तरंगें क्रीड़ा करती हैं। हम सब वस्तुओं को शुभ, शिव, मंगल और आनन्दमय देखते हैं। हम अपने स्वरूप में सब भूतों के साथ एक हो जाते हैं— "सर्वभूतात्माभूतात्मा"; और इस अनुभव के अनुसार नया जीवन धारण करते हुए, सदा इसी अवस्था में रहते हुए अपने स्पर्श, एकता और प्रेम के प्रभाव से यही अनुभव और मनुष्यों को भी प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार हम इस ब्राह्मी-स्थिति के प्रकाश को अखिल संसार में फैलाने का एक केन्द्र (centre) बन जाते हैं।

नोट—"साक्षात्कार का सहज मार्ग" पृष्ठ ३६ पर पढ़िये।

संसार में सुखी कैसे बनें

(श्री स्वामी चैतन्यप्रकाश जी एम० ए०, वेदान्ताचार्य)

यह विशाल विश्व अनादिकाल से गंगा के प्रवाह के समान चल रहा है। प्रतिदिन अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं, अनन्त मरते हैं। पिता-माता, भाई बहिन, स्त्री-पुरुष, बड़े-छोटे सब इस संसार में विलीन हो जाते हैं। सब लोग मुसाफ़िर के समान हैं। किसी का किसी के साथ में सच्चा सम्बन्ध अब तक नहीं देखा गया। जो किसी के साथ नित्य सम्बन्ध स्थापना करता है, वह अन्त में उनके वियोग से दुखी होता है। जितने भी संबन्ध हैं उतने ही अधिक दुःख भी हैं। जितना संबन्ध न्यून, उतनी चिन्ता कम। श्री रामचन्द्र जी को सीता जी के साथ संबन्ध होने से विलपना पड़ा। कारण यह है कि बाहर का नाम और रूप स्थायी नहीं है और जो स्थायी नहीं उसको स्थिर समझ कर नित्य संबन्ध स्थापन करना कितनी नादानी है!

आज का युग पहले से अधिक बुद्धिमान्, चतुर और चालाक है, किन्तु विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि आज के मनुष्य चतुर तो हैं, किन्तु अपने आपको धोखा देने में ही उनकी चतुरता चलती है। अपने सच्चे स्वरूप को खो देना और मिथ्या को अपना लेना अपने को धोखा देना है। मोती को फेंक देना और सीपी को पकड़ना क्या नादानी नहीं है? अपना यथार्थ स्वरूप सत्, चित् और आनन्द है। नाम रूप अनित्य दुःख जड़ रूप है। जो उस सच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप को याद कर उसमें स्थित होता है, वही पुरुष-स्त्री बुद्धिमान् और सदा सुखी हैं और सब कंगाल और दुःखी हैं।

इसलिए इस माया मोहमय संसार में आकर इस आनन्दमय राशि का साक्षात्कार करना चाहिये। गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं—

सकल करम कर थके गुसाईं।
सुखी न भए अब ही की न्याईं॥

संसार के सर्व काम कर थक चुके, किन्तु केवल दुःख ही दुःख अनुभव हुआ, जब श्री रामचन्द्र जी के चरणों की शरण पकड़ी तब ही अनुपम सुख प्राप्त हुआ, जिस सुख के समान संसार का कोई सुख नहीं है। प्रभु और श्री गुरु चरण कमलों की शरण पाकर पीछे त्रिलोकी के राज्य को भी तुच्छ समझता है। संसार का महान् कष्ट आने पर घबराता नहीं है, संसार के सुख-दुःख को अनित्य और चल समझता है। लाभ और हानि समान हो जाते हैं। यह अचल स्थिति चार प्रकार की कृपाओं से होती है। गुरु कृपा, ईश कृपा, शास्त्र कृपा और अपनी कृपा। गुरु कृपा गुरु सेवा सुश्रुषा, प्रणिपात और आज्ञापालन से प्राप्त होती है। ईश्वर की कृपा हर क्षण में मौजूद है। उसको समझना चाहिये यह अमूल्य मनुष्य-शरीर घर माता-पिता ईश्वर की देन हैं। इनके बिना किसी भी मनुष्य का पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो सकता। यदि दस मिनट पृथ्वी इस जगत् से उठ जाय, तो संसार के सब प्राणी खतम हो जायँ। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, ईश्वर की महान देन है, महान् कृपा है। शास्त्र में सर्वज्ञता भरी हुई है। त्रिलोकी का पता शास्त्र से लगता है। इसलिए श्री भगवान् श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ"

कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, सुख-सिद्धि और मोक्ष को बतानेवाले शास्त्र ही हैं। वेद, उपनिषद्, वेदांत आदि षट्दर्शन, भगवत् आदि पुराण, रामायण, महाभारत धर्म पुस्तकों को शास्त्र कहते हैं। गुरु, आचार्य, संत-जनों से शास्त्रों को विधिपूर्वक सुनना चाहिये। सुनने के पश्चात् मनन निदिध्यासन करना चाहिये। निदिध्यासन से ईश्वर, माया, संसार और अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है, जिस ज्ञान से सब संदेह ग्रन्थियाँ, शुभ-अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, परमानन्द की प्राप्ति और शारीरिक, मानसिक, दैविक आदि व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। हर एक मनुष्य परम सुख चाहता है। रात-दिन सुख के लिए मारा-मारा फिरता है। कोई तन में, कोई मन में, कोई धन में, कोई जन में, कोई वन में भटकता है, परन्तु सुख कहीं भी नहीं प्राप्त होता है।

सुख कहाँ है? सुख अन्तर आत्मा में है। जैसे—

न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्नसुखं चक्रवर्तिनः।
यत् सुखं विरक्तस्य मुनेरेकान्त वासिनः॥

अर्थात् न इन्द्र को सुख है, न चक्रवर्ति को सुख है, जो एकांतवासी भगवान् के भक्त को सुख है, जिसने संसार के विषयों से आसक्ति को हटा दिया है, उस को सुख है। उस सुख के लाभ के लिए अपना पुरुषार्थ ही उपाय है, यह सारी पृथ्वी पशु समान नरों से भरी हुई है। समुद्र पर्यन्त आलस्य फैला हुआ है। इस लिए मूर्खता, दरिद्रता और दीनता में सब जकड़ गये हैं। जो वीर हैं वे दाँत पर दाँत दबा कर सिंह के समान अज्ञान दरिद्रता रूपी पिंजड़ा को तोड़ कर स्वतन्त्र होते हैं और सब बन्धनों से मुक्त होते हैं।

गुरु शास्त्र के अनुसार विचार कर पुरुषार्थ करने से हर एक काम सफल होता है। मन मतानुसार करने पर काम बिगड़ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंत:करण का सुधार तथा आत्म-ज्ञान

(लेखक—श्री नगेश्वरदत्त पाण्डेय विशारद 'कलानिधि' मन्त्री, मानवता प्रसारिणी समिति, नसीपुर जिला बाराबंकी ।)

हमारी मानसिक शान्ति बहुत कुछ हमारे अन्त:-करण की स्वच्छता पर निर्भर है। लैम्प का शीशे-वाला ग्लोब जितना ही निर्मल और स्वच्छ होगा; उतना ही अधिक प्रकाश उस लैम्प से हमें मिल सकेगा। इसी प्रकार अन्त:करण जितना ही निर्मल और पारदर्शी होगा उतना ही सच्चे सुख, आनन्द और शान्ति की किरणें उससे निकल सकेंगी। हमारे अन्तर्जगत् की समस्त भावनायें और विचार कार्य का रूप धारण करके बहिर्जगत् में सदा प्रकट हुआ करते हैं। इसीलिए, जैसा हमारा हृदय होगा वैसा ही जीवन होगा। जैसे किसी गुप्त सलिल-स्रोत से फव्वारे की उत्पत्ति होती है; वैसे ही मनुष्य-हृदय के अत्यंत गुप्त स्थान अर्थात् अन्त:करण से उसके जीवन का उद्गम होता है। अन्त:करण में जैसे विचार उदय होते हैं, वैसे ही कार्य भी होते हैं। हमारे अन्त:करण में जैसे विचार-वृक्ष उत्पन्न होंगे; समय पाकर अपनी प्रकृति के अनुरूप उसमें आचरण-रूपी वैसे ही फल लगेंगे। क्योंकि; बीज, वृक्ष, फूल और फल—यह चतुश्चक्र सकल सृष्टि में निरंतर चलता रहता है। अत: आध्यात्मिक और उत्तम जीवन की आकांक्षा रखनेवालों को उचित है कि पहले अपने अन्तर्जगत् का सुधार करें। अन्तर्जगत् के सुधारते ही बहिर्जगत् स्वयमेव उज्ज्वल और सौंदर्य पूर्ण हो जायगा।

अब प्रश्न है कि अन्तर्जगत् सुधारा किस भाँति किया जाय? वे कौनसे उपाय हैं जिनके अवलंबन से अन्त:करण विमल बन सकता है? भगवान् श्रीकृष्णजी का श्रीमुख वचन है कि—

"मनएव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो"

मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का एकमात्र कारण मन ही है (गीता)। इसलिए मन को स्वच्छ, पवित्र, उच्च और बलिष्ठ बनाने से अन्तर्जगत्, जो कि बहिर्जगत् का मूल-स्वरूप है; आप से आप उत्तम और कल्याण-कारी हो जाता है। संक्षेप में नीचे कुछ ऐसे उपायों का उल्लेख किया जाता है जिनपर आचरण करने से अभ्यासी को मन के सुधार में सफलता मिल सकती है—

१—शरीर को स्वस्थ, सबल और पवित्र रखो।

२—पूरे प्रयत्न-पूर्वक आलस्य को मार भगाओ।

३—देह को जड़ समझ कर उसे अनुचित महत्त्व न दो, बल्कि 'आत्म-देव का मंदिर' जानकर उसकी रक्षा करो और उसका यथेष्ट आदर भी करो।

४—वाचिक दुर्गुण को त्याग कर जिह्वा को पूर्ण सुसंस्कृत करो।

५—सदा शुद्ध आहार किया करो।

६—अमंगलकारी और अशान्तिजनक कुभाव-नाओं को मन से निर्मूल करदो।

७—अपने मन को शुभ और कल्याणकारी वृत्तियों से आवृत्त रखो।

८—अपने को निस्वार्थ कर्तव्य-पालन का अभ्यस्थ बनालो।

९—सब के साथ साधुता-पूर्ण व्यवहार करो।

१०—आत्म-ज्ञान प्राप्त करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे की पंक्तियों में इन्हीं का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जाता है।

शरीर को स्वस्थ और पवित्र रखना

जिस प्रकार अर्थोपार्जन आदि कर्मों के लिए शरीर को स्वस्थ रखने की आवश्यकता है, उसी प्रकार आत्मिक सुधार के लिए भी शरीर को स्वस्थ और बलवान् रखना अपेक्षित है, क्योंकि शरीर न केवल साधन ही है बल्कि उसका प्रभाव भी मन पर पड़ता है। नित्य का अनुभव है कि जब शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा अथवा बाधा होती है, तो उस समय मन खिन्न, पीड़ित, अशान्त और दुखी हो जाता है। इसी प्रकार निर्बल शरीर वाले व्यक्तियों का मन अत्यन्त चपल और शक्तिहीन हो जाता है। उनमें दृढ़ता और उत्साह तथा उमंग का पूर्ण अभाव रहता है। कुविचार और कुवासनायें उनके मन को आन्दोलित करके; नानाविधि अभिलाषाओं के चक्कर में फँसाती हैं, जिसका फल यह होता है कि मानसिक शान्ति उन्हें कभी प्राप्त नहीं होती। क्षीण-काय मनुष्य चिड़चिड़े स्वभाव वाले और बहुधा क्रोधी देखे जाते हैं। उन्हें 'काम' भी बहुत सताता है जिससे आध्यात्मिकता को बहुत भारी धक्का लगाता है। इसीलिए उपनिषदों में कहा गया है—'नायमात्मा बलहीनेनलभ्यः' आत्मा बलहीन आदमी द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है। इससे सिद्ध है कि आत्मिक उन्नति करने के लिए स्वस्थ और सबल शरीर की परमावश्यकता है। सुप्रसिद्ध धर्मज्ञ स्वामी विवेकानन्दजी बहुधा कहा करते थे कि 'ईश्वर गीता में नहीं; फुटबाल में है'।

शरीर को नीरोग और बलशाली बनाने वाले उपायों का वर्णन स्वास्थ्य-संबन्धी ग्रंथों में मिलेगा। शरीर को पवित्र रखने वाले उपायों का विचार यहाँ किया जाता है। पवित्रता अर्थात् शुद्धि दो प्रकार की होती है—(१) अन्तर्शुद्धि और (२) बहिर्शुद्धि। हृदय की शुद्धता और मन की निर्मलता का नाम 'अन्तःशुद्धि' है। शरीर के अंगों—अवयवों को पापकर्मों से बचाकर उन्हें निर्मल रखना 'बहिर्शुद्धि' है। बहिर्शुद्धि सरल है। प्रत्येक मनुष्य जो आलसी नहीं है, अपने शरीर को जल से धोकर साफ रख सकता है, किन्तु घृणित और कुत्सित कार्यों से बचे रहना तब तक आवश्यक है जब तक कि अंतर्शुद्धि न की जावे, क्योंकि शरीर वास्तव में जड़ है, वह स्वतः कुछ नहीं कर सकता, जब तक कि मन उसे प्रेरित न करे। इसलिए यदि हमें अपने शरीर की पवित्रता अभीष्ट है; सबसे पहले मन को पवित्र रखना होगा। यदि हमारा मन अपवित्र होगा, तो यह नितान्त असंभव है कि हम अपने शरीर को पवित्र रख सकें। इसलिए यह आवश्यक है कि हम एक क्षण के लिए भी मन में पाप-मूलक विचार न रखें। हमारे विचार ही हमारे कार्य के उत्पादक हैं, मन में जैसे विचार उठते हैं हम वैसे ही कार्य करते हैं। इस भाँति किसी एक ही प्रकार के विचारों के कारण हम एक ही भाँति के कार्य करते रहते हैं, जिससे एक ही तरह के वैसे ही कार्य करने का हमारा स्वभाव बन जाता है। बस; स्वभाव या आदत की यही वैज्ञानिक उत्पत्ति है। उदाहरणार्थ; नीच और घृणित विचारों से दुराचार और मद्य-पान का स्वभाव पड़ता है। गंदे विचारों से मैले-कुचैले रहने की आदत पड़ती है। आलस्य-मूलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार हमें परिश्रम-हीन बनाकर अकर्मण्य कर देते हैं। कायरता के विचारों से हम भीरु एवं स्वार्थपरकता के विचारों से स्वार्थी और पापी बन जाते हैं।

इसके विपरीत उत्तम विचारों से प्रेरित होकर हम दया और प्रेम के कार्य करते हैं जिससे परोपकार और सहानुभूति का स्वभाव बनता है। पवित्र और शुद्ध विचार हमें इन्द्रिय-निग्रह और आत्म-संयम का स्वभाव प्रदान करते हैं। उत्साह-वर्द्धक विचारों से साहस, पुरुषार्थ, उद्योग और आत्म-निर्भरता के भाव जगते हैं, जिनके द्वारा हमें पुंसत्व प्राप्त होता है। क्षमा और शीलता के विचार हमें सभ्य, विनयी और सुनम्र बनाते हैं। स्वतन्त्र विचार हमारी दासता को नष्ट करते हैं। इसीलिए प्रतिक्षण हमें सावधान रहना चाहिये कि मन में पाप का विचार न घुसे। पाप का विचार जो पहले जल-बुद्-बुद्वत् मन में उत्पन्न होता है वही अतिशीघ्र वृद्धि पाकर समुद्र का-सा आकार धारण करके मनुष्य को डुबा देता है। इसीलिए नीतिकारों का कथन है कि विषधर सर्प का घर में रहना उतना भयंकर और घातक नहीं जितना पाप-मूलक विचार का मन में रहना।

बहिर्शुद्धि के लिए आवश्यक है कि शारीरिक पाप न किये जावें। शारीरिक पाप कौन-कौन हैं, इस विषय में मनु जी कहते हैं—

अदत्तानामुपादानं, हिंसा चैवा विधानतः।
परदारोप सेवा च, शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
(मनु० १२-७)

'बिना दिया हुआ धन लेना, विधि-रहित हिंसा, और पर-दारा-सेवन ये तीन शारीरिक पाप हैं।' इन पापों को परित्याग कर सदा, कायिक तप करते रहना बहिर्शुद्धि का प्रमुख साधन है। गीताचार्य भगवान् श्रीकृष्ण कायिक तप की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ, पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते॥
(गी० १७-१४)

अर्थात् देवता, ब्राह्मण, गुरु, और विद्वानों की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य्य और अहिंसा को कायिक तप कहते हैं।

(अपूर्ण)

अयाचना

(कल्याण से)

अयाचना एक भारी तपस्या है। प्रत्येक प्रकार की तपस्या से मनुष्य की मानसिक-शक्ति बढ़ती है। मानसिक-शक्ति बढ़ाने से उसकी कार्यक्षमता और आत्म-विश्वास बढ़ जाता है। जिस व्यक्ति ने दूसरे से कुछ माँगने के प्रति अपने ऊपर नियन्त्रण कर लिया है, उसे अपने ऊपर ही अधिक भरोसा करना पड़ता है। उसे दूसरे लोगों की अपेक्षा परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है। इससे उसकी काम करने की शक्ति बढ़ जाती है। जिस व्यक्ति को अपने-आप से प्रेरित हो कर जितना अधिक काम करना पड़ता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उतना ही काम करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

जब हम दूसरे व्यक्ति के पास किसी वस्तु को माँगने की दृष्टि से जाते हैं, तो हम अपने आप पतन की अनुभूति करते हैं।

'रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जायँ'

जो व्यक्ति जितना ही कम दूसरे लोगों की कृपा की अपेक्षा रखता है, वह उतना ही महान् है। उसे किसी से डरना नहीं पड़ता, उसे झूठ नहीं बोलना पड़ता, उसे किसी की अनुचित क्रिया का समर्थन नहीं करना पड़ता और उसे खुशामद नहीं करनी पड़ती। उसे यदि किसी बात का भय होता है, तो अपने आप ही अशान्ति उत्पन्न हो जाने का अथवा अपने भीतर लड़ाई की स्थिति उत्पन्न हो जाने का।

दूसरे व्यक्ति से कुछ माँगने से उस व्यक्ति का हमारे प्रति सम्मान का भाव चला जाता है। पर वह कोई बड़ी बात नहीं है; इससे उतनी क्षति नहीं। असली हानि तो अपने आत्म-विश्वास के खो जाने की है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक दूसरे लोगों के अनुग्रह को ग्रहण करता है, वह अपनी योग्यता को उतना ही कम कर लेता है। उस का आत्म-विश्वास और कार्यक्षमता उतने ही परिमाण में कम होते हैं जितने परिमाण में उसकी याचना की मनोवृत्ति बढ़ती है।

सच तो यह है कि प्रत्येक वस्तु का हमें पूरा मूल्य चुकाना पड़ता है। कोई भी वस्तु संसार में मुफ्त में नहीं मिलती है। जितना हम ने संसार से लाभ उठाया है, यदि हमने उसकी उससे अधिक सेवा की है, तो यह सेवा का भाव हमारे मन में संचित धन के समान हमारे मानसिक बल को बढ़ाये रहता है। यह एक प्रकार का समाज के ऊपर हमारा ऋण है, जिसकी समाज धीरे-धीरे अदाई करता है। इसके प्रतिकूल यदि हमारी सेवा थोड़ी है और समाज से लाभ हम ने किसी प्रकार अधिक पा लिया है, तो यह भावना हमें चोर की मनोवृत्ति बना देती है। हमें डर रहता है कि कहीं कोई व्यक्ति हमें पकड़ कर दण्ड न देने लगे। समाज की सेवा की मनोवृत्ति साहूकार की मनोवृत्ति है और उससे लाभ प्राप्त करने की मनोवृत्ति कर्जदार की मनोवृत्ति है। साहूकार को डर नहीं रहता, कर्जदार को सदा डर बना रहता है।

माँगने से कुछ नहीं मिलता। हम इससे अपने आपको धोखा ही देते हैं। जो कुछ माँगने से मिलता है, उसके लिए यदि हम खुशी से त्याग नहीं करते तो जबर्दस्ती त्याग करना पड़ता है। इससे भारी कष्ट होता है। इसके प्रतिकूल यदि हमारी मनोवृत्ति समाज को कुछ न कुछ देने की है, तो समाज में हमारे प्रति नयी भावना उत्पन्न हो जाती है। समाज हमारा आदर करने लगता है। फिर अज्ञात स्थान से हमें अनायास सहायता मिलने लगती है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सर्वव्यापी परमात्मा का निवास है, इसकी शक्ति महान् है। प्रत्येक व्यक्ति चैतन्य अणु है। इस अणु की थोड़ी-सी शक्ति स्फुरण होने पर बड़े-बड़े काम सरलता से हो जाते हैं। अतएव जब मनुष्य अपनी सद्भावना की शक्ति में विश्वास करके कार्य करता है, तो उसे अज्ञातस्थान से अनायास ही सहायता मिलजाती है। यह सहायता ऊपरी दृष्टि से बाहर से आती है, पर आन्तरिक दृष्टि से वह भीतर से ही आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज से कोई बीस वर्ष पूर्व की बात है। लेखक बनारस से अपनी जन्मभूमि मध्यप्रान्त को जा रहा था। प्रयाग में गाड़ी बदलनी पड़ती है। बनारस की गाड़ी के इलाहाबाद पहुँचने और जबलपुर की गाड़ी मिलने के बीच छः या सात घंटे का समय रहता था। लेखक स्टेशन के पास की धर्मशाला में ठहर गया। दोपहर का समय था। उसके मन में विचार आया कि किसी साधु को भोजन कराना चाहिए। अतएव वह धर्मशाला के बाहर साधु की खोज में निकला। दरवाजे के पास ही एक सन्यासी तूँबा और मृगचर्म लिए दिखाई दिया। वह बड़ा गम्भीर, शान्त और वयोवृद्ध था। उसे देखते ही मन में विचार आया कि उससे भोजन के लिए पूछा जाए। उसे वास्तव में भूख लगी थी। पर वह भीख माँगने वाला संन्यासी नहीं था। उसे मैंने जब भोजन कराने की इच्छा प्रकट की, तो उसने केवल सत्तू माँगा। उन दिनों चार पैसे पाव सत्तू मिलता था और दो पैसे पाव गुड़। बहुत आग्रह करने पर भी उस साधु ने मिठाई-पूरी खाना स्वीकार नहीं किया। फिर उसे सत्तू ही खिलाया गया। केवल छः पैसे खर्च हुए। साधु से दो चार बातें हुईं। वह मिलन एक भारी आध्यात्मिक-शिक्षा थी। अयाचना में कितना गुण है, यहाँ प्रत्यक्ष हो गया। उस स्वामी ने जगत्पिता से ही भिक्षा माँगी और उसने मेरे मन में भावना पैदा की कि मैं किसी साधु को भोजन कराऊँ। साधारणतः ऐसी भावना की अनुभूति मुझे नहीं होती। जब वह महात्मा चला गया तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि स्वयं भगवान् ही शरीर रख कर मुझे शिक्षा देने आये थे। एक आश्चर्यजनक वह सम्मेलन रहा।

हाल ही में मुझे एक सार्वजनिक कार्य के लिए पैसे की कठिनाई का अनुभव हुआ। बहुत सोचने के बाद भगवान् के भरोसे निश्चय किया कि काम को चलने दिया जाए। कोई न कोई सहायक मिल जाएगा। पुण्य कार्य को एक बार शुरू करके रोकना नहीं चाहिए। इस निश्चय के बाद ही कई औरों से सहायता मिलने लगी। एक पुराने छात्र ने सौ रुपये भेज दिए और उस काम में घाटा पड़ने की एक तिहाई जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली। इसी बीच युक्तप्रान्तीय सरकार की एक विज्ञप्ति से ज्ञात हुआ कि उसने मुझे छः सौ रुपये का पुरस्कार 'मानसिक चिकित्सा' के लिए दिया है। यह बिना माँगे का दान है। इसका मिलना एक बड़ी आकस्मिक घटना थी। अब तो निश्चित हो गया कि इस काम को पूरा करना ही लेखक का धर्म है और बिना माँगे इसके लिए अवश्य सहायता मिलेगी।

जो मनुष्य सतत समाज के उपकार का काम करता रहता है उसे समाज से भीख माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब तक समाज को हमारी सच्चाई में विश्वास नहीं होता, तभी तक हमें कष्ट सहना पड़ता है। अपने सच्चे सेवक को प्रत्येक स्वामी सुखी रखना चाहता है। इसी तरह समाज भी सच्चे सेवक की आवश्यकताओं को अपने आप पूरी करता है। बिना माँगे जो वस्तु प्राप्त होती है, उससे मनुष्य का आत्मविश्वास और अलौकिक शक्ति में विश्वास बढ़ता है। माँग कर प्राप्त करने में इनका विनाश होता है। भगवान् जब बलि के घर माँगने गए तो उन्हें वामन बनना पड़ा।

साधारणतः हमें अपने से किसी भी बड़े अर्थात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य-सम्पन्न या धनवान् व्यक्ति के सम्पर्क में रहना उचित नहीं है। इससे हम में उससे माँगने की मनोवृत्ति उत्पन्न होती है जिससे हमारा आध्यात्मिक पतन होता है। यदि हम किसी बड़े मनुष्य के पास जायँ, तो उसे कुछ भेंट देने की मनोवृत्ति से ही जाना अच्छा है। जब हम किसी के पास कुछ लेने की मनोवृत्ति से जाते हैं, तभी हमें उसकी महत्ता और अपनी लघुता की अनुभूति होती है। जब हम उसे देने की मनोवृत्ति से जाते हैं, तो हम चाहे कितने ही छोटे क्यों न हों, उसकी बराबरी की अनुभूति अपने आप में पाते हैं। अतएव बड़े लोगों के पास कुछ लेने नहीं, वरन् कुछ भेंट करने ही हमें जाना उचित है।

जब कोई लेखक पुस्तक लिख लेता है, तो वह आशा करता है कि कोई प्रभावशाली व्यक्ति उस पुस्तक की भूमिका लिख दे अथवा वह सम्मति दे दे ताकि उस पुस्तक का समाज में सम्मान हो। कभी-कभी किसी महान् पुरुष को पुस्तक इसी दृष्टि से समर्पण भी की जाती है। पर पुस्तक के लिए सम्मान प्राप्त करने की दृष्टि से उसे किसी व्यक्ति को समर्पण करना अथवा उससे भूमिका लिखाना एक भूल है। पहले तो थोड़े ही ऐसे महान् पुरुष होते हैं जो निःस्वार्थ बुद्धि से दूसरों को उठाना चाहते हैं। फिर जितनी दूर तक दूसरों के बल से पुस्तक प्रचलित होती है, उतनी ही दूर तक वह अल्पायु हो जाती है। किसी भी पुस्तक को अपने भरोसे पर छोड़ देना ही उसे दीर्घायु बनाने का सर्वोत्तम उपाय है। जब दूसरों के भरोसे किसी पुस्तक को जीवित नहीं रहना है, तो पहले से ही उसमें पुष्ट विचार अनायास आ जाते हैं, जिसका बल बाहरी परिस्थिति में नहीं है, उसे आत्मा से ही बल मिलता है।

शरीर-रहस्य

(लेखक—जगद् भिखारी)

मानव-शरीर यद्यपि भौतिक है, परन्तु इस कारण से कि उसमें देवता (अखोहे इलाही) बसे हुए हैं, वास्तव में एक ठाकुरद्वारा या ईश्वरीय मूर्ति है, क्योंकि क्या ज्ञानेन्द्रियाँ क्या कर्मेन्द्रियाँ, क्या मन और क्या प्राण, सब दिव्य शक्तियाँ वा प्राण हैं, जो देवता (अखाह) कहलाते हैं और जो हमारे पिछले कर्मों के भोग के लिए इसमें बसे हैं और यद्यपि हर एक देवता अपने बड़े-बड़े लोकों पर अधिकार रखता है, तो भी नीति और न्याय से उतना ही भोग देता है जितना कि हमारे लिए उचित है।

आँख वास्तव में समस्त विविध वर्णात्मक जगत् की सैर करनेवाली है और प्रत्येक रंग के ज्ञान में मालिक और बिचवानी (वसीला) है, तो भी हमें उतना ही दिखाती है, जितना कि हमें चाहिए और कान समस्त शब्द सुन सकता है और शब्द जगत् का बिचवानी (वसीला) है, पर हमको सब नहीं सुनाता, वरन् उतना ही सुनाता है जितना उचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह वाणी समस्त वाक् या वचन पर अधिकार पाए हुए है, पर सब नहीं बोलती, बरन् उतना ही बोलती है, जितना कि उचित है।

जो लोग इन देवताओं (इन्द्रियों वा प्राणों) के महत्त्व और तेज को नहीं जानते और भौतिक शरीर में देहाध्यास रखते हैं, वे उनको भोग के साधन जानते हुए, स्वेच्छानुसार उनके साथ बर्ताव करते हैं, और क्या अच्छा क्या बुरा जो प्राप्त होता है, उसी में पूर्ण सुख देखते उनका बर्ताव करते हैं। यद्यपि वे (इन्द्रियाँ वा प्राण) बुरे कामों से घृणा करते और दुःखी होते हैं, तो भी न्याय से विवश हुए वे इन्कार नहीं करते, वरन् ऐसे बर्ताव करते हैं जैसा कि एक नौकर बर्ताव करता है; बल्कि नौकर इच्छानुसार नहीं चलता, यह तो इच्छा की दासता भी करते हैं।

जब वह अनजान इन इन्द्रियों को बुरे कामों में लगाकर भोग पाता है, तो ये उसे भोग तो स्वभावानुसार देती हैं, परन्तु उसके लिए एक पाप उत्पन्न करती हैं, जिससे वह दुरात्मा हो जाता है और जब वह इनको अच्छे कामों में लगाकर भोग पाता है, तो वे उसे भोग भी देती हैं और साथ ही पुण्य भी पैदा करती हैं, जिससे वह पुण्यात्मा वा भाग्यवान् हो जाता है।

पर जो इनकी असलियत और महत्त्व को जानते हैं और इनकी महिमा तथा शक्तियों से परिचित हैं, वह इनको बुरे कामों में नहीं लगाते, वरन् अच्छे कामों में बर्ताव करते हुए भी उनको महान् और पूज्य समझते हैं। इसलिए वे इन्हीं के द्वारा मुक्ति का मार्ग भी पाते हैं।

ये बातें कि किस तरह ये सब उपास्य किये जाते हैं और किस तरह इनकी उपासना होती है, कर्मकांड में सूक्ष्म बातें हैं। प्रत्येक भाषाविद् इन्हें नहीं समझ सकता, तो भी हम संक्षेप से संकेत करते हैं और उस बड़ी उपासना पर संकेत करते हैं जिसमें सब भीतर के परिणाम समा जाते हैं।

वाणी या आँख या कान को जो पूज्य मान कर पुण्य कर्म करते हैं, संक्षिप्त और विशिष्ट फल पाते हैं, परन्तु वे जो प्राण की उपासना करते हैं, समस्त कर्मों के फल पा जाते हैं और देवयान सड़क पर चलते, ब्रह्मलोक में प्रविष्ट होते और प्रजापति से मेल पा जाते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि यह किस प्रकार हो सकता है कि एक प्राण की उपासना से सब देवताओं की उपासना का फल प्राप्त हो जाता है? तो उसे हम एक वैदिक आख्यान (कहानी) से दिग्दर्शन कराते हैं, क्योंकि विद्या के बल पर यदि जतलावें, तो भाषा जाननेवालों को वह सुगमतापूर्वक हृदयंगम न हो सकेगा, बल्कि उचित भी यही है कि जहाँ तक समझाने में सहल हो वहाँ तक गूढ़ या कठिन शैली से न समझाया जाय।

हम सुनते हैं कि देवलोक में एक बार इन इन्द्रियों में झगड़ा हुआ। वाणी ने कहा, मैं बड़ी हूँ। आँख ने कहा, मैं बड़ी हूँ। कान ने कहा यह सब मेरी बड़ाई है। मन ने कहा यह सब मेरी महिमा है। वीर्य ने कहा, क्यों बक-बक करते हो। मैं बड़ा हूँ, जो सबको जनता हूँ। प्राण ने कहा तुम सब डींग मारते हो, बैल भी अपने चरने पर डकारता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करो तो मैं सबसे पलौठा (प्रथम) और अनोखा हूँ।

ये देवता इस तरह झगड़ते-झगड़ते प्रजापति के निकट गये, ताकि वह उनका न्याय करे। प्रजापति ने कहा कि तुम में से एक-एक होकर इस पिंड से निकल जाओ। जिसके निकलने से सब निकल जायँ और यह पिण्ड खराब होजाए, वही तुम में से पलौठा (प्रथम) और ठाकुर है।

पहले वाणी निकल गई और साल तक बाहर रही। जब वापिस आई तो आकर पूछा मेरे बिना तुम कैसे जीते रहे ? तब उन्होंने कहा कि जैसे गूँगा नहीं बोलता, परन्तु नथनों से साँस लेता है, आँखों से देखता है, कानों से सुनता है, मन से समझता है, वीर्य से जनता है; उसी तरह हम जीते रहे। तब वाणी ने कहा, हाँ ठीक है और (उस पिण्ड में) प्रविष्ट होगई।

फिर आँख निकल गई और साल तक बाहर रही। जब वापिस आई तो पूछा कि मेरे बिना तुम कैसे जीते रहे ? तब उन्होंने कहा कि जैसे अन्धा आँखों से नहीं देखता, लेकिन नथनों से साँस लेता है, वाणी से बोलता है, कानों से सुनता है, मन से समझता है और वीर्य से जनता है; उसी तरह हम जीते रहे। तब आँख ने कहा ठीक है और प्रविष्ट होगई।

फिर कान निकल गया और साल तक बाहर रहा। जब वापिस आया तो पूछा कि मेरे बिना तुम कैसे जीते रहे ? उन्होंने कहा कि जैसे बहरा (बोला पुरुष) नहीं सुनता, लेकिन नथनों से साँस लेता है, वाणी से बातचीत करता है, आँखों से देखता है, मन से समझता है और वीर्य से जनता है, उसी तरह हम जीते रहे। तब कान ने कहा ठीक है और देह में प्रविष्ट होगया।

फिर मन निकल गया और साल तक बाहर रहा। जब वापिस आया तो पूछा कि मेरे बिना तुम कैसे जीते रहे ? तब उन्होंने कहा जैसे मतवाला मन से नहीं समझता, परन्तु नथनों से साँस लेता है, वाणी से बातचीत करता, आँखों से देखता, कानों से सुनता और वीर्य से जनता है; उसी तरह हम जीते रहे। तब मन ने कहा ठीक है और (तन में) प्रविष्ट होगया।

फिर वीर्य निकल गया और साल तक बाहर रहा। जब वापस आया तो पूछा कि मेरे बिना तुम कैसे जीते रहे ? तब उन्होंने कहा, जैसे नपुंसक नहीं जनता, परन्तु नथनों से साँस लेता, वाणी से बातचीत करता, आँखों से देखता, कानों से सुनता और मन से समझता है; उसी तरह हम जीते रहे। तब वीर्य ने कहा ठीक है और (शरीर में) प्रविष्ट होगया।

अब प्राण ने भी परीक्षार्थ निकलना चाहा, तो जिस तरह बड़ा बलशाली अश्व उछलता है, तब अगाड़ी-पिछाड़ी की सब मेखें उखड़ जाती हैं, ऐसे सब इन्द्रिय-देवता के साथ उखड़ गए। उन्होंने कहा, भगवन् ! ठहरो, मत निकलो। मालूम होगया तुम्हारे बिना हम नहीं जी सकते। तुम हम में बड़े हो। तुम ही हमारी आत्मा हो और तुम ही हमारे पूज्य हो। हमको चाहिये कि तुम्हारी उपासना करें और तुम्हारे में स्थित हों। हम तभी फल पाते हैं, जब तुम में स्थिर होते हैं; जैसे शाखें जब अंकुर में स्थित होती हैं, तो फल लाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब से वाणी ने निश्चय किया कि मैं प्राण की सन्तान प्राण रूप हूँ। इसी तरह चक्षु ने निश्चय किया कि मैं प्राण की सन्तान प्राण रूप हूँ और इसी तरह कान, मन और वीर्य ने विश्वास किया कि हम सब उसी के रूप हैं।

इस प्रकार की कहानियों से सुगमता-पूर्वक समझा जाता है कि क्या कर्मेन्द्रिय, क्या ज्ञानेन्द्रिय, क्या मन, सब प्राण की सन्तान-रूप हैं और यही निश्चय प्राण-देवता की उपासना है। अतः वह जो इस पर आचरण करता है और इसी पर विश्वास लाता है, वही शास्त्रीय-कर्म का अधिकारी होता है। जब तक कि वह इस प्रकार के निश्चय को नहीं पाता, प्राण से नहीं जना जाता, बल्कि शरीर से जना जाता है। वह जो शरीर से जना जाता है, शरीर ही है और जो प्राण से जना जाता है, प्राण ही है।

शास्त्रीय कर्म जो वास्तव में कर्मकाण्ड है, उसी के लिए है, जो प्राणात्मा से जना जाता है, उनके लिए नहीं जो शरीर से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि प्राणात्मा तो अनादि, अनन्त, नित्य है। शरीर नश्वर आदि अन्तवान् है और शास्त्र का फल मृत्यु के बाद परलोक में है, शरीर यहाँ मिट्टी हो जाता है। अतः वह जो देह और देहाध्यासी है, उसके लिए शास्त्र व्यर्थ है, बल्कि कष्टकर है, किन्तु वह जो प्राण या प्राणात्मा है, उसके लिए अमृत और आनन्द है।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ

(लेखक—श्री चन्द्रकान्त)

पूर्वजन्मकृतं कर्म प्रारब्ध मिति चोच्यते।
पुरुषार्थः परोलोके मोक्षदायी स्मृतः सदा॥
प्रारब्धं भुज्यमानोऽपि तत्रासक्तो विवेकवित्।
यतेत सच्चिदानन्दचरणाम्भोजलब्धये॥

अर्थ—पूर्व जन्म में किये हुए जो कर्म हैं उन्हीं को प्रारब्ध कहते हैं और उत्तम पुरुषार्थ इस जन्म में मोक्षकारक है। आत्मा और अनात्मा का विवेक जाननेवाले पुरुष को प्रारब्ध का उपभोग करते समय भी उसमें नहीं बँधना चाहिये, किन्तु सच्चिदानन्द के चरण कमलों के लाभ के लिए प्रयत्न करना चाहिये।

शिष्य—हे महात्मन्! संसार के जो विषय प्राणी मात्र को जो लाभ-अलाभ, जय-पराजय, सुख-दुःख, संसारबन्धन और जो मुक्ति इत्यादि प्राप्त होते हैं, सो क्या उनके प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होते हैं, अर्थात् जगत् में प्रारब्ध मुख्य है वा पुरुषार्थ?

गुरु—हे मुमुक्षु! श्रीकृष्ण परमात्मा ने गीता में एक स्थल पर प्रारब्ध को मुख्य कहा है और मनुष्य को लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुःख इत्यादि प्रारब्ध के अनुसार ही मिलते हैं। फिर भगवान् ने ही आगे चलकर ऐसा कहा है कि—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥"

अर्थ—हे अर्जुन! समस्त प्राणियों के हृद्प्रदेश में ईश्वर अन्तर्यामी रहता है; वह जन्म-मरण रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्त्र पर चढ़े हुए सर्व जीवों को अपनी माया शक्ति द्वारा भ्रमण कराता है, अर्थात् मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। सब कुछ जो होता है, वह ईश्वर की प्रेरणा से ही होता है। महात्मा वसिष्ठ ऋषि ने भी पुरुषार्थ को मुख्य कहा है। तब यह विचार होता है कि क्या परमात्मा श्रीकृष्ण के वचन परस्पर विरोध दर्शानेवाले होने के कारण अमान्य अथवा प्रमाद शून्य हैं? नहीं, सर्व अवतार के कारण, सर्वकला सम्पन्न, सर्वज्ञाता, वेद जिसे नेति-नेति करके पुकारते हैं और उपनिषद् जिसको ढूँढ़ते हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान् के वचनों को अप्रमाण किसी प्रकार भी नहीं कह सकते। भगवान् के कथन का भावार्थ बहुत ही गूढ़ है और यह दोनों वाक्य सप्रमाण एवं माननीय हैं। प्रारब्ध तो केवल सूक्ष्म शरीर को ही बाँधता है, न कि आत्मा को; क्योंकि आत्मा जड़देह से भिन्न है इसलिए जड़देह से लिपटे हुए प्रारब्धकर्म आत्मा को लगे हुए नहीं हैं। इस प्रकार इस जगह ही प्रारब्ध मुख्य सिद्ध होता है। अब पुरुषार्थ क्या पदार्थ है, सो कहते हैं—लाभ-अलाभ, जय-पराजय, सुख-दुःख, यह प्रारब्ध के अनुसार ही जड़देह को होते हैं, किन्तु मुझे (आत्मा को) नहीं; क्योंकि मैं उससे विरक्त एवं असंग आत्मा हूँ। इस भाँति इस जड़देह से मैं (आत्मा) भिन्न हूँ। ऐसा समझना यह पुरुषार्थ हुआ और आत्मा इस देह के भीतर रहे तब तक, उस सम्बन्ध के कारण से जड़देह के प्रारब्धों का भोक्ता अपने को समझता है, यह अविद्या है; किन्तु जब आत्माओं का "मैं आत्मा हूँ, जड़ नहीं" ऐसा ज्ञान होने रूप पुरुषार्थ होजाए तब तो—

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।"

इस वचन के अनुसार ज्ञानाग्नि से सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं, सर्व कर्म जल जाते हैं, नष्ट होजाते हैं और 'सर्वकर्माणि' इसमें प्रारब्ध का भी समावेश हो जाता है। अतः वे प्रारब्ध (कर्म) भी सब भस्मीभूत होगए, तो आत्मा निष्पाप होगया। यहाँ पुरुषार्थ मुख्य है।

विचार करके देखा जाय, तो प्रारब्ध यह शरीर के होने से शरीर के आधार पर है; ऐसे ही पुरुषार्थ भी शरीर के आधार से है; क्योंकि यदि शरीर न होगा तो "यह प्रारब्ध शरीर के हैं मेरे नहीं, मैं तो असंग आत्मा होने से शरीर रूप नहीं; किन्तु इससे भिन्न हूँ।" ऐसा मानने, ज्ञान होने रूप जो जो पुरुषार्थ है, वह कौन करता, और किस लिए करता? पंच तत्त्वों से बना हुआ शरीर पृथ्वी के आधार से है। पृथ्वी जल के आधार पर है, जल तेज के आधार से है, तेज वायु के आधार से है, वायु आकाश के आधार पर है, आकाश गुण के आधार से है; गुण प्रकृति—माया—ब्रह्म के आधार से है। यह माया ब्रह्म में केवल शश-शृंगवत् (शश खरगोश के सींग जैसा) है। ऐसा कहना हो, तो केवल कल्पना से ही कह सकते हैं; क्योंकि उसके सींग होते ही नहीं, तो फिर प्रारब्ध और पुरुषार्थ कहाँ रहे? दोनों में से एक भी मूल में नहीं है, तो फिर मुख्य, गौण की बात ही कहाँ रही? प्रारब्ध और पुरुषार्थ इन दोनों में से किसी का आत्मा के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मात्र आधार भाव से देखा जाए तो ईश्वरेच्छा ही मुख्य है। यह शरीर प्रपंच परिपूर्ण है, इसमें प्रारब्ध की स्थिति ही नहीं है। ज्ञाता लोग जिसको प्रारब्ध कहते हैं, वह अज्ञानियों के बोध के अर्थ है और कुछ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व में ब्रह्म का दर्शन (साक्षात्कार)

(महर्षि अरविन्दु घोष की अनुभूति)

(पृष्ठ २४ का शेषांश)

"साक्षात्कार का सहज मार्ग—कर्म समर्पण"

भगवान् को सब वस्तुओं और प्राणियों में (सर्व भूतेषु) देखना ही पर्याप्त (काफी) नहीं। उनको सब घटनाओं, कार्यों, विचारों, भावों में, अपने आप में और दूसरों में और सर्व संसार में देखना आवश्यक है। इस अनुभव के लिए दो बातें आवश्यक हैं—

(१) प्रथम यह कि तुम अपने कर्मों का फल भगवान् के अर्पण करदो।

(२) दूसरी यह कि कर्मों को भी भगवान् के अर्पण करदो।

कर्म-फल त्याग का अर्थ यह नहीं कि तुम फल के सम्बन्ध में वैराग्य धारण करलो, या कर्म में और उसके फल में अरुचि उत्पन्न करके उसे छोड़ बैठो, या किसी उद्देश्य को सामने रखे बिना ही काम करने लग जाओ। इसका अर्थ है कि तुम्हें कर्म अवश्य करना है। इसलिए नहीं कि तुम्हारी यह इच्छा है कि अमुक फल के लिए यह करना है। अथवा तुम यह चाहते हो कि अमुक बात अवश्य होनी चाहिये, और उसकी पूर्णता के लिए तुम्हारा कर्म और पुरुषार्थ आवश्यक है, बल्कि इसलिए कि यह तुम्हारा कर्तव्य है। तुम्हारे जीवन के प्रभु इसे चाहते हैं और इसका फल भगवान् चाहे कुछ भी क्यों न दें, यह तो अवश्य करना ही होगा। अपनी इच्छा को एक ओर (भिन्न) रखदो और यह जानने की इच्छा करो कि भगवान् तुम से क्या चाहते हैं। जिस बात को तुम्हारा मन, तुम्हारे भाव या तुम्हारी स्वाभाविक राय ठीक और अवश्य बताये उस पर विश्वास न करो। उनको छोड़कर आगे निकल जाओ और भगवद्गीता में अर्जुन की भाँति उस बात को जानने की जिज्ञासा करो जिसे भगवान् ने उचित और आवश्यक नियत किया है। यह दृढ़ विश्वास रखो कि यदि तुम अपना कर्त्तव्य कर्म पूर्ण रूप से ठीक करोगे, तो उसका फल निश्चय ही वही होगा, जो उचित और आवश्यक है। चाहे वह फल तुम्हारी इच्छा और आशा के विरुद्ध ही क्यों न हो। जो शक्ति इस संसार पर शासन करती है वह इतनी बुद्धिमान् तो है ही जितने तुम हो और यह कोई जरूरी नहीं कि सृष्टि का प्रबन्ध तुम्हारी सम्मति लेकर या तुम से पूछ कर किया जाय। भगवान् स्वयं अपनी सृष्टि की सुध ले रहे हैं।

साक्षात्कार की सीढ़ी

कर्म समर्पण करने की सबसे उत्तम विधि इस बात का अनुभव करना है कि 'प्रकृति' ही हमारे सब कामों को भगवान् की आज्ञानुसार कर रही है और भगवान् हमारे स्वभाव द्वारा हमारे प्रत्येक काम का निर्णय करते हैं। ऐसा दृढ़ निश्चय और अनुभव होते ही प्रत्येक कार्य भगवान् का हो जाता है। फिर न तुम्हारा कोई कर्म है और न कोई भार या जिम्मेवारी है। निश्चय ही फिर तुम्हारे लिए कर्म का कोई बंधन नहीं रहता, क्योंकि भगवान् किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं रखते, वह हर प्रकार से स्वतंत्र और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी हैं। उस अवस्था में हमारे कर्म किसी शास्त्र के अनुसार चलने वाले मनुष्य की भाँति स्वभाव द्वारा नियत किये हुए ही नहीं होते, बल्कि हमारे स्वभाव को भी स्वयं भगवान् एक यंत्र या मशीन की भाँति अपने हाथ और अधिकार में रखते हैं। हमारे लिए जो अविद्या के संस्कारों से भरे हुए हैं, ज्ञान और अनुभव की इस उच्च अवस्था पर पहुँचना सहज नहीं, परन्तु तीन दर्जे हैं जिन पर आरूढ़ होकर हम शीघ्रता से इस उच्च अनुभव के शिखर तक जा सकते हैं—

(१) पहला दर्जा यह है कि इस श्लोक की भावना में जीवन व्यतीत किया जाय—

"त्वया हृषिकेश हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।"

अर्थात्—ऐ हृषिकेश, आप मेरे हृदय में निवास करते हुए जिस कार्य में मुझे जिस प्रकार लगाते हैं, मैं उसी कार्य को उसी प्रकार ही करता हूँ।

जब यह भाव तुम्हारे दैनिक जीवन में प्रवेश कर जायगा, तो दूसरे दर्जे पर आरूढ़ हो जाना सहज हो जायगा।

(२) दूसरे दर्जे में भगवद्गीता के निम्न-लिखित ज्ञान के अनुसार जीवन बनाना है—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व भूतानि यंत्रारुढानि मायया॥
१८।६१।

अर्थात्—भगवान् सब भूतों के हृदय में स्थित होकर अपनी त्रिगुणी माया द्वारा सबको यंत्र या चक्कर पर आरूढ़ हुए की भाँति घुमा रहे हैं।

अब तुम अपने अंदर तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) के कार्य को और अपने शरीर रूपी यंत्र या मशीन को कर्म करते देखते हुए यह नहीं कहोगे कि "तथा करोमि" अर्थात् मैं करता हूँ, बल्कि यह कहोगे कि "गुणा वर्तन्ते एव" माया के गुण ही कार्य कर रहे हैं। मैं तो केवल साक्षी हूँ।

परन्तु इन साधनों में गुणों के कार्य का ज्ञान प्राप्त करने से पहले एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि हमें अपने स्वभाव की अशुद्धि प्रतीत होने लगती है और पाप और पुण्य के विचार पुनः-पुनः प्रकट होते हैं। इस कठिनाई से सुरक्षित होने के लिए सदैव स्मरण रखो कि जब तुमने अपने आप को पूर्ण रूप से भगवान् के हवाले (अर्पण) कर दिया है, वह स्वयं ही तुम्हारी सब अशुद्धियों को दूर कर देंगे। तुम्हारा कर्तव्य तो सावधान होकर उनकी शरण में पड़े रहना और उनको और अपने संकल्प को स्मरण रखना है। तुम पाप और पुण्य में आसक्त नहीं हो सकते, क्योंकि भगवान् ने गीता में बार-बार यह अभय वचन दिया है—

"प्रतिजाने न मे भक्तो प्रणश्यति॥"

अर्थात्—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे भक्त का नाश नहीं हो सकता।

(३) दूसरे दर्जे के निरन्तर अभ्यास द्वारा ही परमात्मा का पूर्ण साक्षात्कार होकर हम तीसरे दर्जे में प्रवेश कर जाते हैं। यदि यह साक्षात्कार न भी हो, तो भी भगवान् हमारे चिरकाल तक किये गये इस परम उच्च अभ्यास की सफलता से प्रसन्न होकर अपनी विशेष कृपा द्वारा स्वयं ही हमें तीसरे दर्जे पर आरूढ़ करा देते हैं। इस अवस्था में "पुरुष"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों गुणों से भिन्न और परे होकर त्रिगुणातीत हो जायगा और "द्वैवी प्रकृति" की भाँति तीनों गुणों का प्रयोग करता हुआ भी उनके बंधन से मुक्त रहेगा।

अब तीनों गुणों का रूप बदल जायगा। सत्त्व का रूपान्तर होकर एक शुद्ध प्रकाश और ज्योति प्रकट होगी और हमारी प्रकृति एक शुद्ध, मुक्त और अनन्त स्वयं प्रकाश में निवास करेगी।

तमस् भी अपने वर्त्तमान रूप को खोकर शुद्ध, शम और शान्ति में बदल जायगा और हमारी प्रकृति एक अनन्त और उच्च विश्राम और शान्ति के आधार पर दृढ़ता से स्थिर होगी।

रजस् परिवर्तित होकर शुद्ध तपस् बन जायगा और हमारी प्रकृति एक शान्त और स्वर्गीय प्रकाश का सहारा लेकर दैवी शक्ति के मुक्त और अनन्त सागर की ही एक तरंग बन जायगी।

उस अवस्था में जो कर्म तुम करोगे वह पूर्णतया भगवत् इच्छा के अनुसार होंगे और उनके अणु-अणु में परमात्मा के पूर्ण ज्ञान का प्रकाश प्रकट होगा। यही वह अनन्त धाम और भूमापद है जहाँ तीनों बद्ध और सीमित गुणों "सत्त्व, रजस् और तमस्" का संघर्ष समाप्त होकर मुक्त प्रकाश, तपस् और शम् (शांति) का महान् मिलाप प्रकट होता है। यही पूर्ण मुक्त अवस्था है।

इस अवस्था पर पहुँचने से बहुत पहले ही तुम देखोगे कि कोई महान् शक्ति, जो तुम्हारे शरीर से बाहर रहती है, इसमें प्रवेश करके तुम्हारे लिए विचार, सहानुभूति और कार्य करने में लगी हुई है और तुम्हारा शरीर, मन और हृदय तुम्हारे अपने बल से नहीं, बल्कि उस शक्ति द्वारा चलते हैं। तुम उस शक्ति के विचार, भाव और कार्य को साक्षी रूप होकर देखते हुए बहुत आनन्दित होगे, परन्तु उस में भी आसक्त नहीं हो सकोगे और नहीं वह शक्ति तुम्हें बद्ध करेगी। तुम्हारे कर्म स्वतः स्वाभाविक ही हुआ करेंगे और तुम्हारे अन्तःकरण पर उनका कोई संस्कार या चिह्न नहीं रहेगा। जिस प्रकार सागर में तरंगें उठती और नाश होती रहती हैं और कमल के पत्ते से पानी झड़ जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे कर्म भी लय होते रहेंगे—"कर्माणि प्रविलीयन्ते"

तुम्हारा मन, हृदय और शरीर तुम्हारे रहेंगे ही नहीं, बल्कि सचमुच भगवान् के हो जायेंगे और तुम स्वयं केवल सत्, चित् आनन्द का एक केन्द्र बन कर भगवान् के हाथ में एक शुद्ध, पवित्र यन्त्र बन जाओगे। इसी अवस्था में ही मनुष्य पूर्णतया "तच्चित्त" होकर भगवान् का रूप हो जाता है। ऐसे मनुष्य के संबंध में ही गीता में कहा गया है—

"यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।"

अर्थात्—जिसमें अहंकार का नाश हो गया है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती।

यही "कर्म—समर्पण" है जिसको भगवान् ने गीता में बहुत आवश्यक बताया है—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्म चेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥
३।३० ॥

अर्थात्—सब कर्मों को मेरे अर्पण करके अध्यात्म योग में पूरा चित्त लगाकर, वासना और ममता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्त होकर आत्म-ताप से रहित होकर, (संसार रूपी रणक्षेत्र में) युद्ध करो अथवा कर्तव्य कर्म करो।

यह "अध्यात्म योग" या "पूर्ण योग" ब्रह्म-प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। और मार्ग भी हैं, परन्तु इस मार्ग में यह विशेषता है कि इसका साधन तुम स्वयं नहीं करते, बल्कि भगवान् की अनन्त शक्ति तुम्हारे लिए करती है। जो चुप चाप अपना कार्य करती है, कभी ठहरती हुई प्रतीत होती है, कभी बहुत ज़ोर से अपना बल प्रकट करती है। यह मार्ग एक विशाल महासागर है, जिसमें तुम स्वतंत्रता से समस्त संसार में विचरते हुए "अनन्त ब्रह्म" की मोक्ष में प्रविष्ट होते हो।

तुम्हें केवल पाँच वस्तुओं की आवश्यकता है—

(१) जहाज़, (२) वश में रखनेवाला पहिया (Steering wheel),

(३) कुतुबनुमा या मार्ग दिखानेवाली सूई (Compass),

(४) जहाज़ को चलानेवाली शक्ति (Motive power),

(५) एक योग्य कप्तान (Captain).

यह पाँचों तुम्हारे पास हैं—

(१) "ब्रह्म विद्या" तुम्हारा जहाज है।

(२) "श्रद्धा" जहाज का पहिया या चक्र है।

(३) "आत्म-समर्पण" तुम्हें मार्ग दिखाने वाला कम्पास है।

(४) चलाने वाली (motive power) वह "शक्ति" है जो भगवान् की आज्ञा से इन लोकों को रचती, चलाती और नाश करती है। और

(५) भगवान् स्वयं तुम्हारे कप्तान (Captain) हैं।

परन्तु भगवान् का हर कार्य को करने का ढंग विचित्र है और इसके लिए समय भी वह स्वयं नियत करते हैं। उनके कार्य को देखो और उनके समय की प्रतीक्षा करो।

शास्त्र पर श्रद्धा रखो और गुरु की आज्ञा का पालन करो

यूरोप (EUROPE) के लोगों की भाँति अपनी बुद्धि को पूर्ण रूप से शुद्ध होने से पहले ही, अपने मनमाने सिद्धान्त बनाने और तर्क द्वारा वाद-विवाद करने की स्वतंत्रता न दो। जब तुम अपने आपको और परमात्मा को जानकर अनुभवी हो जाओगे, तो वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं रहेगी।

हमारा लक्ष्य सिद्धान्तों पर विचार करना और पठन-पाठन करना नहीं, बल्कि उनको अनुभव करना है। हमारे लिए हुक्म यह है कि—"उन्नत होकर भगवान् का रूप हो जाओ, भगवान् में निवास करो, भगवान् के संग सहवास करो, उनके आनन्द और शक्ति की धारा बन कर उनके कार्य का यन्त्र बन जाओ।" अशुभ का सर्वथा त्याग करके, परम शुद्ध और पवित्र होकर, भगवान् के स्पर्श द्वारा जीवात्मा को रूपान्तरित करके हमने ईश्वरी शक्ति रूपी बिजली के डाएनिमो (Dynamo) बन कर संसार में कार्य करना है, और इस बिजली के प्रकाश को थरथराती हुई बलवती लहरों में सर्व मनुष्य जाति में फैलाना है। फिर जहाँ हम में से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भी खड़ा होगा, उसके चारों ओर खड़े होने वाले सैकड़ों व्यक्ति परमात्मा की ज्योति और शक्ति से भर जायेंगे और ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करके परम आनन्द रूपी अमृत का पान करेंगे। ॐ तत्सत्॥

आश्रम-समाचार

जो रामभक्त द्वादशाक्षर मन्त्र का जप कर रहे हैं, उनको सूचित हो कि हवन करना कोई आवश्यक नहीं है, परन्तु शेष नियम आवश्यक हैं।

सवा लक्ष से अल्प संख्या में जप गिनती में नहीं लिखा जायेगा। जिन सज्जनों ने अनुष्ठान का संकल्प किया है, वे पत्र द्वारा आश्रम को सूचित कर देवें। २४ फरवरी सन् १६५२ तक यह अनुष्ठान चलेगा।

सेक्रेटरी—श्री रामतीर्थ मिशन आश्रम,
राजपुर, (देहरादून)।

INDEPENDENCE DAY

1. Blessed the day,
We meet here to Saunter,
To rejoice and to be merry
What we feel for our 'RASHTER'.

2. Today is August, the 15th,
The 'Independence day'.
Our world known 'BAPU'
SHOWED US THE WAY.

3. Undoubted, we feel grateful
And pray for the departed soul
He being superhuman
Would guide us, when we grope.

'B' NATIONAL FLAG

1. Hoist, Hoist ! National flag
Rejoice, Rejoice ! Fredom TAG.
'Box' symbol of Pakistan
We are sure to make it rag.

2. Dares much on Anglo American Block,
Passes threats and frightens the mass.
'Tis all in vain ! But keep in brain
Haughty before destruction, and pride
goes before a fall.

—*M. R. Burmi.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A Message for Ram Sandesh

My own struggle for enlightenment is just beginning and progress is so slow. For one flashing moment of light, of intuitive understanding. There are days and days of darkness and slow plodding, my only advantage is that sometimes, I have a dependable intuition and I am very often guided by dreams. Whenever difficulties arises and my mind prickles I pray for Swamiji's guidance & blessings. Believe me the next morning I get Swamiji's letter in which there are blessings & a reply to my struggles. As a matter of fact the receipt of the letter marks a complete change in my life. Words which before had seemed to me vague and speculative become a clear ringing message. The world today seems a lighter place to live in. Once when I was exalted about friends and relations. Swamiji wrote, "There is but one Friend, and relation, He is in our heart." A shower of refreshing wisdom on a heated brain and the truth of which I have since so after experienced. One friend and relation only, in our heart. On another occasion when I wrote the reply was, "Don't worry. Remember always God is great." The words fell and their impression is everlasting and vivid and their magic influence is direct and effective in difficult moments. Common advices every body could say them. But why is that we feel and live according to the advices of certain persons, and only hear and forget the same advices from others. The reply to this what I can give is evidently in differences of quality of the advisors. Swamiji gave me his last darshans in December 1950 which gave me the finest days of my life. I shall never forget his words with which he blessed at the time of departure. I remember how I mentally clung to his image. His examples his teachings when huge and sombre-waves of pain carried me into merciful unconsciousness. How my faith in him were able to make my mind clear and calm. Even on the highest sufferings his influence put a prayer on my lips due to which I so peacefully get over my sufferings. Swamiji's words ring in my ears, God is great, He will bless you.

—*Padma Diwan.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AN ADDRESS TO DIETY

1. I'ill Pray to God; my boys,
Who is so kind to me
And discharge my duties honestly
For what He buildeth me.

2. He giveth milk when I am young;
When older teeth to grind
Why shouldn't He be sung, my boys,
Who giveth so much of the kind?

3. Little are our worldly pleasures,
But vast in that Heaven
That, that can only measure
Who Serveth the rule of Heaven.

4. None can escape death
This every body knows
Why shouldn't words be shed
To form a circular row.

5. Every man upon this earth
Has his part to play
Actors we are, boys!
Theatre Heritage.

6. Who'ill chant a charol song
And dance about well
He will be a happy man
For every body tells.

—*M. R. Burmi.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Message of Love

(By J. L. K. Jalali, M. A.)

What Is Love ? I remember to have read during my College days Shelley's Essay on Love. It started not with a definition of Love but explaining in a way which ordinarily would be called evasion. He said "Ask of him who adores what is God ! Ask of him who lives what is life !" And later and even today I think that is and was the way of providing an answer to the question. What is love ? If I attempted an answer it would be in the same terms as Shelley attempted : and I would instead say "Ask of him who loves what is love ?" "Ask of him who is loved what is to be loved." And if the answers of the two were to be recorded, the reading thereof would seem to complete the picture apparently. But when one dives deeper the immeasurable depths unfold a tale unknown to the upper layers or surface. After all what is love ? And the life of Swami Tirtha should furnish the answer.

Udhava was sent by Lord Krishna to Vrindavan to bring back a message of Gopis' welfare as also to depurate him of his false notion of Love (Bhakti) and the sweet melody of the milkmaids of their disportings with their Beloved still rings through centuries recalling the self-effacement of the Lover in the Beloved on a plane too ethereal to be understood least realised by the mortal dross of earthliness. "How can he remember us when he has the sweet Palace girls to compare to the forest dwellers : yes, Udhava, this is the stone slab, this is the river bank, where we disported together and passed days" unmindful of Time itself or the home that physically bound them. Is it Love ? Youth and Beauty conspire to taste the fruits of pleasure and that the human wight calls love. Love never fades, never palls, never tires. It presupposes a conscious equality and unconcious surrender is the sequel : the sense of superiority is washed off; the feeling of bewitchment is numbed; it is all one emotion : and when that endures it is the interminable Love wherein the duality of the Lover and the Beloved is lost for ever and a day. One has not to go in quest of it. The self-offering at the altar of LOVE is the totality wherein is compassed the conscious effort of I—envelopment and the unconscious response of I-forgetfulness. This is the highest Truth, the highest emblem of Oneness displaying itself in Multiplicity and vice versa.

While I was young, I heard much of Swami Ram Tirtha, the Professor who forgot to take the glass of milk pilfered by the boy : the Sadhu whose body offered itself to the deep immensity stretching before the eye. I had no occasion thereafter to know of the saintly soul : I came across the Mahatma's "In the woods of God-realisation" and the whole scene of youthful days was revived but

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

only for a time. And now when I have the inviting pages of "Ram Sandesh" before me I really feel that the teachings of the great Yogi of modern age are the transliteration of the Great Teachings of our Great seers written in the script of Love with stylo dipped in the unfading ink of self-purification and constant devotion. And in this age of Kali, devotion coupled with **kirtan** is the only sovereign remedy to combat the ills and evils of life especially when the ravages of eternal war between the forces of good and not-good have made indelible indentations on the ramparts of the fortification guarding the Antaratman in mortal man on earth.

Who has seen God? Who knows God? If for the common man it is difficult to see even the outer courtyard of a King's palace, how should every dabbler in the "search for Truth" think he has qualified himself for a view of the sanctum where the Idol of the Palace lives? Says the Gita—

"Manushyanam Sahasreshu Kaschid yatate sidhaye

मनुष्यानां सहस्रेषु कश्चिद् यतते सिद्धये

Yatatamapi sidhanam kaschinmam veti tattvatah"

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः

On the authority of this saying of the Lord it is not every one but some one out of the strivers-successful that knows Him. And if Swami Rama was one of those, his teachings are a treasure which make the path of God-realisation not only easy but clear it of all the brambles and nettles of itching thorns that are otherwise responsible for many a fall and a pitfall. In the trance of Love, Rama danced to the tune of the immortal lute, the one unending Nada of symphonious harmonisation, and there came out of the mortal coil a flash of dazzling light that is to form the "pillar of light by night and of smoke by day" to guide the erring Israelites out of the tortuous mazes of Ahankara (अहंकार) and Attachment (आसक्ति) and complete Blindness (अंधकार).

I repeat, what is Love? Ask of him who loves what is love, of him who is loved what is to be loved. And when the two coalesce in the abstract of LOVE, and the differences of subjectivity and objectivity disappear, the answer is furnished and the aspirant, the seeker, the devotee alone can and does know and realise the Truth and questions not, nor even hungers for an answer. I am Love and all-Love: I live in Love and that is the Message, I give. KALOHAM!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اترام جھائے پودوں کو تازہ کیا۔ گلوں کو ہنسایا۔ بلبل کو رلایا۔ دروازوں کو کھڑکھڑایا۔ سوتوں کو جگایا کسی کا آنسو پونچھا۔ کسی کا گھونگٹ اڑایا۔ اس کو چھیڑ اس کو چھیڑ۔ تجھ کو چھیڑا وہ گیا وہ گیا نہ کچھ ساتھ رکھا نہ کسی ہاتھ آیا۔

مضمون ختم ہوا اور رام اپنی پیاری ماں پیاری گنگی کی گود میں جھولا جھولنے کے لئے کٹیا سے نکل کر دریا کے کنارے آ گئے۔ کچھ ورزش کی اور کچھ یوگ سادھن سے محفوظ ہوئے تیراکی میں ید طولیٰ رکھنے والے رام گنگا کے گھوارے کے ہر نشیب و فراز سے اچھی طرح سے واقف تھے۔ یہاں تک کہ گنگا کی اس جگہ کی رہنے والی مچھلیاں بھی اُن کو پہچانتی تھیں اور ان کے پاؤں میں کلول کیا کرتی تھیں۔ گنگا کے کناروں کے پتھر بھی ان سے اچھی طرح مانوس ہو گئے تھے اور اکثر و بیشتر رام اپنے ایکانت میں انہی سے مخاطب ہوا کرتے تھے۔ اسی کیفیت کو انگلستان کے شاعر اعظم شیکسپیر نے یوں ادا کیا ہے ؎

And this our life exempt from public haunt
Finds tongues in trees and books in running brooks.
Sermons in stones and good in every thing

رام بے خطر گنگا میں کود پڑے اور اونچی لیکن میٹھی آواز سے اوم کا اچارن کرتے ہوئے تیرنے لگے۔ یکایک پاؤں کے نیچے سے ایک پتھر پھسل گیا اور رام دریا کے بہاؤ کے ساتھ بہتے ہوئے کہنے لگے کہ اچھا اگر تیری یہی اچھا ہے تو ہم کو کب انکار ہے۔ لیکن آگے جا کر ایک بھنور کے چکر میں ایسے پھنس گئے کہ کمزوری کے باعث وہاں سے نکلنا مشکل ہو گیا۔ مہاراجہ ٹہری دیوالی کے دن اپنے دربار میں تشریف لا رہے تھے اور اُن کی آمد پر توپوں کی سلامی دی جا رہی تھی۔ اور عین اسی لمحہ رام اپنی پیاری ماں گنگا کی گود میں اوم کہتے ہوئے پرم دھام کو سدھار گئے۔

اس میں شک نہیں کہ رام کا جسم آج دنیا میں موجود نہیں ہے لیکن رام کا پیغام ابدی ہے اور ہر ہندوستانی کا فرض ہے کہ اس کے پیغام کی نشر و اشاعت کا بیڑہ اٹھائے تا کہ ہندوستان کے عوام عملی ویدانت کی گہرائیوں سے آشنا ہو کر زندگی میں بہتر انسان اور بہتر شہری بن سکیں۔

اوم تت ست

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

سے زیادہ مقبول ہوا۔ لیبر پارٹی کے لیڈر اور انگلستان کے سابق وزیر اعظم ریمزے میکڈانلڈ نے جب ۱۹۱۰ء میں اپنی نادر کتاب "بیداریٔ ہند" لکھی تو اس میں اس امر کا اعتراف کیا کہ پنجاب اور دہلی اور یو۔پی کے نوجوان اقبال کے ترانۂ ہندی کے فخر سے اپنا قومی ترانہ جان کر گاتے ہیں۔

امریکہ میں ویدانت کا پیغام دینے کے بعد جب سوامی رام واپس ہندوستان لوٹ رہے تھے تو مصر میں انہیں فارسی زبان میں تقریر کرنے کا موقع ملا جس سے مسلم اکابرینِ مصر مسحور ہو گئے۔ ہندوستان میں اُن کے ورودِ مسعود سے ہر طرف ویدانت کے چرچے ہونے لگے اور ہر تعلیم یافتہ شخص رام کے ساتھ ہمنوائی کرتا ہوا سُنائی دیتا تھا۔ رام کبھی ہردوار کبھی رکھی کیش کبھی متھرا اور کبھی لکھنؤ میں جلوہ افروز تھے ہر جگہ "سناتن دھرم" اور ویدانت پر امرت برشا کے علاوہ ہندوستان کی ترقی کے اسباب اور غلامی سے نجات کے وسائل پر تفصیل کے ساتھ بحث ہونے لگی اور سرکار انگلیشیہ رام کو سیاسی ورکر سمجھ کر اس کی نگرانی کرنے لگی کئی دفعہ پولیس ان کی حرکات و سکنات کو تعاقب کرنے لگی لیکن اکثر اوقات تعاقب کرنے والے پولیس کے افسران کے بھگت بن گئے ان کی تقریروں اور تحریروں نے عوام کے زاویۂ نگاہ کو ہی بدل دیا اور لوگ مجموعی استفادہ کو انفرادی نفع پر ترجیح دینے لگے۔

(۳)

۱۷ اکتوبر ۱۹۰۶ء دیوالی کا دن تھا کہ رام ایک بیماری سے ہنوز اُٹھے ہی تھے۔ بدن میں نقاہت بدستور تھی لیکن دل کے اندر امنگوں کا دریا موجزن تھا۔ شُدوہم سے ہی اپنی بیماری کا علاج کر لیا اور دیوالی کے دن کی تحریک کو مدِ نظر رکھتے ہوئے دل میں یہ ٹھان لی کہ آج وہ مبارک دن ہے جبکہ جسمانی میل اور کدورت کو دھونا ضروری ہے۔ کیونکہ جسم کے اندر تو رام شفاف تھے۔ اور وہاں میل یا کسی قسم کی کثافت کو دخل ہی ممنوع تھا۔ اوپر کی میل کو دھونے کے لئے اس قدر شوق دل کے اندر امنڈ آیا کہ بے بس ہو کر رام کے قلم نے مندرجہ ذیل معجز افشانی کی۔

"اندر۔ رُدر۔ مرت۔ برہما۔ وشنو۔ شو۔ گنگا۔ etc بھارت"

او موت! بیشک اُڑا دے اس ایک جسم کو۔ میرے اور اجسام ہی مجھے کم نہیں۔ صرف چاند کی کرنیں چاندنی کی تاریں ہنس کر جیبیں سے کاٹ سکتا ہوں، پہاڑی ندی نالوں کے بھیس میں گیت گاتا پھروں گا۔ میں ہی بادِ خوشخرام نسیم مستانہ گام ہوں۔ میری [illegible] جانی ہر وقت روانی میں رہتی ہے۔ اس روپ میں پہاڑوں سے

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

الوداع اے دوست دشمن! الوداع — الوداع اے شیت روشن! الوداع

الوداع اے کتب و تدریس! الوداع — الوداع اے جنت و تقدیس! الوداع

الوداع اے دلِ فدا! اے الوداع — الوداع رام! الوداع اے الوداع

گاڑی چلی اور سوامی رام تیرتھ ایک عزمِ مصمم اپنے دل میں لیکر ہردوار اور رکھی کیش کی طرف چل پڑے وہ عزم تھا آتم گیان کا، بھارت کے کلیان کا اور ہندوؤں کی جہالت کو دور کرنے کا جلتے ہی اس نے زور سے للکار کر کہا سے

کفن باندھے ہوئے گنگا کنارے تیرے آبیٹھے

ہزاروں طعنے اب ہم پر لگائے جس کا جی چاہے

گنگا کے کناروں اور ہمالیہ کی گپھاؤں میں سے سوامی رام تیرتھ ایک ایسی برقی قوت سے لبریز ہو کر اُٹھے جس کے اندر ہندوستان کی تعمیرِ نو کا راز سربستہ تھا۔ اپنی حقیقت سے اچھی طرح آشنا ہو کر رام گنگا کی لہروں پر سوار ہو گیا اور جاپان اور امریکہ کو ہندوستان کی عظمت کے وہ نظارے پیش کئے جنہوں نے وہاں کی مادی آنکھوں کو چکا چوند کر دیا۔ کسی نے رام میں زندہ مسیح کا مشاہدہ کیا اور کسی نے ہندوستان کی سرزمین پر عیسائی مشنریوں کے بھیجنے کو بیسود سمجھا کیونکہ یہاں کے سادھو سنیاسی اپنی ادنےٰ سی کرامات میں حضرت مسیح کے معجزات کو شرمندہ کر دیتے تھے۔ امریکہ کے اندر ایک تہلکہ مچ گیا اور ہر شخص سوامی رام کو خراجِ عقیدت پیش کرنے میں سبقت لیجانے کا متمنی نظر آنے لگا۔

سوامی رام نے امریکہ میں ایک اپیل شائع کی جو ہندوستان کی جانب سے امریکنوں کے نام تھی اور جس کو یہاں تک مقبولیت حاصل ہوئی کہ امریکہ کی کئی یونیورسٹیوں نے رام کے آدیش کے ماتحت کئی ہندوستانی طلبا کی تعلیم کے اخراجات کا کفیل ہونا منظور کر لیا۔ رام نے ہندوستان سے چھوت چھات کو دور کرنے کا ایک لائحہ عمل بھی بتایا۔ ادھر ہندوستان میں اس کی بازگشت یہاں تک ہوئی کہ لاہور میں ینگ مینز انڈین ایسوسی ایشن کے نام سے سوسائٹی قائم کی گئی جس کے منتظمین میں مشہور انقلاب پسند لیڈر ڈاکٹر ہردیال ایم اے اور علامہ ڈاکٹر سر محمد اقبال مشہور شاعرِ مشرق شامل تھے۔ چنانچہ ایسوسی ایشن کی پہلی بیٹھک کا افتتاح سوامی جی کی اپیل سے کیا گیا اور اسی مجلس میں علامہ اقبال نے اپنا مشہور قومی ترانہ "سارے جہاں سے اچھا ہندوستاں ہمارا" پہلی دفعہ گایا۔ جس کی مقبولیت کا یہ عالم ہے کہ ... ہر شخص کی زبان پر یہ گیت "بندے ماترم"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

خط میں یوں لکھتے ہیں :-

"میرے پیارے والد بزرگوار- نوازش نامہ سامی شرف صدور لایا- از حد آنند ہوا- آپ کے لڑکے تیرتھ رام کا شریر تو اب بک گیا- بک گیا رام کے آگے- اس کا اپنا نہیں رہا- آج دیوالی کو اپنا جسم ہار دیا اور مہاراج کو جیت لیا- آپ کو مبارک ہو- اب جس چیز کی ضرورت ہو میرے مالک سے مانگو- فوراً خود دینگے یا مجھ سے بھجوا دیں گے- مگر ایک دفعہ نشچے کے ساتھ آپ ان سے مانگو تو سہی ...... گھبرانا ٹھیک نہیں ہے- جیسی اس کی آگیا ہو گی عمل ہوتا جائے گا- مہاراج ہی ہم گوسائیوں کا دھن ہیں- اپنے سچ کے قیمتی دھن کو تیاگ کر سنسار کی جھوٹی ٹوٹی کوڑیوں کے پیچھے پڑنا ہم کو مناسب نہیں اور ان کوڑیوں کے نہ ملنے پر افسوس کرنا تو بہت ہی بُرا ہے- اپنے اصلی مال و دولت کا مزہ ایک دفعہ لے تو دیکھو۔"

یعنی ۲۴ سال کی عمر میں پروفیسر تیرتھ رام کے دل کی اُمنگیں تیاگ اور ویراگ کے سمندر کی لہریں بن گئیں اور انہوں نے دل سے تیاگ کی ٹھان لی- فوراً ہی بعد لاہور میں سوامی وویکانند جی کا آنا ہوا- وہ امریکہ میں ہندو دھرم کی دھاک بٹھا کر واپس آئے تھے کہ ہندوستان بھر نے ایک فاتح کی حیثیت سے ان کا خیر مقدم کیا- کولمبو سے لے کے المورہ تک پہنچنے میں ہر جگہ ان کو سپاس نامے دیئے گئے اور ویدانت پر ان کے لیکچر ہوئے جن سے ہندوستان کے اندر ایک نیا جیون آگیا اور گرم خون ہر شخص کی رگوں کے اندر دوڑ گیا- امرناتھ کشمیر کی یاترا سے لوٹتے ہوئے سوامی وویکانند جی کا لیکچر ویدانت کے مسئلہ پر حویلی راجہ دھیان سنگھ میں لاہور میں ہوا- اور اس نے پنجاب کے دل کو ہلا دیا- تیرتھ رام جی کو سوامی وویکانند جی کی میزبانی کا شرف حاصل ہوا- اور تیرتھ رام ہی پہلے شخص تھے جنھوں نے سوامی جی کو امریکہ کے ویدانتی شاعر والٹ وٹمین (Walt Whitman) کی صوفیانی شاعری سے روشناس کرایا- سوامی وویکانند جی کے اس دورہ لاہور نے تیرتھ رام جی کے دل کے اندر عرفان کی دہکتی ہوئی آگ پر ویراگ کا تیل چھڑکا اور یہ نوجوان اپنی ریاضی اور راوی کو الوداع کہتا ہوا ندیوں کی سردار گنگا رانی کی طرف چل پڑا- طالب علموں اور مداحوں کا ایک جلوس تیرتھ رام کو لاہور اسٹیشن پر چھوڑ آیا- یہاں گیروا دھاری تیرتھ رام جو زمانے کے انقلاب سے رام تیرتھ کی صورت میں منقلب ہو گیا تھا یہ گا رہا تھا ؎

الوداع اے میری ریاضی! الوداع الوداع- الوداع اے پیاری راوی! الوداع

الوداع اے اہل خانہ! الوداع الوداع معصوم نادان! الوداع

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

مطالعہ کر رہے تھے۔ ننھے تیرتھ رام کو اکثر یہ مواقع نصیب ہوتے تھے کہ وہ بھگت جی کے سادھنوں سے فیضیاب ہوتا سکول کے ہیڈ ماسٹر مسٹر چیٹر جی حضرت مسیح کے بھگت تھے اور سکول کی عیسائیت کی لازمی تعلیم کی وجہ سے تیرتھ رام کو دین عیسوی کے مطالعہ کا بھی موقعہ ملا۔ چنانچہ گورو کی دیا اور ماحول کی سازگاری نے سونے پر سہاگے کا کام کیا اور ننھا تیرتھ رام صوبہ پنجاب میں اڑھتیسویں پوزیشن لیکر پنجاب یونیورسٹی کے امتحان انٹرنس میں کامیاب ہو کر لاہور مشن کالج میں جا کر داخل ہو گیا۔ والدین اس کے خلاف تھے کہ ان کا لڑکا کالج کی تعلیم حاصل کرے اسی لئے نو عمری میں ہی اس کی شادی کر دی گئی تھی اور وہ یہ توقع رکھتے تھے کہ ان کا لڑکا بڑا ہو کر اپنے یجمانوں کو اچھی طرح متاثر کر کے اچھا دھن اکٹھا کرے گا۔ کیونکہ آبائی پیشہ یہی تھا کہ افغانستان، آزاد قبائلی علاقہ، اور سوات دیر میں اپنے یجمانوں سے دکشنا اکٹھی کی جاتی تھی اور اسی سے خاندان کی بسر ہوتی تھی۔

مشن کالج لاہور میں تیرتھ رام کو کئی مصیبتوں کا سامنا کرنا پڑا۔ والدین ناموافق، حالات ناسازگار۔ اخراجات کے مہیا ہونے کے تمام راستے مسدود۔ لیکن ان سب پر اگر فتح حاصل ہوئی تو محض دل کی اُمنگوں کی وجہ سے پڑھنے کا شوق، آتم گیان کا جنون اور بھگتی کا اتھاہ ساگر جو دل کے اندر موجزن تھا ان سب نے مل کر تمام مصیبتوں کا مردانہ وار مقابلہ کیا اور یہ شہسوار میدان علم و عمل یونیورسٹی کے تمام مراحل کو کامیابی سے طے کر کے سرخرو ہوا۔ والدین نے دریا کو سمندر میں جانے سے روکنے کے لئے راستے میں کئی دیواریں کھڑی کیں۔ بیوی کو دوران مطالعہ لاہور بھیجدیا۔ مکان کا کرایہ، اپنا اور بیوی کا خرچ، تعلیم کے اخراجات یہ سب ایسی مصیبتیں تھیں۔ جو ایک عام انسان کو اپنے بلند معیار سے بآسانی ڈگمگا سکتی تھیں لیکن میدان معرفت میں عزم راسخ لیکر چلنے والے تیرتھ رام نے ان مشکلوں کو حل کرنے کے ساتھ ساتھ عرفان کی کئی منزلیں بھی طے کر لیں پنجاب یونیورسٹی سے ریاضی کے مضمون میں ایم۔ اے کیا اور ریاضت کے آخری مدارج کو بھی حاصل کیا مختصر سے عرصہ کے لئے بے روزگاری کا مزہ چکھنے اور بعد میں سیالکوٹ کے مشن سکول میں کچھ دیر تک ٹیچری کرنے کے بعد تیرتھ رام مشن کالج لاہور میں بعہدۂ پروفیسری متمکن ہو گئے۔ کالج کی پروفیسری اہل ذوق کے لئے ایک نعمت غیر مترقبہ ہے۔ اس میں انسان اپنے شوق کے مطابق تگ و دو کر سکتا ہے۔ لیکن عرفان کے ساتھ ساتھ ویراگ کا رنگ جمتا گیا۔ اور کچھ دیر بعد گوسائیں تیرتھ رام نے اپنے آئندہ زندگی کے مختلف فیصلے کئے۔

(۲)

۲۵ اکتوبر ۱۸۹۷ء دیوالی کے دن تیرتھ رام اپنے والد کو روپیوں کے تقاضے کے جواب میں ایک

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

دیوالی اور سوامی رام تیرتھ

(از پروفیسر ہیرالال چوپڑہ ایم۔ اے مقیم کلکتہ)

(۱)

دیوالی کے دن سے ایک دن بعد یعنی ۲۲ اکتوبر ۱۸۷۳ء کو مُرالیوالہ گاؤں ضلع گوجرانوالہ میں تیرتھ رام گوسائیں ہیرانند کے گھر پیدا ہوئے اور پیدائش کے چند ماہ بعد ماں کا انتقال ہوگیا۔ چھوٹے سے گاؤں کے ایک غریب برہمن خاندان کے لئے یہ امید رکھنا کہ وہ لڑکے کو اچھی تعلیم دے سکیں گے ناممکن تھا۔ لہذا گاؤں کے مکتب میں مولوی احمد علی کے پاس اُس لڑکے کو داخل کروا دیا گیا۔ مسجد میں اس وقت کی مروجہ کتب گلستاں بوستاں کے پڑھ لینے کے بعد دیوان حافظ کی ابتدا کی گئی۔ لیکن حافظ کے پہلے ہی شعر ؎

الا یا ایہا الساقی ادر کاساً و ناولہا
کہ عشق آساں نمود اوّل ولے افتاد مشکلہا

پر بقول مولوی احمد علی اتنے دن صرف کئے گئے کہ آگے بڑھنا محال ہوگیا۔ مولوی صاحب حیران تھے۔ کہ یہ نونہال جو شخص گلستاں بوستاں آموختہ ہے کس طرح حافظ کی ان تفسیروں اور تاویلوں سے واقفیت رکھتا ہے۔ جو اُس زمانہ کے جید علما کی دسترس سے بھی باہر تھیں۔ الغرض اسی ایک شعر میں تصوف کے تمام مراحل کی وضاحت کرنے کے بعد مولوی صاحب نے اپنے طالب علم کے سامنے ہتھیار ڈال دئے اور کہہ دیا کہ اس شاگرد کو مزید کچھ بتانا سورج کو چراغ دکھلانا ہوگا۔ کیونکہ ایسا معلوم ہوتا ہے کہ یہ ہونہار لڑکا خود ہی تلمیذ الرحمٰن ہے۔ جب مکتب کی پڑھائی ختم ہوگئی تو تیرتھ رام اپنے گاؤں سے نو میل کے فاصلے پر گوجرانوالہ شہر میں مشن ہائی سکول میں جا کر داخل ہوگیا۔ اور گوسائیں ہیرانند نے اپنے چھوٹے بچے کی غور پرداخت کے لئے اپنے ایک دیرینہ دوست بھگت دھنا رام عرف بھگت رب کو اس پر نگران مقرر کر دیا۔ گاؤں سے رخصت ہونے سے پہلے تیرتھ رام نے اپنے والد سے کہا کہ ان کے سابقہ استاد احمد علی کو گھر کی گائے بطور نذرانہ پیش کی جائے کیونکہ مولوی صاحب نے اپنی استطاعت کے مطابق اپنے شاگرد کی تعلیم و تدریس کی تھی۔

گوجرانوالہ میں بھگت دھنا رام بال برہمچاری یوگی پرش تھے اور ہٹ یوگ کے ساتھ ساتھ ویدانت کا بھی

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

بہت اچھی بات ہے۔ یہی نقص اس کی آخری مکتی کا کارن بن جاتا ہے۔ اگر اس میں یہ عادت نہ ہوتی تو یہ کبھی پرماتما تک نہ پہنچ سکتا۔ اسے جو جہاں کوئی سکھ نظر آتا وہاں ہی سدا مست ہو کر بیٹھا رہتا اور اس کی روحانی ترقی رکی رہتی۔ لیکن من کا یہ خاصہ ہے کہ وہ کسی سکھ سے ہمیشہ کے لئے تربیت نہیں رہ سکتا۔ عارضی دھوکہ تو ضرور کھاتا ہے۔ لیکن اس کی ہر عارضی غلطی کے بعد آنکھ کھلتی رہتی ہے اور سکھ کا نقطہ نگاہ بدلتا رہتا ہے۔ اس طرح اس کی روحانی ترقی کی رفتار جاری رہتی ہے اور پورے طور سے ختم صرف اسی وقت ہوتی ہے جب پورن شانتی اور آنند کے چشمے کو پراپت کر کے اس میں غوطے لگاتا ہوا نمک کی پتلی کی طرح اس چشمہ کا ہی روپ ہو جاتا ہے۔ جوں جوں اہنتا گھٹتی ہے توں توں آدمی کی خوشی۔ آنند۔ بے فکری اور بے محتاجی بڑھتی ہے۔ عرشی زندگی کا جہان آنند آتا ہے اور انسان دیوی جیون کا حصہ بننا شروع کر دیتا ہے۔ آخر ایک ایسی اوستھا آجاتی ہے جہاں اہنتا صرف اتنی ہی رہ جاتی ہے جتنی شریر کو قائم رکھنے کے لئے ضروری ہو۔ آتما آٹھوں پہر پرماتما کے پریم میں لین رہتی ہے۔ انسان ہر وقت مست اور الٰہی رنگ میں رنگا رہتا ہے۔ یہ من کی حالت خیالات اور سنکلپوں سے رہت ہوتی ہے۔ جس کے آنند کے مقابلہ میں دنیا کا راج بھی ہیچ معلوم ہوتا ہے۔ یا اس مٹی کے کھلونے کی طرح محسوس ہوتا ہے۔ جس کے عوض اس سے سوگنا قیمتی خوبصورت اور نہ ٹوٹنے والا کھلونا مل گیا ہو۔ یہ وصل کی آخری حالت ہے جہاں وصل کی خوشی انوبھو کرنے کے لئے ہی تھوڑی سی اہنتا رہ جاتی ہے۔ اس اوستھا سے پرے وصال نہیں رہتا۔ عاشق خود معشوق روپ ہو جاتا ہے۔ دو سے ایک ہو جاتا ہے

اہنتا کے بالکل ختم ہو جانے سے شریر کا قائم رہنا مشکل ہے۔ اہنتا ہی شریر کے بنائے جانے کا کارن ہے اہنتا کے آسرے ہی شریر قائم رہتا ہے اور اہنتا کے ختم ہو جانے سے ختم ہو جاتا ہے۔ کیونکہ پھر شریر کی ضرورت ہی نہیں رہتی۔ مکان کی چھت پر چڑھنے اترنے کے لئے سیڑھی کی ضرورت ہوتی ہے۔ لیکن جب چھت پر چڑھ کر نیچے اترنا نہ ہو ہمیشہ اوپر کی منزلوں میں ہی رہنا ہووے پھر سیڑھی کی ضرورت ہٹ جاتی ہے آتما کو جب پرماتما میں لین ہو کر وہاں ٹکے رہنے کا ابھیاس ہو جائے اور پھر شریر میں آنا دکھلائی اور فضول لگے تب شریر کی اور اگلے جنم مرن کی کوئی ضرورت نہیں رہتی ۔

اوم تت ست

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

شونیہ ہو جانے کے سبب محسوس کرنے کی کوئی طاقت نہیں رہتی۔ کئی ناواقف لوگ مکتی کا بھی اسی قسم کا مطلب سمجھتے ہیں۔ میں نے خود اسی غلطی میں کئی سال گذارے ہیں۔ کسی وقت میں اپنے آپ کو صفر مانتا تھا۔ اس کا یہ اثر ہوا کہ میں دن بدن کمزور بنتا گیا۔ میرا اپنے خیالات اور جسم کے اوپر قابو بالکل گھٹ گیا۔ اور اپنے آپ کو بہت کمزور اور حقیر ہستی سمجھنے لگ گیا ہر طرح سے صفر ہی ہوتا گیا۔ صحت خراب اور دل کمزور ہو گیا۔ آخر میں اہنتا کے ناش کے صحیح معنی سمجھنے کے لئے کئی ابھیاسی مہاتماؤں کے پاس پھرا اور ایک مہان پرش نے بتایا کہ اہنتا کے مرنے کا مطلب انسان سے دیوتا۔ کمزور سے شکتیمان۔ چھوٹے سے بڑی طاقت والا اور جیو سے پرماتما کا روپ ہو جانا ہے۔ بندگی (بھگتی) اہنتا کو مار دیتی ہے اور ساتھ ہی اہنتا کی جگہ پرماتما کی جوت کا پرکاش کر دیتی ہے۔ جس سے انسان کا گھٹتا تو کچھ نہیں صرف انسانی نقطۂ نگاہ اور پرانا سوبھاؤ بدل جاتا ہے۔ وہ اپنی پرانی جنم لینے والی اور مرنے والی "میں" کی تہ میں اکال۔ ابناشی اور اجنما پرماتما کو صاف دیکھتا ہے۔

انسان کی خاصیت ہے کہ بڑھیا چیز مل جانے پر گھٹیا چیز کو بھلا دیتا ہے۔ جب انسان کو پتہ لگ جائے کہ اسکی اہنتا نے اس کو ایک تنگ محدود اور چھوٹی زندگی دے رکھی تھی۔ جہاں بھٹکنا۔ کلپنا۔ ضرورت۔ بیماری۔ بیوفائی۔ جدائی۔ اور موت بھی اور اس کو اہنتا کے تیاگ سے ایسی زندگی کا گیان ہو جائے۔ جہاں پورنتا۔ بیفکری۔ بے محتاجی۔ صحت۔ بے حد خوشی۔ شانتی۔ آنند۔ بے پرواہی اور اٹل زندگی ہو تو انسان خوشی سے اہنتا والی زندگی کا تیاگ کر کے اس نئی دنیا میں رہنا قبول کر لیگا۔ اس کام کو جتنی جلدی بندگی یا نام کا ابھیاس پورا کر سکتا ہے اور کوئی سادھن نہیں کر سکتا۔ ابھیاسی کو دنیا اصلی شکل میں نظر آ جاتی ہے۔ اس میں مایا کا پردہ پھاڑ کر اصلیت دیکھنے والی درشٹی پیدا ہو جاتی ہے جس سے وہ ست اور است میں تمیز کر کے اصلی زندگی حاصل کرتا، اس کے مہان آنند کو مانتا اور ست کے ساتھ مل کر ست روپ ہو جاتا ہے۔

تیسرا سادھن۔ واسنا کا ناش۔ اہنتا کے تیاگ کا تیسرا سادھن اپنی نفسانی خواہشات کو روکنا اور قابو میں کرنا ہے من کی آزادی انسان کو من کا غلام بنائے رکھتی ہے۔ من کی ترشنا پرماتما کے ملنے کے بغیر کبھی پوری نہیں ہوتی۔ اس لئے دنیاوی چیزوں سے اس کو جتنا خوش کرنے کی کوشش کرو اتنا ہی بے صبر ہوتا جاتا ہے۔ ایک خیال سے من ترپتی ہمیشہ اسنتشٹ رہنے وسیر نہ ہونے کی عادت

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اس نشکام سیوا سے جو روحانی خوشی پیدا ہوتی ہے وہ مغربی دنیا کو ابھی کم ہی نصیب ہوئی ہے۔ یہ سیوا جیو میں سے اَہنتا کی میل کاٹ کر اس کو آتما کے آنند کا رس لینے والا بنا دیتی ہے۔

اپنی زندگی کا آدرش سیوا بنا کر جیون گذارتے ہوئے زندگی کی معمولی ضروریات قدرت کی طرف سے خود بخود ہی پوری ہوتی رہتی ہے۔ اگر کوئی آدمی بیوپاری ہے اور بیوپار کے فائدے سے نیک کام کرنا اور دنیا کی سیوا کرنا چاہتا ہے۔ اس کو بیوپار میں خود ہی زیادہ نفع ہوتا چلا جائے گا۔ یہ بات کہ دولت دان کرنے سے گھٹنے کی بجائے بڑھتی رہتی ہے۔ عقل میں نہیں آتی۔ لیکن شردھا کے ساتھ تجربہ کرنے سے اس کے سولہ آنے سچ ہونے کا پورا ثبوت ملتا ہے۔ میں نے عام طور پر نیک آدمیوں کے گھروں میں برکت۔ رونق۔ خوشی۔ شانتی اور سنتوش نواس کرتے دیکھے ہیں۔

قدرت کی رہنمائی ۔ جتنی اَہنتا کم ہوتی جاتی ہے۔ اُتنی ہی انسان کے کاموں کی ذمہ داری قدرت اپنے ذمہ لے لیتی ہے۔ یہ ایک روحانی اصول ہے جس کی سچائی اٹل ہے۔ انسان اپنی کوششوں چالاکیوں اور تدبیروں سے اپنی ترقی میں روڑے اٹکاتا رہتا ہے اور قدرتی طاقتوں کو عمل میں آنے سے روکتا رہتا ہے۔ بندگی کرنے والے پرش کو پتہ لگ جاتا ہے کہ انسان کی عقل اور تدبیر دریا کے اوپر کی طرف کشتی چلانے والی بات ہے۔ اس واسطے وہ اپنے آپ کو بالکل ہی پرماتما کی مرضی پر چھوڑ دیتا ہے۔

اَہنتا کے دکھ سے چھٹکارا پانے کے لئے پراُپکار اور سیوا بڑی مدد تو کرتے ہیں لیکن اہنتا کا اصلی تیاگ بندگی کے بغیر نہیں ہو سکتا۔ سیوا اور پراُپکار من کو نرمل کر سکتے ہیں۔ لیکن من کو ستھر (یکسو) کر کے پرماتما میں جذب ہونا۔ سمرن اور ابھیاس کے ذریعہ ہی ہو سکتا ہے۔ یہ بات تو ممکن ہو سکتی ہے کہ سمرن ابھیاس کرنے والا سیوا اور اُپکار کی مدد کے بغیر اونچی روحانی اوستھا میں پہنچ کر اَہنتا سے چھٹکارا پا جائے لیکن صرف سیوا اور پراُپکار سے ہی اونچے روحانی منڈلوں میں پہنچنا اور اَہنتا کا ناش کر کے "دو سے ایک روپ" ہو جانا ناممکن ہے۔ ایک روپ ہونے کے لئے کسی ایکانت کی کسی محنت کی اور کسی ابھیاس کی۔ بہت ضرورت ہے۔

اَہنتا اور شخصیت ۔ اَہنتا کے مٹ جانے کا مطلب کئی لوگ یہ سمجھتے ہیں کہ آدمی کی شخصیت صفر ہو جاتی ہے اور جب شخصیت ہی نہ رہے تب زندگی کا خاتمہ ہو جاتا ہے اور آتما میں

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

دیکھتے دیکھتے ہی اس کو کبھی اپنی دکھی حالت سے نفرت پیدا ہو جاتی ہے اور اپنے اصلی نورانی چہرے کی جھلک نظر آنی شروع ہوتی ہے۔ اس وقت اس کو یاد آتا ہے کہ میں دراصل کوئی عرشی چیز ہوں لیکن غلطی سے بھول کر دکھی۔ آدھین۔ محتاج اور خوفزدہ ہوئی بیٹھی ہوں۔

اہنتا کے روگ کو بڑا (دیرگھ) لمبا روگ کہا ہے۔ یہ جلدی جلدی پیچھا نہیں چھوڑتا۔ گورو بانی میں اس روگ سے چھٹکارا پانے کے کئی سادھن بتائے گئے ہیں۔

پہلا سادھن بھگتی یوگ۔ سب سے اچھا سادھن پرماتما کا سمرن ہے۔ جس سے جیو پرماتما کے نزدیک ہونا شروع ہو جاتا ہے۔ جوں جوں جیو پرماتما کے نزدیک ہوتا جائے اس میں ایشوری گن (صفتیں) آنے لگ جاتی ہیں۔ اس کا انسانی سبھاؤ گھٹتا۔ کمزور ہوتا اور آہستہ آہستہ بالکل مٹ جاتا ہے۔ یا یوں کہو کہ اس کا نقطہ نگاہ ہی بدل جاتا ہے۔ جیو والا نقطہ نگاہ بدل کر ایشوری نقطہ نگاہ پیدا ہو جاتا ہے۔ دھرم کا بڑا منورتھ ہی یہ تبدیلی پیدا کرنا ہے۔ نقطہ نگاہ کے بدلنے سے ہی انسان منش سے دیوتا بن سکتا ہے۔

دوسرا سادھن۔ کرم یوگ۔ اس طریقہ سے اہنتا چاہے بالکل نہیں مرتی۔ لیکن بالکل کمزور ہو جاتی ہے۔ یہ طریقہ پر اُپکار اور سیوا کا ہے۔ اپنے فائدے کی بجائے دنیا کے فائدے کے واسطے کام کرنا۔ اپنی زندگی کو جگت سیوا میں لگا دینا۔ ہمیشہ اپنی بجائے دنیا کی بہتری اور بھلائی کو خیال میں رکھنا۔ ہر چیز کو پرماتما کا روپ دیکھنا۔ اور خلقت کی سیوا کو پرماتما کی سیوا سمجھنا۔ "دارو بھی اس ماہنہ" کا ارتھ یہ بھی ہو سکتا ہے کہ جب انسان اپنے نفس کی خوشی کے واسطے کام کرنے چھوڑ کر دوسروں کے بھلے کو زندگی کا آدرش بنا لیوے تو وہ اہنتا جو پہلے اس کو دن بدن نیچے کھینچتی جا رہی تھی۔ اب اونچا اٹھانا شروع کر دیتی ہے اور بجائے نقصان دینے کے فائدہ مند ہتھیار بن جاتی ہے۔ یہاں دنیاوی پڑھے لکھے دماغ کو کچھ سمجھ نہیں آتی۔ مغربی تعلیم کا سب سے بڑا آدرش اپنے بھلے کے واسطے کوشش کرنا ہے اپنی سیوا اپنے بال بچے کی سیوا اور اپنے ملک کی سیوا بڑی اونچی صفتیں سمجھی گئی ہیں۔ لیکن اس سیوا کی نسبت اپنے اندر سے خودی بھرے خیالات کو بالکل ہی نکال کر تمام سنسار میں پرماتما کا ہی روپ سمجھ کر اپنے بال بچوں میں۔ اپنی قوم میں اور ساری دنیا میں پرماتما کو دیکھتے ہوئے ساری سیوا پرماتما کے ارپن کرنا۔ بہت ہی اونچی سیوا ہے۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

مکڑی کی طرح اپنے اردگرد اپنے خیالات کا جال بنا کر اُس میں آپ قید ہو کر اپنے محدود دائرے کو اپنی دنیا سمجھتا ہے۔

لیکن جیو میں ایشوری انش ہونے کی وجہ سے اس کو اپنی بڑی سے بڑی بنائی ہوئی دنیا بھی پورے طور سے خوش نہیں کر سکتی۔ اس لئے اس کی ترشنا دن بدن بڑھتی چلی جاتی ہے اور ترشنا مٹے بھی کس طرح۔ بھُولا ہوا جیو پُورن سُکھ۔ مکمل شانتی اور اپنے آدرش کی پورنتا کو اس مادی دنیا میں ڈھونڈتا ہے۔ نہ یہ پُورنتا اس کو یہاں ملتی ہے اور نہ اس کی سکھ اور شانتی کی تلاش ختم ہوتی ہے۔ یہ اہنتا کے ذریعہ پرم سکھ ڈھونڈتا ہے۔ وہ اس کو ملتا نہیں۔ اِس وجہ سے اس کی اہنتا دن بدن بڑھتی اور دکھ دائی ہوتی جاتی ہے۔ یہ اہنتا کا کانٹا جیو کو ہر وقت چُبھتا اور سوئی پر چڑھائے رکھتا ہے۔

گوروگرنتھ صاحب میں اہنتا یعنی "ہوں مَیں" کو دکھ۔ روگ۔ بیڑ۔ سنتاپ۔ مَل۔ وِش (زہر)، وہم۔ دھوکہ۔ پردہ۔ غبار وغیرہ لکھا ہے۔ لیکن اس روگ کی دارُو بھی اس کے اندر ہی بتائی ہے۔ سوال پیدا ہوتا ہے کہ "دارُو بھی اِس ماہنہ" یہ کس طرح ہوا۔ غور سے سوچنے پر اِس شبد کی سچائی ظاہر ہو جاتی ہے۔ بخار جسم میں زہریلے مادّے کی موجودگی ظاہر کرتا ہے۔ اس خیال سے یہ ایک بیماری ہے لیکن ساتھ ہی قدرت کی طرف سے بخار اس زہریلے مادے کو ساڑنے کا اُپائے ہوتا ہے۔ اس خیال سے یہ ایک علاج ہے۔ اِسی طرح اہنتا ایک طرف انسانی نقطۂ نگاہ کی بھول ثابت کرتی ہے۔ لیکن دوسری طرف اس بھول کی وجہ سے انسان کو طرح طرح کے جھمیلوں اور تکلفوں میں ڈال کر اس کی آنکھیں کھولنے بندگی میں لگانے اور موکش پراپتی کا کارن ہوتی ہے۔ انسان اپنی اہنتا میں پھنس کر اپنی زندگی بہت تلخ بنا لیتا ہے۔ پھر اس کو کبھی کبھی وچار آنا شروع ہوتا ہے کہ میں نے یہ کیا کیا۔ پہلے پشچاتاپ پھر ویراگ اور تیاگ کی حالت پیدا ہوتی ہے اور آخیر میں جب پھر اپنی اصلیت پرماتما کے ساتھ لین ہو کر ایک ہو جاتا ہے۔ تب اس کو اپنی اہنتا والی غلطی جہاں ایک طرف بھیانک دکھوں کا کارن محسوس ہوتی ہے تو دوسری طرف اُن دکھوں سے چھٹکارہ پانے کا سبب بھی نظر آتی ہے۔ وہ سزا جو انسان کو سیدھے راستے پر لے آئے سوچنے پر بُری نہیں بلکہ اچھی معلوم ہوتی ہے۔ اس خیال سے اہنتا روگ بھی ہے اور دوائی بھی اہنتا کو ایک شیشہ کہا جا سکتا ہے جس میں آتما اپنا تراشا بھر اغگین۔ مایوس اور اداس چہرہ دیکھتی رہتی ہے۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اہنتا (انسانی خودی)

(از شریان سنت رگھبیر سنگھ جی بیر - کلکتہ)

"ہئوں میں" (اہنتا) دیرگھ روگ ہے - داروُ بھی اس ماںہہ
کرپا کرے جے آپنی تاں گورو کا شبد کمائے

انسان کا سب سے بڑا مرض یا روگ اہنتا (جھوٹی خودی) ہے - منش کا سارا بیوہار اہنتا کے آسرے ہی ہوتا ہے - اہنتا انسان کو دوسروں سے علیحدہ کر کے اپنی حدیں قائم کرتی ہے - اہنتا سے انسان اپنی دنیا بڑی چھوٹی اور تنگ بنا لیتا ہے - اپنے بال بچوں - اپنی جائداد - اپنی عزت - دولت - شہرت کے لئے اپنی ساری زندگی - سارا زور اور ساری عقل خرچ کر دیتا ہے - کام - کرودھ - لوبھ - موہ - اہنکار سب اہنتا سے ہی پیدا ہوتے ہیں - ان سب کا مول کارن اہنتا ہے - جب انسان کی ترشنا پوری نہیں ہوتی - اس کو بہت دکھ ہوتا ہے - اور ترشنا کو پورا کرنے کے لئے طرح طرح کی تجویزیں کرتا - عقل کو دوڑاتا - ظلم - بے انصافی - دھوکا بازی - غرضیکہ سب برے کام کر بیٹھتا ہے -

۲ - اہنتا (جھوٹی خودی) سے جیو ایشور سے جدا ہوتا - انیک پرکار کی غلطیاں کرتا - ان کی سزا دکھ کی شکل میں بھوگتا اور بار بار موت کے پنجے کا شکار ہوتا ہے - اگر جیو میں اہنتا نہ ہو تو اس جیسا سکھی کوئی ہے ہی نہیں - اس کے اور پرماتما کے بیچ میں صرف اہنتا کا ہی پردہ ہے - جو اس کو اپنی اصلیت سے علیحدہ رکھتا ہے -

۳ - اہنتا کی وجہ سے جیو اپنی برہم درشٹی گنوا کر - جیو درشٹی کے ساتھ اپنی بنائی ہوئی تنگ دنیا کو دیکھتا ہے - جیو درشٹی سے اس کو دنیا بہت تنگ - چھوٹی اور محدود محسوس ہوتی ہے - ہر انسان کی دنیا اس کا اپنا نقطۂ نگاہ یا اس کی اپنی جیو درشٹی ہے - وہ دنیا کی طرف جس نگاہ سے دیکھتا ہے دنیا اس کو ویسی ہی نظر آتی ہے - اہنتا نے جیو کی ایشوری نگاہ بند کر دی ہے وہ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

میری کوئی اِچھّا یا واسنا نہیں۔ پرماتما کی اِچھّا ہی میرے ذریعہ پوری ہو رہی ہے۔ بھگوت شکتی ہی پرکرتی ہی بھگوان کے حکم کے مطابق میرے شریر اور انتہ کرن کو آلہ بنا کر کام کر رہی ہے اور میں اسنگ اور شاکشی ہو کر بھگوت شکتی کے کام کو دیکھتا ہوں۔

میں اگیانی نہیں ہوں۔ میں بدھ (قیدی) نہیں ہوں اور میں دکھی نہیں ہوں۔ میں صرف اگیانی کا سوانگ اتارتا ہوں۔ میں نتیہ مکت ہوں۔ بدھ ہونے کا صرف کھیل کھیلتا ہوں اور ایک ایکٹر کی مانند شوک اور دکھ کا صرف رس لیتا ہوں۔ کون ہے جو مجھے پاپی پتت اور کمزور سمجھتا ہے میں شدھ۔ نرنجن آتما ہوں۔ پاپ مجھے چھو نہیں سکتا۔ کون مجھے دربل اور شکتی ہین کہتا ہے۔ میں سروشکتیمان پرمیشور کے ساتھ ایک ہوں۔ وہ اننت ہو کر اپنے آپ کو انیک کیندروں (مرکزوں) میں ستھاپت کرتا ہوا ہر ایک کیندر پر پھر اننت ہے۔ میں اُسی پرماتما کا انش ہوں۔ برہمانڈ کے سمراٹ کا پتر ہوں لیکن میں اور میرا پتا ایک ہیں بھگوت شکتی اس سنسار میں۔ اِس پریوار میں اور اس شریر میں لیلا کر رہی ہے اور میں بھگوان کے ساتھ شاکشی اور اسنگ ہو کر اُسے دیکھ رہا ہوں اور آنند مے ہوں۔

میں آنند ہوں دکھ نہیں مجھ میں ہمدم
سدا مکت ہوں بندھ کا کچھ نہیں غم
میں پورن ہوں مجھ میں کہاں بیش اور کم
شوو ہم۔ شوو ہم۔ شوو ہم۔ شوو ہم

"اوم"

یہ آتم چنتن کا ابھیاس چلتے۔ پھرتے۔ سیر کرتے۔ مکان میں اور باہر۔ دفتر کی کرسی پر اور دکان کی گدّی پر۔ غسل خانہ میں۔ اور صحت خانہ میں۔ غرضیکہ ہر اوستھا میں کریں۔ رات کو سوتے سے پہلے اور صبح اُٹھتے ہی ضرور کریں۔ یہ دونوں ابھیاس آتم سمرپن اور آتم چنتن ساتھ ساتھ کرنے والے ابھیاسی کے لئے جلد از جلد جیون مکت اوستھا کا پراپت کرنا یقینی ہوتا ہے۔

اوم تت ست

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

پرندوں میں۔ اور سنسار کے روزانہ واقعات میں آپ کی جیوتی انوبھو کر کے۔ آپ کی ہی اچھّا پوری ہوتی دیکھتا ہوا دیوی جیون پراپت کر سکوں۔

اب جگدیشور۔ اپنی لیلا میں میرے شریر اور انتہ کرن کو یَنتر (آلہ) بنا کر جو کام آپ کرا رہے ہیں۔ وہ آپ کا کاریہ ہے۔ میرا نہیں آپ کا ہے۔ اس لئے میں اسے اپنا سمجھتا ہوں۔ اس کے ہونے نہ ہونے میں مجھے لابھ نہیں ہانی نہیں۔ کام کو سنوار دیں تو واہ وا۔ بگاڑ دیں تو واہ وا۔ میرا آنند تو آپ کی اِچھّا کے آدھین رہنے میں ہے۔ راضی ہوں میں اسی میں جس میں تری رضا ہے "۔

اس سنکلپ اور پرارتھنا کے ایک ایک شبد کو بہت اچھی طرح وچار کر پڑھیں۔ اس کے ایک ایک فقرے میں کتابیں چھپی ہوئی ہیں۔ روزانہ صبح و شام بھگوان کو حاظر ناظر سمجھتے ہوئے ان کے سامنے یہ پرتگیا اور پرارتھنا کریں۔ یہ بھاؤ سچے دل سے نکلنے چاہئیں۔ اِن کے مطابق اپنے جیون کو بنائیں آپ اپنی روحانی ترقی اور آنند کو دیکھ کر حیران ہو جائیں گے۔ آتم سمرپن پرابھگتی ہے۔ یہ بھگتی یوگ کی اونچی اوستھا ہے۔ اس اوستھا کے ساتھ ہی ہردے میں گیان کا کنول کھلنے لگ پڑتا ہے۔ اس لئے گیان کے پودے کی نشو نما کے لئے آتم چنتن کا ابھیاس بھی لازمی ہے۔ اس کے بغیر آتم سمرپن ڈھیلا رہ جائے گا۔ آتم سمرپن اور آتم چنتن لازم و ملزوم ہیں۔

آتم چنتن کا ابھیاس

"میں شریر سے علیحدہ آتما ہوں۔ اجر۔ امر اور ابناشی ہوں۔ شدھ ہوں۔ آنند روپ ہوں۔ دیہہ۔ روپی نیتر کا سوامی۔ سمراٹ اور ایشور ہوں۔ میں پرکاش روپ آتما ہوں اور پرماتما کے ساتھ جو میرا اپنا ہی سرو شکتیمان سرو ویاپک اور سرو گیہ سروپ ہے ایک ہوں۔ پُرش بھاؤ کے ہوتے ہوئے بھی میری ستا پرشوتم کی ستا کے ساتھ ایک ہے۔ بھید کیول اتنا ہی ہے کہ پرماتما وشو ویاپی ایشور ہے اور میں دیکتی گت ایشور ہوں۔ من بدھی اور اندریاں میرے اہلکار ہیں۔ میں اُن سے اسنگ اور کوٹستھ ہوں۔ میں صرف حکم دیتا ہوں اور میری سنکلپ شکتی (قوتِ ارادی) فوراً ہی من۔ بدھی اور اندریوں کو کام میں لگاتی ہے۔ اور ساکشی (دیکھنے والا) ہو کر ان کو کام کرتے دیکھتا ہوں۔

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

آتم سمرپن کا سنکلپ

(آشرم کی طرف سے)

"اے سروشکتیمان۔ سروگیہ۔ سرواتیت۔ اننت۔ وشو ویاپی۔ پرم پُرش پرماتمن دیو۔ آپ ویکت بھی ہیں اور اویکت بھی۔ نزدیک بھی ہیں اور دور بھی۔ ایک ہیں اور انیک بھی۔ اور اپنی ستّا سے دیوتاؤں اور منشیوں سے لے کر چیونٹی تک سب جانداروں میں اور بے جان چیزوں میں بھی ویاپک ہیں۔ آپ کے چرنوں میں میں نے پورن آتم سمرپن کر دیا ہے۔ یعنی اپنا آپ اور اپنا تن۔ من۔ دھن اور سب کچھ جس کو میں اپنا سمجھتا تھا۔ پورے طور سے آپ کے حوالہ کر دیا ہے۔ اپنی اہنتا اور ممتا (میراپن) کا بلیدان کر دیا ہے۔ کچھ بھی بچا کر نہیں رکھا۔ میری کوئی خواہش نہیں رہی۔ کوئی واسنا نہیں۔ کوئی کامنا نہیں۔ کوئی مرضی نہیں۔ کوئی رائے نہیں۔ کوئی وچار نہیں کہ ایسا ضرور ہونا چاہئے۔ ایسا ہو نہیں سکتا۔ یہ ہو اور وہ نہ ہو۔ سب کچھ ہی آپ کے سپرد کر دیا ہے۔ من میں کوئی بھی اچھا اور بدھی میں کوئی شخصی ارادہ نہیں رہا۔

میں نے اپنے شریر اور انتہ کرن کو اس پرکار آپ کو حوالے کر دیا ہے جیسے ایک انجن اپنے آپ کو ڈرائیور کے ہاتھوں میں ڈھیلا اور آدھین چھوڑ دیتا ہے۔ تاکہ آپ اپنے اننت پریم اور شکتی سے اور اپنے پورن گیان دوارا میرے اندر اپنا کام کریں اور اپنی دَیوی لیلا کو پورن کریں۔ اہنکار کا سروِناش کرتا ہوا کرموں کے پھل کو اور کرموں کو بھی آپ کے ارپن کرتا ہوں۔

پرماتمن دیو۔ میں بھرپورے من اور پوری طاقت سے اپنے آپ کو آپ کے حوالہ کرتا ہوں۔ کوئی شرط نہیں لگاتا۔ کچھ نہیں مانگتا۔ صرف یہی چاہتا ہوں کہ میرے اندر اور میرے ذریعہ آپ کی اِچھا ہی۔ آپ کی اننت شکتی ہی براہِ راست اپنا کام کر سکے اور میں اسنگ اور ساکشی ہو کر اپنے اندر اور باہر آپکی دَیوی شکتی کی کریا کو دیکھا کروں۔ اور ساتھ ہی تمام درِشیہ (نظر آنیوالے) اور ادرِشیہ (نہ نظر آنیوالے) پدارتھوں۔ انسانوں۔ دیوتاؤں۔ اور راکششوں۔ مہاتماؤں اور ظالموں۔ حیوانوں۔ اور

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

اوم

گیت

(گیان چندر گرداب)

ہردے کے پٹ کھول پجاری

ہری کی پوجا کرنے والے　　چھوڑ یہ مندر اور شوالے
آتم بودھ سے ایشور پالے　　ہے یہ گن انمول
پجاری۔ ہردے کے پٹ کھول

دنیا ہے درپن کا مندر　　آتم گیانی اس کے اندر
دیکھے ہر شو اپنا چندر　　بولے سندر بول
پجاری۔ ہردے کے پٹ کھول

ایشور تجھ سے دور کہاں ہے؟　　مورکھ تیرے من میں نہاں ہے
جلوہ اس کا صاف عیاں ہے　　من کو ذرا ٹٹول
پجاری۔ ہردے کے پٹ کھول

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन

(रामवर्षा)

पा लिया जो था कि पाना, काम क्या बाक़ी रहा।
जानना था सोई जाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
आ गया आना जहाँ, पहुँचा वहाँ जाना जहाँ।
अब नहीं आना न जाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
बन गया बनना बनाने बिन, बना जो बन बना।
अब नहीं बानी औ बाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
जानते आये हैं जिसको, जान झगड़ा तय हुआ।
उठ गया बकना बकाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
लाख चौरासी के चक्कर से थका, खोली कमर।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
स्वप्न के मानिन्द यह सब, अनहुआ हो हो रहा।
फिर क्या करना कराना, काम क्या बाक़ी रहा॥
डाल दो हथियार मेरी, राय अब पुख़्ता हुई।
लग गया पूरा निशाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
देह के प्रारब्ध से मिलता, है सबको सर्व कुछ।
फिर जगत् को क्यों रिझाना, काम क्या बाक़ी रहा॥
घोर निद्रा से जगाया, सद्गुरु ने वाह वा!
अब नहीं जगना जगाना, काम क्या बाक़ी रहा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन

रामप्रताप भनौट रायकोट (लुधियाना)

जो दिल को तुम पर मिटा चुके हैं, मज़ाक़े-उल्फ़त उठा चुके हैं।
वह अपनी हस्ती मिटा चुके हैं, खुदा को खुद ही में पा चुके हैं ॥ १ ॥
न सूये काबा झुकाते हैं सर, न जाते हैं बुतक़दे के दर पर।
उन्हें है दैरो-हरम बराबर, जो तुमको क़िबला बना चुके हैं ॥ २ ॥
न हमसे प्यारे! छुड़ाओ दामाँ, न देखो बाग़े-बहारे रिज़वाँ।
कब उनको प्यारे हैं हूरो-ग़िलमाँ, जो तुमको प्यारा बना चुके हैं ॥ ३ ॥
सुना रही है यह दिल की मस्ती, मिटा के अपना वजदे हस्ती।
मरेंगे यारो! तलब में हक़ की, जो नामे-तालिब लिखा चुके हैं ॥ ४ ॥
न बोल सकते थे कुछ ज़ुबाँ से, न याद उनको है जिस्मो-जाँ से।
गुज़र गये हैं वह हर मकाँ से, जो उसके कूचे में आ चुके हैं ॥ ५ ॥
गर और अपना भला जो चाहो, यह राम अपने से कह सुनाओ।
भला रखो या बुरा बनाओ, तुम्हारे अब हम कहा चुके हैं ॥ ६ ॥

Printed by M. Ram Narayan Vedik Dharma Bhushan
at the "Hira Lal Printing Works", Aligarh.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी रामतीर्थ के विचारों की सच्ची सन्देश वाहिका

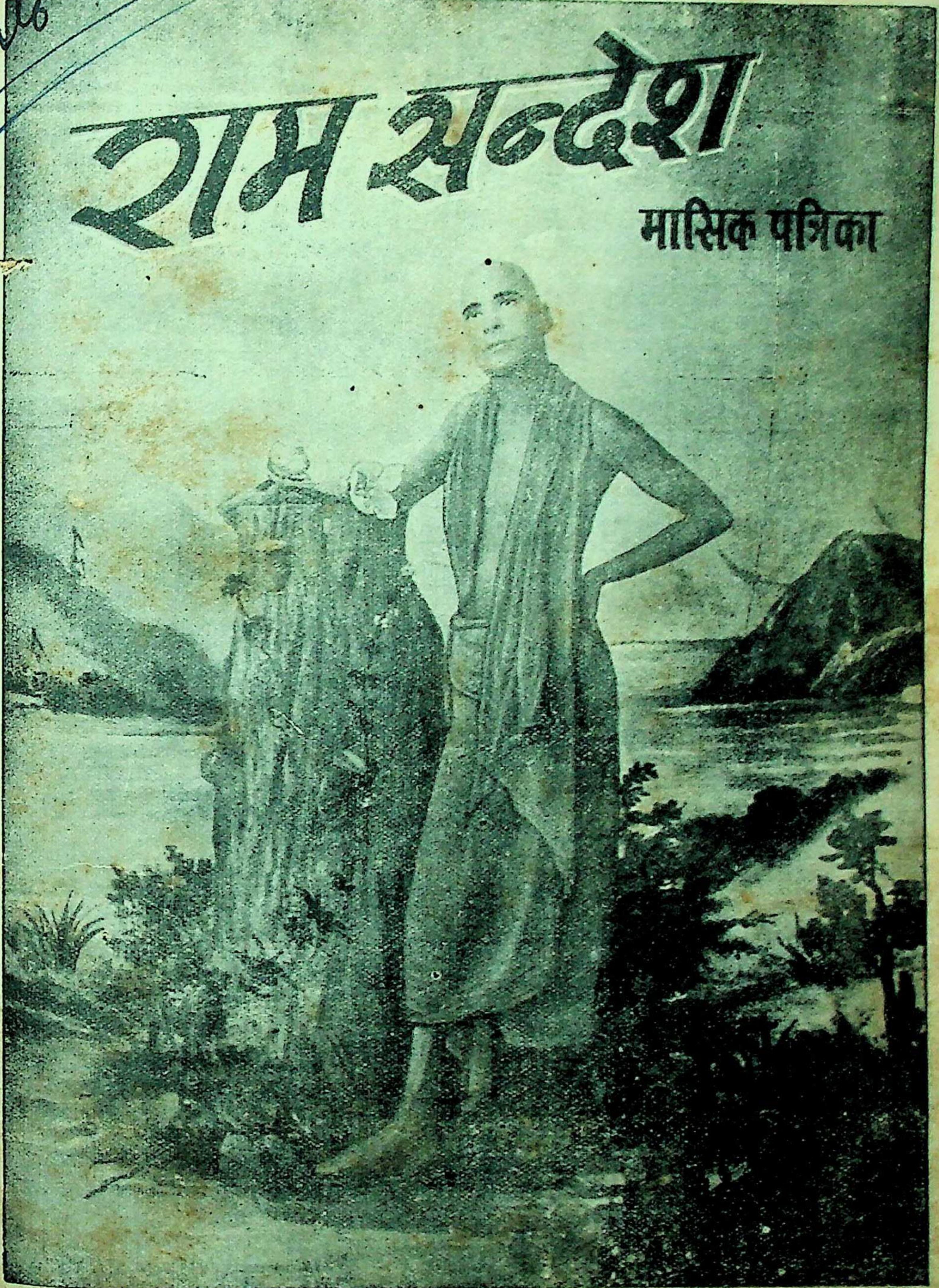

संस्थापक तथा व्यवस्थापक
स्वामी हरि ओंम जी महाराज

[मार्च १९५५]

सम्पादक
सत्यनारायण मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

१	तपसो या ज्योतिर्गमय	— सम्पदक	१
२	उल्टी गंगा व बाहाऐं	— स्वामी राम तीर्थ	२
३	अद्वैत	— श्री डा० पी० नरसिंहय्या	३
४	हिन्दू धर्म में एकता का आदर्श	— स्वामी हरि ओम जी	६
५	ईश्वर और विश्वास	— श्री प्रभाकर	७
६	कविता	— श्री पं० राम नारायण शास्त्री	९
७	सुखी कौन है	— श्री स्वामी गोविन्दा नन्द	१०
८	स्वामी राम तीर्थ चरितम्	— श्री नारायण देव	१२
९	आत्म विश्वास	— श्री स्वामी शिवा नन्द	१५
१०	रामायण की महिमा (कविता)	— श्री केशल देव शास्त्री	१६
११	जीवन कण	— श्री सीता राम सहगल	१७
१२	स्वाध्याय का महत्त्व	— श्री डा० जगत प्रसाद	१८
१३	ब्रह्मचर्य ही जीवन है	— Shri Sawami Sivananda	२०
१४	Glory of Satsang	— Collected	२२
१५	Amrit Bindu		२४

मई माह में होने वाले

अखिल भारतीय वेदान्त अधिवेशन के अवसर पर 'राम सन्देश' का

कौन सा विशेषांक हो ?

सदैव की भाँति इस वर्ष भी आपके 'राम सन्देश' का विशेषांक प्रकाशित होगा इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय लेने से पूर्व हम अपने कृपालु पाठकों का भी मत ज्ञात करना श्रेष्ठ समझते हैं। अतः सभी पाठक, विद्वान लेखक एवम् अन्य सहयोगी इन प्रश्नों का इच्छानुसार उत्तर १५ मार्च १९५५ तक कार्यालय में भेजने का कष्ट करें—

(१) इस अंक का मुख्य विषय क्या हो ?

(२) पृष्ठ, आकार और मूल्य

(३) चित्र, आवरण तथा स्वरूप कैसा हो ?

(४) इस सम्बन्ध में आपके अन्य सुझाव

सम्पादक— 'राम सन्देश' मासिक, राजपुर देहरादून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी राम के आदर्शों का पोषक, जन-जागरण का प्रहरी एक मात्र मासिक

राम-सन्देश

श्री रामतीर्थ मिशन, राजपुर, देहरादून

वर्ष १ | मार्च १९५५ | अंक ३

तमसो मा ज्योतिर्गमय

संस्थापक तथा व्यवस्थापक
स्वामी हरिओम जी महाराज

सम्पादक
सत्यनारायण मिश्र

विश्व के वक्षःस्थल पर होने वाले उत्पीड़न, अन्याय अधर्म के उन्मूलन के लिये राष्ट्रीय, धार्मिक बलिदान के प्रत्येक वृत पर हमारी जातीय आत्मा की आध्यात्मिकता का विस्फोट हुआ है। हमारी जातीय आत्मा कभी नहीं मर सकती वह सदैव यौवन सम्पन्न रहती है। हमें जो ह्रास दीख रहा है वह परिवर्तनशील जगत का एक दृश्य है. जिसमें अभिनव आकांक्षा, जागृति और स्फूर्ति निहित है।

हमें आलोचनाओं की झंझा झकझोर नहीं सकती भविष्यत् की विभीषिकाओं की कल्पना प्रकम्पित नहीं कर सकती क्योंकि हमारी जातीयता का मेरुदण्ड आध्यात्म है।

इस समय हमारा कर्तव्य यह है कि हम एक हो जातीय आत्मा को दुर्बल न बनने दें बल्कि उसकी ओजस्विनी कल्याणकारी ध्वनि को राष्ट्रीय-चेतना का रूप दें।

सुनो! हिमालय की कन्दराओं से हमारे पूर्वज महर्षियों की अमर वाणियाँ पुकार रही हैं, सागर की अनन्त लहरें उन्हें दोहरा रही हैं—

तमसो मा ज्योतिर्गमय

वार्षिक मूल्य ४)
एक प्रति ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीयः—

उल्टी गंगा न बहायें !

प्रायः देखने में आया है कि विपत्ति या अभाव के अनुभव होने पर ही व्यक्ति ईश्वर की याद करता है। यौवन की मस्ती, धन की चकाचौंध, विशाल अट्टालिकाओं की भव्यता, आभूषणों की चमक-दमक, सुख-वैभव और विषय-भोगों की रंगरेलियों में साधारणतया ईश्वर की याद भी नहीं रहती। किन्तु तनिक सी बाधा पड़ने पर, किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर, व्यापार में घाटा होने पर, परीक्षा में अनुत्तीर्ण होजाने पर, या अन्य किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित होते ही स्वार्थी मानव ईश्वर के नाम की रट लगाना प्रारम्भ कर देता है। क्या वास्तव में प्रार्थना का सच्चा स्वरूप यही है ? नही कदापि नही।

हमारी प्रार्थना के दो रूप हैं—एक याचना और दूसरा है आत्म-समर्पण। याचना से प्रेरित होकर की जानेवाली प्रार्थना का मूल स्वार्थ, दीनता, और द्वैष है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपने को जितना अधिक हीन, दुर्बल और छोटा समझकर किसी से मिला जायगा उसपर उतना ही कम प्रभाव पड़ेगा। सुना भी होगा—

बिन माँगे मोती मिलें, मांगे मिले न भीख

अतः कुछ प्राप्त करने की इच्छा से ईश्वर की प्रार्थना करना, भजन करना अथवा सत्संग करना वस्तुतः प्रार्थना का सच्चा स्वरुप नही। यह ईश्वर की पूजा न होकर अपने स्वार्थ या इच्छा की पूजा है। क्या यह उल्टी गंगा बहाना नही ? इसका स्पष्ट अर्थ यही–है कि हम ऐसी प्रार्थना करके ईश्वर को अपना दास बनाना चाहते हैं जिससे जो चाहा वही करवा लिया। किन्तु यह सम्भव नही। इस प्रार्थना का ईश्वर पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़नेवाला, शायद जब आप अपने को हीन और दुर्बल समझकर उसका द्वार खटखटायें तो लताड़ भी खानी पड़ें, धक्का ही दे दिया जाय और दुत्कार भी सहनी पड़े।

किन्तु जब भक्त सब कुछ (स्वयं अपने को भी) अपने इष्ट-देव को अर्पित कर देता है। जब ईश्वर के अतिरिक्त उसका कुछ शेष ही नही रहता, कर्म-पाश में बँधे रहने के कारण जो कुछ करता है वह भी ईश्वर के लिये अपने को केवल निमित्त-मात्र समझ कर। उस समय भला उसका वह राम कहाँ जायगा ? क्या फिर वह उससे अलग रह सकेगा ? नहीं, क्योंकि सदैव—

वश में होते आये भगवान, भक्त के बस में—

वे कौन से भक्त हैं जिनके स्वयं भगवान भी-दास हो जाते हैं, जिनका स्वयं ईश्वर ही आकर सिर दबाते हैं और प्रत्येक कठिनाइ में उलझते ही सहारे के रूप में उपस्थित होकर पकड़ लेते हैं। केवल वही जो उसके हो चुके हैं जिन्होंने निस्वार्थ भाव से उसके सम्मुख आत्म-समर्पण ही कर दिया है। जो साहस और विश्वास के साथ बिना किसी लालसा के ईश्वर के द्वार को खटखटाते हैं। अतः दीन, दुर्बल, हीन और स्वार्थपूर्ति की भावना को लेकर ईश्वर की प्रार्थना न करें और यह उल्टी गंगा न बहायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेषांशः—

अद्वैत [स्वामी रामतीर्थ जी]

जब तुम्हारा यह शरीर नन्हा-सा था, उस समय बुद्धि और विवेक से यद्यपि काम नहीं लेते थे, किंतु तुम वही थे, जो इस समय हो। स्वप्न में भी तुम वह होते हो, जो जाग्रत में हो। जिस प्रकार तुम एक शरीरों में बुद्धि की कारिस्तानियाँ, रक्त का संचालन और वृद्धिकरण कराते हो, वैसे ही अन्य शरीरों में भी तुम ही सब कारीगरियाँ कर रहे हो पत्ते-पत्ते में तुम्हारा प्रकाश है। तुम किस प्रकार कहते थे कि तुम्हारी शक्ति परिच्छिन्न है ?

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठंति यत्र,
तदक्षर वेदयते यस्तु सौम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति॥

(प्रश्नोपनिषद् प्र० ४ मं० ११)

तात्पर्य—हे सौम्य ! जिसने इस ज्ञानस्वरूप अक्षय स्वरूप को पहचाना कि जो समस्त इंद्रियों की, जीवन की और परमाणुओं की चट्टान है, वह सब कुछ जान गया, वह सब में धँस गया। The one thing needful (एक आवश्यक वस्तु) यही है—

इक्को अलिफ़ तेरे दरकार।
बहुता इल्म अज़ाज़ील पढ़िया,
झुग्गा झांझा उसदा सड़िया।
इक्सीं जा अरशाँ ते चढ़िया,
पूरां दे पूर लंघाए सो पार॥
इल्मो बस करीं ओ यार,
इश्को अलिफ़ तेरे दरकार।

एक राजा के पुत्र को (साधारण बालकों के अनुसार) एक छोटी-सी चितरीली थाली के साथ प्रीत हो गई। जब उसके लिये खाने को कोई वस्तु लाई जाती, तो बड़े हठ और आग्रह के साथ कहता कि "मेरी थाली में लाओ तब खाऊँगा ?" यदि किसी बड़े थाल में भोजन परोसकर लाते, तो पैरों से दूर ठुकरा देता, अड़ियलपन दिखाता, और चिल्लाकर डराता अब कोई पूछे, "भैया, सोने-चाँदी के थाल, कटोरे आदि बहुतायत से यहाँ मौजूद हैं, क्या उनका स्वामी कोई और है ?" मगर बच्चा किसकी सुनता है ? अपना ही हठ पाले जाता है। ठीक इसी तरह ऐ सच्चे राजकुमार (आत्म)! तुम अनन्त सम्पत्तिवाले हो मगर जो कुछ इस "छोटी सी चितर ली थाली" अर्थात् बुद्धि (intellect) में धरा हुआ तुम्हारे सामने उपस्थित हो, उसे स्वीकार करते हो, उसे अपना समझते हो शेष सब संपत्ति (स्व त्व) को जवाब देते हो लात मारते हो। यदि बताया जाय कि यह सब अगणित और अपरिमित जायदाद तुम्हारी ही है, अपने तई कैदी न बनाओ, तो उल्टा बुरा मानते हो।

जो कुछ तुम्हारी बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा स्पष्ट होता है, केवल उसे ही स्वीकार करना और शेष सब करतूतों से इनकार करना (अर्थात केवल बुद्धि और इन्द्रियों के साथ ही अपने को अभेद (identify करना, यही तुमको जीव (परिच्छिन्न) बनाता है। ज़रा विचारो तो सही, तुम्हें इस आत्म-हत्या करने का क्या अधिकार है ? एक तंग मुखवाली कुप्पी में भीगे हुए चने पड़े थे, और यह कुप्पी भूमि गड़ी थी। बन्दर ने आकर चनों के लिये कुप्पी में हाथ डाला, और मुट्ठी भर ली। चनों की भरी हुई मुट्ठी मोटी और भारी हो गई, और कुप्पी का मुँह तंग था, इस कारण हाथ बाहर न निकल सका। बहुत कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्न किया, एक न चली, वहीं कैद हो गया। चिल्लाया था, हल्ला मचाया था, किंतु मुट्ठी के चने नहीं छोड़ता था, हाथ नहीं खाली करता था, जिससे स्वतंत्रता प्राप्त हो।

अब बताओ, ऐसे का क्या उपाय ? मेरे प्राण-प्रिय ! तुम्हें कोई कैद करनेवाला नहीं, तुम्हारे लिये बंध कहाँ ? तुमने तो उस हनुमान के नातेदार की तरह इंद्रिय और बुद्धि को इस वेग से (अहंकाररूपी) मुट्ठी में लिया है कि बंदी हो गये हो, परिच्छिन्न हो गए हो, जीव कहलाते हो। क्या ही सच कहा है इमर्सन ने कि 'Every man is god playing the fool' प्रत्येक मनुष्य वास्तव में तो ईश्वर है, किन्तु मूर्खताएँ करता है।

मरजी चेतन की जभी भ्रख मारन की होय।
मृगतृष्णा के नीर में बह चलियो बिन तोय॥

खोलो मुट्ठी। मन और बुद्धि-रूप कुसंग को छोड़ो। केवल एक शरीर में, एक मस्तिष्क में, एक बुद्धि में अपने आप को बद्ध क्यों मानते हो ? तुम मुट्ठी तो खोलो, सबके 'यार पक्के हो'। 'छुरी मारने और तलवार मारने' पर भी तुम्हारी यारी समस्त सृष्टि से नहीं छूट सकती। मुट्ठी खोलो, ग्रंथि दूर करो, समस्त प्रकृति को अपनी दुलहिन बना लो।

दिया अपनी खुदी को जो हमने उठा,
वह जो परदा सा बीच में था न रहा।
रहे परदे में अब न वह परदानशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।
आँ कस कि खाके-मारा गिल कर्दो खाना साख्त।
खुद दरमियाँ दरामदो मा रा बहाना साख्त॥

अर्थ—जिसने हमारी मिट्टी का कीचड़ बनाकर अपना घर बनाया, वह स्वयं तो बीच में आ पड़ा और हमारा बहाना बना दिया (तात्पर्य यह कि करने करानेवाला सब वह है, किंतु हमको मुफ्त में उसका भागी ठहराता है)।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे
(मुंडक० उप०, अ० २, खं २, मं० ८)

अर्थ—उस परम पुरुष के देख लेने पर मन की समस्त गुत्थियाँ हल हो जाती हैं, और समस्त कर्म (फल देनेवाले कर्म) नाश हो जाते हैं।

ज्ञानाग्नि में अपने मन-इंद्रियों की आहुती बनाकर डाल दो उस आत्मदेव के लिये, जो सोतों, जागतों (द्विपाद, चतुष्पाद) का केवल एक ही शासक है।

द्वैत-भाव का रुदन विलाप करनेवाली बुद्धि का बलिदान चढ़ाओ उस अद्वैत स्वरूप के आगे, जो समस्त इंद्रियों, जीवन और शक्ति की चट्टान (पराकाष्ठा) है।

परिच्छिन्न बनानेवाली बुद्धि को लय कर दो उस हिरण्यगर्भ में जिसकी ओर आकाश और धरती काँपते हुए देखते हैं और जिसमें उदित हुआ सूर्य प्रकाशमान है।

जरा भीतर की ओर मुँह मोड़कर देखो। तुम ही हो वह, जिसका तेज हिमाचल पर्वत प्रकट करते हैं, जिसकी महिमा नील नभ (या सागर) जतलाता है।

यस्य मे हिमवंतो महित्वा यस्य समुद्रं रस्या सहाहु।
(ऋग्वेद मं० १०)

अर्थ—बर्फ से लदे हुये पर्वत अर्थात् हिमाचल पर्वत जिसकी महत्ता का जतलाते हैं और जिसकी महिमा को समुद्र प्रकट करता है (वह महान् तू है)।

साईं लोक पुकार दे, कर-कर लंबे हाथ।
तू परमातमदेव है, तू तिरलोकीनाथ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्चे ख़ाकी दरीं जज़ीरा-ए-ख़ाक।
लेक साफ़ी तर अज़ ज़ुलाल तुई॥
बिगुज़र ज़िख़्वेश दर ख़ुद आ यकबार।
ता बदानी कि ज़्विल अजलाल तुई॥

अर्थ—यद्यपि तू इस मृण्मयी भूमि में मिट्टी का पुतला है, किंतु बूँद-बूँद से टपके हुए पानी से भी अधिक स्वच्छ तू ही है। अपने से (अहंकार से) आगे बढ़ और एक बेर अपने आप में आ, अर्थात् आत्मानुभव कर, जिससे तू जान ले कि महान (ईश्वर) तू ही है।

जिज्ञासु—बस भगवान, बस; अब सुनाते किसको हो? सुननेवाले होश तो आपने रहने नहीं दिए।

दिल गुफ़्त मरा इल्मे-लुदुनी हवस अस्त।
तालीमे–कुन अगर तुरा दस्तर्स अस्त॥
गुफ़्तम कि अलिफ़, गुफ़्त दिगर, गुफ़्तम हेच।
दर ख़ाना अगर कस अस्त, यक हर्फ़ बस अस्त॥

अर्थ—दिल ने कहा कि मुझको ऋद्धि-सिद्धि विद्या की चाह है, यदि तुझको इसमें योग्यता प्राप्त हो, तो मुझको शिक्षा दे। मैंने कहा कि 'अलिफ़'। उसने पूछा कि और आगे भी कुछ? मैंने कहा कि कुछ नहीं। दिल के घर में अगर कोई स्थान रखने को है, तो वहाँ एक अक्षर (अलिफ़, अ) काफ़ी है।

प्रजापति के उपदेश को इंद्र बत्तीस–बत्तीस वर्ष तक विचारता रहता था, आपके इस "।" (अलिफ़) रूपी उपदेश को हम पूरे बत्तीस दिन तक एकांत में प्रतिदिन विचारेंगे, फिर और सुनने को उपस्थित हो जायँगे।

(जिज्ञासु प्रेम से चरण छूता है)

ज्ञानी—नारायण! यह क्या? यह क्या? अभी से उस सारे उपदेश को भूल गए। ईश्वर के लिये हमें शरीर रूप न समझो, और न अपने आपको इस शरीर में बद्ध मानो अच्छे जिज्ञासु हो कि आते ही हमें परिछिन्न बनाने लगे। प्यारे! हम तो तेरे भीतर विद्यमान हैं, तेरे शरीर में प्रकाशमान हैं, तेरे घर में पाहुने (मेहमान) हैं, वहीं हमसे अति प्रेम के साथ आलिंगन ही नहीं, वरन एकता-लाभ करो। ऐ मेरे प्राण! घर में मेहमान छोड़कर बाज़ार में फिरते रहना उसका अपमान करना है।

तालिब! मकुन तौहीने-मन दर
ख़ाना अत राम अस्त बीं।
रूताफ़्ती अज़ मन चरा? दर
क़ल्बे—तो पैदास्तम॥

अर्थ—हे जिज्ञासु! मेरा अपमान मत कर। तेरे घर में राम रहता है, वहाँ देख। ऐ प्यारे तू मेरे से मुख क्यों फेरता है, मैं तो तेरे दिल में हर समय विद्यमान हूँ।

अपने शरीर और नाम, बुद्धि और देखने-मात्र के परदों को उठाकर देखो, उसी दम राम से मिलाप होगा।

यार असाडे ने अंगिया सुलाया।
असाँ खोल तनी गल ला लिया।
असाँ घुट जानी गल लाय लिया।
आपे रसिया, आप रस, आपे रावन हार।
आपे ही गल चोलड़ा प्यारे, आपे सेज पधार॥
आपे माछी मछली प्यारे, आपे पानी जाल।
आपे जाल मनक्कड़ा प्यारे! आपे सब दा काल॥
चार कोट चौदह भुवन, सर्वव्यापक राम।
नानक उन न देखिए पूरन ताके काम॥
अलिफ़ ओही हैं ओही सुरूप सोहना,
सही सच विचार ग्याँ ओही हैं तूँ।
जिन्हूँ वेद अभेद पुकारदे नी,
होया चाम चमकड़ी तूही हैं तूँ॥
तू ही विष्णु विरंच सुरेश होया,
कहीं काक तोता कहीं कुही हैं तूँ।
हैं तू ही, हैं तू ही, गोपाल सिंहा,
कुल तूही हैं, तूही हैं, तू ही हैं तूँ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दूधर्म में एकता का आदर्श

—श्री डा० पी० नरसिंहय्या एम० ए०, पी० एच० डी०—

[विदेशियों के भीषण आक्रमण, विरोध की भयंकर आंधी, भौतिकवादी संस्कृतियों के प्रबल प्रहारों और साथ ही अपने कहेजानेवालों की स्वार्थजन्य फूट के बीच भी हिन्दूधर्म जिस भाँति आज तक जीवित है इसका एकमेव कारण एकता और समन्वय की भावना है। हिन्दूधर्म ने सदा से ही अनुपयुक्त सिद्धान्तों का त्याग, योग्य व उचित बातों का सहर्ष स्वागत किया है फिर चाहे वे बाह्य हों, चाहे विरोधियों की। वास्तव में यही भावना इस एकता का आधार है — सम्पादक]

हिन्दूधम का एक अद्वितीय आदर्श है समष्टि की एकता। यह समस्त संसार कपड़े के ताने बाने के समान परस्पर जुड़ा हुआ है, अन्यथा यह जिस प्रकार एक नियमित गति से चलता है वैसे नही चल सकता। यह हिन्दूधर्म के आदेशों में एक महत्त्वपूर्ण आदर्श है। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि यह संसार भिन्न-भिन्न पदार्थों का एक समुदाय है, जैसे जड़ चेतन, कर्मशील चेतन, अकर्मशील चेतन, अचेतन प्रवृत्ति और आदर्शवादी उपयोगिता, दृढ़ स्वभाव और स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति। इन सबमें एक नये प्रकार का नाता अवश्य है। इसका ज्वलन्त उदाहरण मनुष्य का स्वयं अपना ढांचा है। मनुष्य कभी जीवित नहीं रह सकता था जब तक कि उसके भिन्न भिन्न मूल-तत्व आपस में वास्तविकता से मिले न होते। इसीलिये हिन्दूधर्म कहता है कि केवल अपने को समझो यही समस्त विश्व को समझने की कुंजी है।

हिन्दूधर्म यह नही सिखाता कि जड़ सत्य है जैसा कि भौतिकवादी कहते हैं। यह सिखाता है कि प्राकृतिक विकास एक निमर्म संघर्ष है। पाशविक मनोवृत्तियों का हिन्दूधर्म में स्थान नहीं है जैसा कि पश्चिम के जड़वादी ज्ञानी-पुरुष श्री हकसले का मत है। हिन्दूधर्म यह भी नही सिखाता कि मनुष्य में केवल दबी हुई मनोवृत्तियाँ ही पाई जाती हैं और उनपर मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा का कोई प्रभाव नही पड़ता जैसा कि फ्रायड और मैकडूगल का मनोविज्ञान कहता है। हिन्दुत्व का सिद्धान्त यह भी नहीं कि अच्छा जीवन तो अपने सर्वोत्तम सुखों को भोग कर मनुष्य पाता है।

यह बताना कठिन है कि यह पृथ्वी का धरातल किस वस्तु का बना हुआ है अथवा यह कौन सा सिद्धांत है जिस पर मनुष्य का ढांचा स्थिर है? परन्तु यह भी निश्चित है कि कोई न कोई सिद्धांत तो अवश्य ही होगा अन्यथा इस संसार में इतनी एकता का स्वरूप और एक दूसरे का सम्बन्ध न पाया जाता।

इस गहन एकता के मूल तत्व को लेकर हिन्दुत्व धर्म की विधियों का वर्णन करता है। मनुष्य जिस चीज का बना हुआ है उसी वस्तु का यह समस्त संसार बना हुआ है। तत्त्वमसि यह सब उस एक विश्वरूपी ज्वाला की चिन्गारियां हैं।

विश्व के समस्त पदार्थों में घटनाओं में कोई आन्तरिक सिद्धांत है जो उनमें एकता का द्योतक है और यही हिन्दूधर्म की सबसे बड़ी सीख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर और विश्वास

श्री स्वामी हरिओम जी, संचालक, रामतीर्थ मिशन, राजपुर—

[सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्ध और कार्य-कलापों का आधार ही विश्वास है। यदि माता का पुत्र पर, पुत्र का पिता पर, मित्र का मित्र पर इसी प्रकार भाई का बहिन पर यदि विश्वास न हो तो कौन सा सम्बन्ध शेष रहे ? विश्वास की भावना से मनुष्य को बल मिलता है, प्रेरणा प्राप्त होती है। फिर ईश्वर पर विश्वास रखकर यदि कार्य किया जाय तो सफलता निश्चित है। और जो साहस, शक्ति और उत्साह की अभिवृद्धि होगी वह अलग—

सम्पादक]

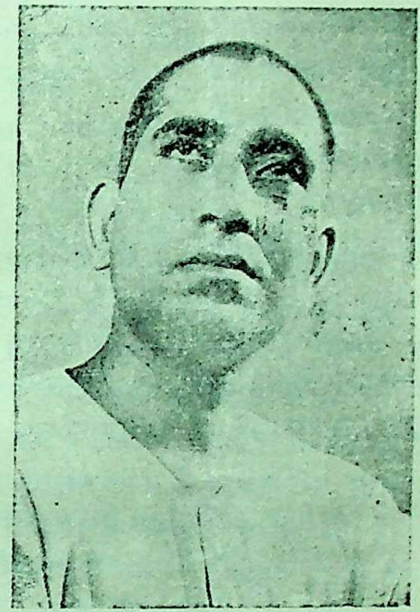

चारों ओर उन्नति का ढिंढोरा पिटा जा रहा है, तरह तरह के आविष्कार हो रहे हैं साथही अनेकानेक प्रकार के भौतिक साधन जुटाये जा रहे हैं। किन्तु फिर भी आज का आदमी दुःखी और सन्तप्त है। आखिर यह दुःख क्या है ? इसका कारण क्या है ? वस्तुतः आत्मविश्वास के अभाव में दुःख है। विश्वास रूपी सूर्य के अस्त होने का नाम दुःख है।

नास्तिक वह नहीं जो टीका नहीं लगाता, अपितु जिसको अपने परिवार, धन व सम्बन्धियों पर तो पूरा विश्वास है पर ईश्वर पर तनिक भी विश्वास नहीं। वास्तव में इसी का नाम नास्तिकता है।

बॉम्बे मेल जा रही है और यात्रियों को आह्वान करती है - देखो मैं सीटी बजाकर जा रही हूं जिसे बैठना हो बैठ जाय। सच्ची आत्मा भी यही कहती है

जब तू उसका (परमेश्वरका) हो जाता है तब सारी वस्तुयें ही तेरी हो जाती हैं। दुःख की निवृत्ति भौतिकवाद की अपेक्षा आध्यात्मवाद द्वारा हो सकती है। क्योंकि यह (आध्यात्मवाद) भौतिकवाद को पग पग पर फेल करता जाता है। किसी भी आत्मवेता ने भौतिक-विद्या को महत्व नहीं दिया। राजा का किसी साधू या सन्यासी के चरणों में झुकना यह साबित करता है कि उसकी प्राप्त की हुई वस्तु राजा की वस्तुओं से महान हैं। वह अमूल्य वस्तु है उसकी आध्यात्म-विद्या। परन्तु राजा के पास जिसका सर्वदा अभाव है। यही कारण है कि राजा स्वयं ही नहीं अपितु अन्य समाज भी उसका आदर और सत्कार करता है।

कि जो आगे बढ़ना चाहता है वह विश्वास के साथ आगे बढ़े। निश्चय ही अपने लक्ष्य तक पहुँच जायगा। लेकिन हम कुछ भी तो प्रयत्न नहीं करते। इतने पर भी हमें समय समय पर चेतावनी मिलती रहती है। संत-महात्मा एक प्रकार से पूँछताछ करने वाले (Enquiry-officer) हैं जो आत्मा की ओर से बजने वाली घंटी की तरफ हमारा ध्यान दिलाते हैं और साथ ही उचित मार्ग-दर्शन करते हैं क्योंकि कहीं लखनऊ के टिकट से कलकत्ता न पहुँच जाँय। रेल के यात्री को जिस प्रकार टाइम-टेबिल द्वारा पता चलता रहता है कि अमुक गाड़ी अमुक प्लेट फार्म से और अमुक समय पर छूटेगी वह उसी के अनुसार अपनी तैयारी और व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। उसी भांति हमारी गीता और रामायण टाइम टेबिल की तरह है जिनको देखने से हमारी विभिन्न समस्याओं और प्रश्नों का समाधान होता है, हमें अपना मार्ग सीधा और सरल दिखाई पड़ता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हमें कहां पहुंचना है और क्या प्राप्त करना है ? हमारा लक्ष्य है— परमानन्द। इसकी प्राप्ति के लिये विश्वास रूपी स्विच दबाना होगा। सूर्य के अभाव का नाम अन्धकार है उसी प्रकार विश्वास के अभाव का नाम भी अन्धकार, दुःख और क्लेष है।

बिना लाभ के संसार में कोई भी कार्य नही होता। एक विद्यार्थी एम० एस० सी० की परीक्षा पास करता है जिससे उसे नौकरी मिल सके। वकालत पास करके अपनी प्रेक्टिस करना चाहता है। एक मैडिकल ऑफिसर नौकरी की तलाश करता है क्योंकि उसके पास भी एक विद्या है। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक विद्या कुछ न कुछ प्रदान करती है। फिर ईश्वरीय या आध्यत्मिक विद्या ही उनसे क्या कम है ? जब भौतिक विद्या कहीं से कहीं पहुंच सकती है तब क्या ईश्वरीय विद्या से कुछ प्राप्त नही होता ? ईश्वरीय विद्या से प्राप्त होनेवाला लाभ कहीं ऊँचा और महान है।

इसके निमित्त हमें अपने अन्दर विश्वास उत्पन्न करना होगा तभी वह लाभ उठा सकेंगे। स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ कुछ ब्रह्म-कुमारियां थीं उन्होंने कहा — हम १०-१५ मिनट में ही भगवान के दर्शन कर सकती हैं। स्वामी जी बोले—"भगवान १०-१५ मिनट भी दूर कैसे रह सकता है ? मैं उस भगवान को नही मानता जो चाहे थोड़ी ही देर के लिये क्यों न हो दूर हो जाता है। मेरा भगवान तो हर समय मेरे पास रहता है। यह है विश्वास का एक आदर्श।

फूल को मसलना कठिन है किन्तु आत्म-प्राप्ति सरल। आपको वास्तव में यह आश्चर्य-जनक प्रतीत हो। किन्तु विश्वास के कारण सचमुच ही यह बहुत सरल है। परन्तु जो जीवन में व्यवहार में आध्यात्मिकता को नही ला पाता उसे ही कठिन लगती है प्रत्येक विषय की पूँछताछ उसी से करनी चाहिये जिससे उसका संबंध होघन के सम्बन्ध में साधु-सन्यासियों से सलाह लो ! उनसे धर्म की ही बात क्यों करते हो चमार से मिठाई, हलवाई से जूतां, डाक्टर से कपड़े की पूँछताछ करना मूर्खता है। धर्म के सम्बन्ध में बातें संसारी से नहीं सन्त-सन्यासियों से पूँछनी चाहिये। लेकिन हम इसके बिलकुल विपरीत करते हैं। पेट की दवा किसी और से मांगते हैं और दिमाग की दवा किसी और से। एक संसारी, ब्रह्मवेत्ता कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर इसी विषय के प्रोफेसरों (साधु-सन्यासियों) से पूँछना चाहिये।

गुरु के बिना कौन सी विद्या प्राप्त हुई है ? सारी बातें सीखते हैं। अपना पराया पहिचानना घरवाले सिखाते हैं, किन्तु सन्त-महात्मा जानते हैं कि उनका एक गुरु है और वह है ईश्वर। जब भौतिक विद्याओं के लिये गुरु की आवश्यकता है फिर आध्यात्मिक विद्या के लिये गुरु की आवश्यकता क्यों नही ? जो अभिमानी हैं वही गुरु की उपेक्षा करते हैं। वस्तुतः गुरु के बिना न है न हुआ और न होगा। जब विश्वास को स्तथ लेकर गुरु से पूँछता है तो वह व्यक्ति जन्म-मरण से तर जाता है। जैसे कबीर, नानक आदि। इसी प्रकार—स्वामी राम के विचारों को मानते हुए भी हमारा जीवन ऊँचा नही होता तो यह हमारे लिये लज्जा का विषय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग प्रेम-नौका पर चढ़ कर,
बढ़ते जाना ध्येय शिखर पर ।

— श्री 'प्रभाकर' —

कंटक-पथ हो चाहे तेरा,
मिले न तुझको सुखद बसेरा,
संग-साथ सब छूट गया हो,
और भाग भी रूठ गया हो,
तू आशा के रथ पर चढ़कर-आगे बढ़ता चल ।
रे राही ! आगे बढ़ता चल ॥

रात अंधेरी, पथ अंधियारा,
देख प्रगति, तम भी हो हारा,
कड़ी धूप में दिवस तपा हो,
चाहे चलते चलत थका हो,
बाधा-कंटक फूल समझकर-चुम्बन करता चल ।
रे राही ! आगे बढ़ता चल ॥

जीवन-रण में बाधा-अरि से,
लड़ता चल तू साहस-सर से,
लक्ष्य खड़ा सम्मुख तेरे हो,
भाग्य स्वयं भी नतमस्तक हो,
साथी ! साहस-सम्बल लेकर-जीवन-पथ पर चल ।
रे राही ! आगे बढ़ता चल ॥

राग-द्वेष की सरिता होंगी,
अमर राह से वे रोकेंगी,
त्याग, प्रेम-नौका पर चढ़कर,
बढ़ते जाना ध्येय-शिखर पर,
देख धैर्य, बल, साहस तेरा-होगी राह सफल ।
रे राही ! आगे बढ़ता चल ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखी कौन है ?

श्री पं० राम नारायणदत्त शास्त्री—

[भोला मानव सुख की कल्पना किस प्रकार के भौतिक पदार्थों में करता है ! कभी धन में तो कभी घर में, कभी स्त्री में तो कभी पुत्र में। इस कृत्रिम और क्षणिक चकाचौंध में वह वास्तविक सुख को भूल जाता है। सच्चा सुख इन दृष्टिगोचर होनेवाले बाह्य जड़ पदार्थों में नहीं अपितु अपनी अन्तरात्मा में है जो चेतन है, अमर है और सच्चिदानन्दस्वरूप है। — सम्पादक]

संसार में प्रत्येक जीव सुख की इच्छा रखता है परन्तु सुख क्या है ? इसके जाननेवाले विरले ही हैं। कोई धन में सुख मनाते हैं तो कोई स्त्री-पुत्रादि में। किसी को सुन्दर रूप प्रिय है तो किसी को सुस्वादु रस। कोई सुगन्ध का प्रेमी है तो कोई श्रवण-मधुर शब्द का। किसी को सुकोमल स्पर्श ही सुखद प्रतीत होता है। कोई मान-सम्मान तथा उत्तम कीर्ति-विस्तार में ही सुख का अनुभव करते हैं। इनमें कहीं भी शाश्वत सुख नहीं है। उक्त वस्तुओं में सुख का आरोपमात्र किया गया है।

धन को ही लीजिये, इसमें क्या सुख है ? उसके उपार्जन में दुःख उपार्जित धन की रक्षा में दुःख उसके नाश और व्यय में दुःख। सर्वत्र दुःख ही दुःख है। उस धन के लिये ही मनुष्य दूसरों का शत्रु बन जाता है। चोर, डाकू, राजा, रंक, याचक सब उस धनवान को ही अपना ग्रास बनाते हैं। स्त्री यदि कुरुपा और कर्कशा हुई तो उद्वेग का कारण बनती है। सुन्दरी और सुशीला हुई तो मोह और आसक्ति पैदा करके नरक की ओर ले जाती है। यही हालत पुत्र की है अच्छा हुआ तो मोह पैदा करता है। बुरा हुआ तो महान् कष्टप्रद होता है। इसके सिवा स्त्री पुत्रादि में से यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो जीवन-भर मनुष्य उनके वियोग में दग्ध होता रहता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श-ये विषय भी विष की भाँति दुःख ही उत्पन्न करनेवाले हैं। जगत में सुन्दर रूप, सुस्वादु रस, मनोहर सुगन्ध, मधुर शब्द और सुकोमल स्पर्श कहीं भी स्थिर नहीं है। आज जो सुन्दर दीखता है, वही कल को कुरूप हो सकता है। सुन्दर से सुन्दर रूपवाली युवती में यदि दुराचरण आदि दोष दीख जायें तो वही उसके पति को अत्यन्त दुःखदायिनी राक्षसी की भांति शाश्वत प्रतीत होने लगती है। अतः सुन्दर रूप भी सुख का आधार नहीं है। जो स्वयं क्षण-भंगुर है, वह नित्य सुख कैसे दे सकता है। यदि सूर्य में प्रकाश की भाँति रूप में सुख होता तो सदा सबको उससे सुख ही मिलता रहता। परन्तु ऐसा नहीं होता। एक ही रूप किसी के लिये सुखद है और किसी के लिये दुःखद।

चन्द्रमा का स्वरूप कुमुदिनी के लिये अमृत है तो कमलिनी के लिये विषप्रद। चकोर के लिये सुखद है तो चक्रवाक के लिये दुःखद। अतः यही मानना पड़ेगा कि उसमें सुख वास्तविक नहीं, भिन्न भिन्न व्यक्तियों की भावना के अनुसार कल्पित है।' सुस्वादु रस, भी कोई स्थिर पदार्थ नहीं है। आज जो स्वादिष्ट और सरस है वही कालान्तर में स्वादहीन, विरस प्रतीत होता है। इसी प्रकार सुगन्ध आदि विषय भी दुर्गन्ध आदि में परिणत होकर दुःख के उद्बोधक होते हैं। अतः विषयों में भी सुख नहीं है। विषयी पुरुषों ने उसमें सुख की कल्पना कर रखी है। ठीक उसी तरह जैसे सुर्ती, गांजा, भांग आदि नशीली वस्तुओं में भी सुख की भावना करके व्यसनी पुरुष उनका सेवन करते रहते हैं और परिणाम स्वरूप दुःख भोगते हैं। मान-सम्मान, कीर्ति-विस्तार में जो सुख का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध होता है वह भी उन वस्तुओं में नहीं है। अपने भीतर का ही सुख उन वस्तुओं को निमित्त बनाकर प्रकट होता है।

ध्यान देने पर हमें दो प्रकार की वस्तुएं इस जगत में दिखाई देती हैं एक जड़ और दूसरी चेतन। एक नश्वर है और दूसरी शाश्वत। एक असत् है दूसरी सत्। एक दुःखमय है और दूसरी सुख-स्वरूप। एक परिच्छिन्न है और दूसरी सर्व-व्यापी। प्रकृति और उसका कार्य जड़ है तथा अखण्ड, एकरस, नित्य सनातन परमात्मा चेतन है। वही सुख-स्वरूप है। इस प्राकृत प्रपंच के अन्तर्यामी आत्मा वही है। हम सब की आत्मा रूप में वही विराजमान है। अतः आत्मा ही हमारे भीतर का सुख है। हमारा जब आत्मस्थ होता है तब वही भीतर का सुख अनुभव करके वह सुखी होता है। जब बाह्य विषयों का आकर्षण पाकर वह बाहर की ओर दौड़ता है, तब आत्मस्थ न रहने के कारण वह अशान्त एवम् दुःखी होता है। कोई मनचाही वस्तु मिल जाने पर जब पुनः अपने आयतन भूत आत्मा में लौट आता है तब वहीं के सुख का अनुभव करके वह सुखी होता है।

परन्तु अज्ञानवश ऐसा समझता है कि उस वस्तु के मिलने से यह सुख हो रहा है। अन्नंभट्ट ने अनुकूल वेदना को सुख और प्रतिकूल वेदना को दुःख कहा है परन्तु एक ही आश्रय में किसी को अनुकूल वेदना होती है और किसी को प्रतिकूल अतः इससे भी सुख-दुःख का निश्चय नहीं हो सकता। सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही सुख है, अतः उसी के आश्रय से नित्य सुख की प्राप्ति हो सकती है। यद्यपि परमात्मा के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है, अतः सब सुख-स्वरूप ही है तथापि इस तत्त्व का बोध न होने से हम सुख से वंचित एवमं दुखी हो रहे हैं।

अतः दुःख वस्तुतः अज्ञान में ही है। ज्ञान ही वास्तविक सुख है। ज्ञान परमात्मा से अभिन्न है, वही सुख या परमानन्द की निधि है। उसी को चाहनेवाला 'सुखी' कहा जायगा। जो परमात्मा से विमुख हो अन्य वस्तु की इच्छा करता है वह दुःख का ही उपासक है। अतः उसे दुःखी ही कहना चाहिये। सुख-स्वरूप परमात्मा को जानने या प्राप्त करने में मुख्यतः बाधा है—काम और क्रोध। काम ही असफल होनेपर क्रोधरूप में परिणत होता है। इस काम की भूख कभी नहीं मिटती। जो इसे अपने हृदय में बसा लेता है वह परमात्म-प्राप्ति से सदा के लिये वंचित हो जाता है। अतः आत्म-शक्ति को सर्वोपरि जान, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से काम को मार भगाना होगा। जो इस शरीर के रहते काम और क्रोध के वेग को जीतने में सफल हो जाता है वही सुख स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। अतः वही सुखी और वही योगयुक्त है। गीता का निम्नांकित श्लोक इसी रहस्य का संकेत करता है-

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीर विमोक्षणात्।
काम क्रोधो द्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

अर्थात् जो मनुष्य शरीर के नाश होने से पहिले ही काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सहन करने में समर्थ है वह मनुष्य इस लोक में योगी है और वही सुखी है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतांक से आगे:—

श्री स्वामि रामतीर्थ चरितम्

—श्री स्वामी गोविन्दानन्द शास्त्री—

एकविंशत्यवस्थायां श्रीतीर्थ
एम० ए० त्वभूत् ।
पुनर्विद्यालये तस्मिन् गणिता-
ऽध्यापनं कृतम् ॥२५॥

२१ वर्ष की अवस्था में श्रीतीर्थराम एम० ए० हो गये थे और वे उसी 'गवर्नमेंट कालिज लाहौर, में गणित पढाने लगे ॥ २५ ॥

तथाऽध्ययनकाले च पाणिग्रहणम--
प्यभूत् ।
बभूव बालकश्चैकस्तीर्थरामस्य
तत्र वै ॥२६॥

अध्ययन काल में ही तीर्थराम का विवाह भी हो गया था और उनके एक पुत्र भी हो गया था ॥ २६ ॥

पर्यटनं काश्मीरस्य
शंकराचार्यसंगतौ ।
कृतं तेनैव पठिता ग्रन्था
वेदांतसंज्ञकाः ॥२७॥

इसके अनन्तर श्री तीर्थराम एम० ए० ने श्री शंकराचार्य (द्वारिकापीठस्थ) के साथ काश्मीर का पर्यटन किया और उनसे प्रस्थानत्रयी आदि वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन भी किया।

किञ्चित्कालांतरे तेन लब्धं
तूर्याश्रमं तथा ।
तीर्थरामाच्च नामाऽभूत्
श्रीस्वामीरामतीर्थकः ॥२८॥

कुछ कालान्तर से तीर्थ राम ने स्वयमेव विद्वत्संन्यास ले लिया और उनके इस आश्रम में उनका नाम हुआ-स्वामी रामतीर्थ ॥२८॥

गंगातटहृषीकेशे नागेशस्य
ह्युपत्यका ।
मुनिकीरेति वै तस्यां ससमाधिस्तदा-
ऽवसत् ॥२९॥

हिमालय की उपत्यका हृषीकेशस्थ गंगातट पर मुनिकीरेति नामक स्थान में स्वामिरामतीर्थ भगवद्भक्ति में तल्लीन रहने लगे ॥ २९ ॥

श्रीमदमरनाथस्य यात्रा वस्त्रं
विना कृता ।
तदासीत् निकटे तेषां ह्यधो
वस्त्रं च केवलम् ॥३०॥

रामने श्री अमरनाथ की यात्रा परिधानवस्त्रों के बिना की और-धोती व दो कोपीन थी ॥ ३० ॥

मन्दिरेऽमरनाथस्य हिमाऽऽच्छा-
दितशीतले ।
तत्रैव नग्नरूपेण बहुकालं
तदाऽवसत् ॥३१॥

उसी हिमाकर शीतल अमरनाथ के मन्दिर में बिना वस्त्र के स्वामी रामतीर्थ बहुत काल तक तपस्या करते रहे ॥ ३१ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषामत्यन्तशीताच्च शरीरं
जड़वदभूत् ।
निदाने सन्निपातस्य दुखं
रोगेण वै गतः ॥३२॥

अत्यन्तशीत के कारण उनका शरीर जड़वत् हो गया, इसके फलस्वरूप उनको सन्निपात हो गया और उन्हें अत्यधिक शारीरिक कष्ट सहना पड़ा ॥३२॥

बहुसेवां करोतिस्म स्वामि—
नारायणे गुरोः ।
औषधिसेवानस्तेषां दूरं रोगं च
वै गतः ॥३३॥

पूज्य श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के शिष्य स्वामी नारायण गुरुदेव स्वामी राम की बहुत सेवा करते थे। निरन्तर औषधि सेवन से वे सन्नीपात रोग से मुक्त हो सके ॥ ३३ ॥

ततः पञ्चनदप्रान्ते सुरम्ये तत्र
स गतः ।
यत्र महाकवेर्वाणी त्वन्येषां तत्र
कास्ति च ॥३४॥

फिर श्री स्वामीराम सुरम्यस्थली पंजाब में गये। वहाँ उन्होंने प्रवचन-किया। अस्तु तत्त्वज्ञ की वाणी के सम्मुख इतरों की वाणी कुत्सित ही है ॥ ३४ ॥

हरलाल सहाय्येन पत्रसंचालनं
कृतम् ।
अलिफस्योर्दु भाषाया विषया—
ध्यात्मयुतस्य च ॥३५॥

अपने प्रेमी भक्त लाला हरलाल की सहायता से उर्दू भाषा में अलिफ नाम का एक अखबार निकाला। जो आध्यात्मिक विषय से परिपूर्ण था ॥३५॥

पुनश्चैकस्मिन् समये तथा
लवपुरे गतः ।
सम्प्रति ब्रह्मसंसर्गात् सूर्यकोटि
समप्रभः ॥३६॥

फिर एक बार स्वामीराम लाहौर गये, इस बार ब्रह्मसाक्षात्कार के कारण उनका तेज अपरिमेय था ॥३६॥

स्थाने तेषां तदा लोका नित्यं
सहस्रसंख्यकाः ।
व्रजन्ति दर्शनार्थ तु
वेदान्तश्रवणाय च ॥३७॥

उस समय स्वामी राम के निवास स्थान पर हजारों की संख्या में लोग दर्शन करने के लिये एवं वेदान्तश्रवण के लिये जाने लगे। ॥३७॥

ततो नागेशयात्रा च
स्वामिरामेण वै कृता ।
तस्यां सर्वाणि तीर्थानि कृत्वा च
आगतो मुनिः ॥३८॥

इसके बाद स्वामी रामतीर्थ ने बद्रीनारायण आदि हिमालय के तीर्थों की यात्रा की और वे इसी यात्रा में सभी तीर्थ करके आ गये थे। ॥३८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा कृष्णलीलाया नगरं
चास्ति शोभनम् ।
तत्रैव गतवान् रामः पूतभूमौ
पवित्रकः ॥३६॥

मथुरा भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की लीला का एक सुन्दर नगर है। निर्मलात्मा महात्मा राम उस पवित्र भूमि में गये ॥३६॥

शान्त्याश्रम प्रयत्नेन
सम्मेलनमभत्तदा ।
एकोत्तरे धार्मिकाणामीशिव-
नवदशशते ॥४०॥

सन् १६०१ में मथुरा में शान्ति आश्रम के प्रयत्न से सर्वधर्मवादियों का एक सम्मेलन हुआ ॥४०॥

सुसम्मत्याश्च सर्वेषां
पदारूढः सभापतेः ।
तेषां च भाषणं श्रुत्वा
मुदितास्तु सर्वेजनाः ॥४१॥

उसमें स्वामी रामतीर्थ सर्वसम्मति से सभापति के पद पर आरूढ हुए। और उनके उपदेश को सुनकर उपस्थित जन आनन्दित हुए ॥४१॥

धर्म महोत्सवाऽन्ते
शिष्यनारायणेन सह ।
काशीलक्ष्मणपुरादिषु भ्रमणं
विधाय च ॥४२॥

सर्वधर्म सम्मेलन के अनन्तर अपने शिष्य नारायण के साथ काशी, लखनऊ आदि नगरों में भ्रमण करते हुए ॥४२॥

पुनश्च टीहरीमध्ये नृपेण
सह तत्र च ।
ततः समागमो भव्यो रामस्य
त्वभवत्तदा ॥४३॥

फिर टीहरी नगर में वहाँ के महाराजा के साथ राम का समागम हुआ ॥ ४३ ॥

राजा प्रवचनं श्रुत्वा
प्रसन्नो ऽभवत्तथैव च ।
स्वामिमं स्वगुरुं मत्वा
शृणोति वचनं सदा ॥४४॥

राजा उनके उपदेश को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और स्वामी रामतीर्थ को अपना गुरु मानकर उनके प्रवचन को सुनने लगा ॥ ४४

टीहरीभूपतेः सत्प्रबन्धेन
ह्यनन्तरे ।
रामेण च विदेशानां कृता
यात्रा सुमञ्जुला ॥४५॥

महाराज टीहरी के प्रबन्ध से तदनन्तर स्वामी राम ने विदेशों की यात्रा की ॥ ४५ ॥

सर्वप्रथमजापानं प्राप्तं
सम्मानपूर्वकम् ।
तेन प्रवचनैस्तत्र प्रतिभा
वै प्रदर्शिता ॥४६॥

वे सर्वप्रथम जापान में सम्मानपूर्वक गये और वहाँ उन्होंने प्रवचनों से प्रतिभा प्रदर्शित की ॥ ४६ ॥

तदनन्तरे जापानात् नागदेशे
तथाऽऽगतः ।
अपारे सागरान् लंघ्य
जलयानेन सो मुनिः ॥४७॥

तदनन्तर जापान देश से अपार समुद्र को जलयान से पार कर रामतीर्थ अमेरिका आये ॥४८॥

—क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-विश्वास

—श्री नारायणदेव ब्रह्मचारी—

पथिक ! क्या तू मार्ग भूल गया है ?

हाँ ऐसा ही अनुमान होता है। मैं अपने निर्दिष्ट स्थान का नाम ही भूल गया हूँ। चलते समय वह स्थान, वह सुन्दर मन्दिर, मेरे इष्टदेव की मूर्ति का वह पवित्र स्थान, मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था, किन्तु अब तिमिर के कारण देख नहीं सकता।

क्या तुम अपने घर से यात्रा करते समय अकेले ही निकले थे ?

नहीं ! दो साथी थे और एक गठरी। मैं मार्ग के कंटक कंकरों की परवाह न करके दोनों साथियों के कन्धों पर हाथ रखकर अग्रसर हो रहा था। गठरी मेरे सिर पर थी। ठोकर खाते खाते मेरे दोनों हाथ ढीले पड़ गये और गठरी गिरने लगी।

मैंने अपने साथियों से कहा—मुझे सम्भालो ! उन्होंने कहा—गठरी को मत छोड़ना। अगर छोड़ दोगे तो वह गुम हो जायगी और हम दोनों तुमको सर्वथा अकेला छोड़कर चले जायेंगे। गठरी से उन दोनों साथियों का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

परन्तु अधिक समय तक मैं गठरी को न संभाल सका। एक ठोकर लगी और गठरी न मालूम कहाँ चली गई। तब मुझे एक गहरी खाई दिखाई दी। उसके दूसरी ओर घोर अरण्य (बन) और नीलाम्बर का साम्राज्य था। मेरे हाथ से गठरी छूटते ही मेरे दोनों हाथ भी खाली हो गये। अकस्मात् दोनों साथी भी अदृश्य हो गये। मैं अभी तक भटक रहा हूँ।

तेरी गठरी में क्या था ?

आत्म-विश्वास !

और साथी ?

साहस और दृढ़ता !

पथिक ! तू तो अपना सर्वस्व ही लुटा बैठा। मेरे पास तो यही एक दीपक है। इसके प्रकाश से तू अपनी खोई गठरी को खोजने में समर्थ हो सके तो दीपक ले जा।

हाँ दीपक दे दीजिये। मैं गठरी को खोजने में जीवन की आहुति दे डालूँगा। प्रकाश बिना मैं असहाय हूँ। धन्यवाद ! लेकिन दयालु अपना नाम तो बताओ।

मेरा नाम 'आशा' है। संसार इसी पर स्थिर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण की महिमा

सर्वोच्च शिक्षा सभ्यता मर्याद मार्ग प्रदर्शिनी ।
आदर्श हिन्दू संस्कृति अरु भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी ।
प्रेम-भक्ति प्रसारिणी अरु ज्ञान-तरणि प्रभामयी ।
लोकप्रिय मृदु गूढ़ सी जब ही पढ़ो तब ही नयी ।

कर्तव्य-शिक्षक युवक बाल अरु वृद्ध दम्पति धर्म की ।
भ्रातृ भगिनी आचरण शुभनीति दर्पण कर्म की ।
आदि कवि की आदि कविता प्रथम माता काव्य की ।
प्राचीन अति इतिहास की नित गुरुजनों के पाठ की ।

सार चारों निगम चौदह शास्त्र अरु सब ग्रन्थ की ।
दैवि शक्ति प्रदायिनी मानों प्रयोगिनि मन्त्र की ।
वाल्मीकी धन्य रामायण जगत हित-कारिणी ।
धन्य तुलसी धन्य मानस भव तरन दोउ तारिणी ।

—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन कण:—

प्यार न करो !

दान के समय धन से, सत्संग और मृत्यु के समय सन्तान से, युद्ध-क्षेत्र में प्राण से, सेवा के समय मान से।

—स्वामी हरिओम जी

उन्नति कैसे होती है ?

उन्नति पुरुषार्थ (जंगोजदल) से, परिश्रम से व कष्ट उठाने से होती है। जो व्यक्ति परिश्रम और प्रयत्न न करेगा। वह नष्ट होगा और कुचला जायगा।

—स्वामी राम

प्रार्थना का सच्चा स्वरुप

प्रार्थना में दो अंश है — एक माँगना। दूसरा अर्पण करना। माँगने का अंश स्वार्थपरता है। अर्पण करना ही प्रार्थना का सच्चा अंश है।

—स्वामी राम

माया क्या है ?

जिस प्रकार सूर्य में सात रंग हैं भी और नहीं भी हैं। उसी प्रकार परमेश्वर में भी सब गुण हैं भी और नहीं भी हैं। इसी का नाम माया है।

—स्वामी राम

सम्राट बना देगा

आपका अपने स्वरुप में लीन होना ही आपको सारे संसार का सम्राट बना देगा।

—स्वामी राम

पहली आवश्यकता ?

अपनी आत्मा में लीन होने के लिये सुधारक महाशय को पहली आवश्यकता हृदय-रूपी पद को ज्ञान-रुपी तेल से तर करने और स्वच्छ बनाने की है।

—स्वामी राम

अहंकार और सफलता

यह प्रकृति का नियम है कि जहां अहंकार होता है, वहां कभी भी सफलता प्राप्त नही होती।

—स्वामी राम

बुरी बला

स्वार्थ कैसी बुरी बला है ? यह पहले तो दूसरों को नुकसान पहुँचाती है और फिर उसका अपना नाश करती है जो इससे काम लेता है।

—स्वामी राम

गुण तथा परिणाम

सत्त्व गुण से ज्ञान, रजोगुण से निसन्देह लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह व अज्ञान भी उत्पन्न होते हैं।

—गीता

सहयोग और सफलता

जिन व्यक्तियों और जिस मनुष्य समुदाय में बुद्धिमान एक उद्देश्य को हाथ में ले परस्पर सहयोग से आगे बढ़ते हैं वहां सफलता हाथ बाँधे खड़ी हो जाती है।

—केशव देव शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाध्याय का महत्व

श्री सीताराम सहगल

[गंगा को सभी व्यक्ति पवित्र और महत्त्वपूर्ण क्यों समझते हैं ? क्योंकि उसका अस्वच्छ, मलयुक्त व दूषित जल बहता रहता है और सर्वदा निर्मल, निरोगी और स्वच्छ जलकण ही दृष्टिगोचर होते हैं। मस्तिष्क की गति भी बिल्कुल ऐसी ही है असामयिक, अव्यवहारिक एवम् अनुपयोगी विचारों से वह कुत्सित हो जाता है। जिसके निराकरण के लिये आवश्यकता है नवीनज्ञान रूपी स्वच्छ जल की, जिसका एवमेव स्रोत है स्वाध्याय। —सम्पादक]

प्राचीन काल से भारतवर्ष साधना-प्रधान देश है। ईश्वर प्रदत्त शक्तियों के पूर्ण विकास के लिये ऋषियों ने वर्ण-व्यवस्था कायम की। जीवन में उदात्त तत्त्वों को क्रियान्वित करने के लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इस वर्ग-चतुष्टय का आयोजन किया। पुनः जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया, जिससे वह आरम्भिक काल को गुरुकुलों में जाकर सुन्दर ढंग से ढाल सकता था। 'ब्रह्म या सत्य' को खोजने की धुन उसे ब्रह्मचर्याश्रम से ही सवार हो जाती थी। इससे उसके जीवन में शान्ति का वरद संचार होता था। इसी काल की समाप्ति पर वह 'द्विज' कहलाता था। 'द्विज' शब्द का शब्दार्थ दो जन्मोवाला होता है। माता के गर्भ से उसका पहला जन्म होता है और दूसरा जन्म गुरू के घर से अर्थात् समावर्त्तन-संस्कार के अनन्तर होता है। इस 'द्विज' उपाधि से मालूम पड़ता है कि भारत में ज्ञान को क्या महत्त्व दिया जाता था। ऐसे उदात्त वातावरण में पनपा हुआ ब्रह्मचारी स्वाध्याय को विशेष ऋण समझता था।

प्राचीन काल में जैसे आज देशसेवा और समाजसेवा की प्रथा को महत्व दिया जाता था वैसे ही यज्ञ—सम्बन्धी अनुष्ठानों को धार्मिक रूप दिया जाता था। इसलिये ग्रन्थों में 'स्वाध्याय' एक महान यज्ञ है। इस अर्थ के विधायक कई वाक्य मिलते हैं। बौद्धिक शक्ति को विकसित करने के लिये यह आवश्यक था कि प्रतिदिन कुछ न कुछ नया ग्रन्थ पढ़ा जाय। जैसे शारीरिक पुष्टि के लिये भोजन आवश्यक है, वैसे ही मानसिक उन्नति के लिये स्वाध्याय का अपूर्व महत्त्व है। इसके प्रभाव को आजकल के दैनिक समाचार पत्रों ने नष्ट कर दिया है। जिसे महीनों बाँचने के बाद 'मृगतृष्णा' का आभास प्रतीत होता है। देश की अन्तर्मुखी वृत्ति को इन्होंने अशान्त कर दिया है। इसके स्थान में यदि कोई ज्ञानवर्धक पुस्तक नियमित रूप से दैनिक एक घंटा पढ़ी जाय तो सम्भवतः एक महीने मे प्रतिदिन २० पृष्ठों के हिसाब से ६०० पृष्ठ की एक पुस्तक का पारायण हो सकता है। इसे पढ़कर मनुष्य के विचारों में एक महान क्रान्ति पैदा हो सकती है। जैसे किसी तालाब या नदी में नया जल न आये तो उसका पानी गंदला हो जाता है और उसमें कीड़े भी पड़ने लग जाते हैं। वैसे ही नये सद्विचारों के अभाव में हमारी वृत्ति भी कलुषित हो जाती है। इसलिये जीवन में नया संचार करनेवाला स्वाध्याय आवश्यक है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य में वृद्धावस्था उदात्त विचारों के ह्रास से शुरू होती है तो अथर्व वेद में वर्णित देवताओं की ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु पर विजय अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। मूल की श्रुति इस प्रकार है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्री ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्।

इस मृत्युञ्जय स्वाध्याय का महत्व आज भी काशी के विद्वान समझते हैं। उनमें एक अखंडित परम्परा पायी गई है। वे एक शास्त्र के समर्थ विद्वान होते हुए भी सायंकाल शास्त्रान्तर के अध्ययनार्थ अपने ही शिष्य के पास जाते हैं। विदेशों में भी ऐसे कई विद्वान हैं, जो आजीवन सरस्वती की उपासना में यापन करते हैं। देश के प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिज्ञ, उनका हृदय से सम्मान करते हैं।

भारत में इसका महत्त्व अतीत काल में कैसा था। इसकी झाँकी ऋग्वेदीय कौषीतक गृह्यसूत्र के एक स्वतंत्र खण्ड में उपलब्ध हुई है। जिसका हिन्दी-अनुवाद यहाँ उद्धृत किया जाता है —

(१) छब्बीस कारणों से अथवा अपरिमित कारणों से ब्राह्मण को स्वाध्याय के नियम का पालन करना चाहिये।

(२) क्योंकि वह एक बड़े कुल में पैदा हुआ है।

(३) स्वाध्याय से शक्ति बढ़ती है।

(४) पूर्वज विद्वान थे। इसलिये परम्परा की प्रतिष्ठा कायम रखनी चाहिये।

(५) ऐसा आचरण श्रेष्ठ है।

(६) यह ब्राह्मण का ऋण है।

(७) पूर्व आचार्यों के चरित्रों का अध्ययन प्रेरणा-पद होता है।

(८) अध्ययन के बाद ही कार्य और अकार्य का भेद मालूम कर सकूँगा।

(९) विद्वानों की सब जगह पूजा होती है।

(१०) शिष्य लोग उनकी सेवा करते हैं।

(११) सर्वत्र विद्वान का यश फैलता है।

(१२) मेरे स्वाध्यायशील होने से माता और पिता स्वर्ग लोक में सुख भोगेंगे।

(१३) स्वाध्याय से जल्दी ही पापों को दूर कर सकूँगा।

(१४) स्वध्यायशील व्यक्ति सभी लोकों में जा सकता है।

(१५) उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं होता

(१६) वह जन्म बन्धन के चक्र से मुक्त हो जाता है।

(१७) विद्या को चोर भी नही चुरा सकते।

(१८) एक एक ऋचा ठीक ढंग से अभ्यस्त की हुई कामधेनु के समान सद्यः फलदायिनी होती है।

(१९(जिस जिस यज्ञ का अध्ययन करता है। उस-उससे इष्ट वस्तु की ही प्राप्ति होगी।

(२०) संचय करने वाले को चोर, राजा अग्नि और पानी से हमेशा डर रहता है। विद्वान लोगों की वृत्ति अक्षय और निर्भय होती है। वे जगत में सुखी होकर विचरते हैं।

(२१) वेद—ज्ञान के प्रयोजन को बतलाने के लिये यह वाक्य पूर्ण है। सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर स्वाध्याय के लिये यत्न करना चाहिये।

(२२) जो जागता है, उसे ऋचायें भी चाहती हैं। जो जागता है, सांप भी उसके पास चाव से जाता है। जो जागता है, उसे सांप कहता है कि मैं तुम्हारे साथ मित्रता करूंगा और आश्रय दूंगा।

उपर्युक्त वैदिक सन्दर्भ आधुनिक पाठकों को प्राचीनता से भरा हुआ मालूम पड़ेगा। परन्तु ध्यान से देखा जाय तो यह ध्रुव सत्य से पुष्ट है। यह अपने ढंग का बेजोड़ प्रवचन है। एक सूत्र के आधार पर न जाने उत्तर कालीन शास्त्रकारों और कवियों ने कितने सूत्र पद काव्यों का निर्माण किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण सूत्र छठा है जिसमें स्वाध्याय को ऋषि ऋण कहा गया है। आज की भाषा में इसे 'राष्ट्रीय-ऋण' कह सकते हैं। यह ऋण सर्वप्रथम है. जिसे हमें शोधना ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

श्री डा० जगतप्रसाद दीक्षित एम० बी० बी० एस, बी एण्ड बी० ए०

[स्वार्थ के वशीभूत होकर मानव के द्वारा धर्म की धज्जियाँ उड़ायी जा रही है, आध्यात्मिकता को ठोकर मारी जा रही है। इसका क्या कारण है? एक मेव भौतिक वाद का आश्रय लेना, भोग—विलास को ही जीवन का उद्देश्य समझ बैठना। इस विनाशकारणी भावना ने भारतीय समाज से ब्रह्मचय की पवित्र व शक्तिदायिनी व्यवस्था को ही नष्ट कर दिया जिसके फलस्वरूप आज का व्यक्ति मान के चोगे में दानव बना हुआ है।--सम्पादक]

ब्रह्म का अर्थ है ईश्वर तथा चर्य का अर्थ है पालन करने वाला, अर्थात प्रकृति के नियम पर चलने वाला। प्राचीन काल में उक्त धर्म पर चलने के लिये ऋषि-महर्षियों ने बड़े प्रयास किये और जनता को इस धर्म की शिक्षा दी। इसी के परिणाम के ज्वलन्त उदाहरण हैं राम, लक्ष्मण, हनुमान भीष्मपितामह, आदि ब्रह्मचर्य के धारण करने वाले।

इन पुरुषों के सदाचरण का स्त्री जाति पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा इस से स्त्रियों सदाचारिणी हो गई और वीर सन्तानें उत्पन्न की जिससे देश का गौरव, सम्मान, देशप्रेम, जातिप्रेम, सद्भावनाएें, सत्यता, सहनशीलता आदि का जन्म हुआ।

कलियुग और साथही पाश्चात्य सभ्यतर का भारतवर्ष की सामाकि दशा पर बुरा प्रभाव पड़ा, इस के फलस्वरूप सहसिदा को एजुकेशनने तो ब्रह्मचर्यजीवन को नष्ट ही कर दिया। पहिले समय में युवती कन्याऐं इस प्रकार के वस्त्र पहनती थी जिससे शरीर की रक्षा हो, और अंग निर्लज्य न प्रतीत हो और दर्शकों को यह न प्रतीत हो कि वह युवति है। स्त्रियाँ श्रृंगार करती थी केवल पति के हेतु। इधर-उधर के लोगों को आकर्षित करने के लिये नही।

अब नया युग है नया वातावरण है पाश्चात्य देशों के जीवन की नकल है इसने वीरांगनाओं के भाव ही समाप्त कर दिये। फिर संसार में वीर पुरुष कहाँ से जन्म ले? आज तो स्त्रियाँ आठों पहर पुरुषों को काम-शास्त्र का पाठ पढ़ाती हैं और स्वतः ही एक अभिनेत्री की भाँति रंग-भूमि रुपी बाजारों में तथा प्रदर्शनियों में अपने रूप का प्रदर्शन कर भारत के युवकों के पुरुषत्व को क्षीण करके भीरू बनाती हैं।

इस कलियुग में कृत्रिम रूप को लाने वाला बनास्पती घृत हैं। रक्त की स्वल्पता के कारण नाखन ओष्ठ तथा गाल फीके पड़ जाते है। किन्तु-रुपये बारह आने में ही बनावटी साधनों से फ्राँस की युवती बन जाती हैं। संतान को जन्म देती हैं तो इन्जेक्शन की सहायता से क्योंकि गर्भ जनन की पीड़ा ही सहन करने की शक्ति कहाँ; और जब भारत के लाल को जन्म दिया तो वह इतना स्वस्थ होता है कि श्रीमतिजी से उठाये भी नहीं उठता। श्रीमान जी को हारकर यह करना पड़ता है। लाल का जन्म होते देर नही होती झट डाक्टर को दिखाया जाता है। भाग्य में स्वस्थ होना हुआ हो गया नही तो मही में दाब दिया। यह क्या पुरुषों तथा स्त्रियों में शक्ति का अभाव तथा काम वासना की अधिकता नही ?

भारत के प्यारे लालों जब कि समाज की यह दशा है। माताओं तथा बहिनों की यह भावनाऐं हैं, देश अपनी प्राचीन संस्कृति तथा धर्म को भूल चुका है, सामाजिक भय तथा बन्धन जो धर्म की आड़ में पुरुषत्व की भावनाऐं उत्पन्न करता था वह विलीन हो चुका है। जहाँ गर्भ में चक्रव्यूह भेदन सीखा जाता था वहाँ पर माँता पिता की कुतिसत भावनाओं से काम-शास्त्र सीखा जाता है सिनेमाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमाला व, प्रेमा भरी कहानियां तथा उपन्यास आदि। मादक वस्तुओं का व्यवहार जैसे सिगरेट शराब अदि जो आज के संसार में सभ्यता के नाम से पुकारी जाती है जैसी स्थिती में ब्रह्मचर्य का पालन बहुत ही कठिन है।

भारत के महारथी वेदान्ताचार्य श्री कृष्ण का गीता में आदेश है कि मैं कुछ नहीं करता, प्रकृती प्रकृती में बरतीत है जहाँ यह भाव वहाँ आज कामदेव का बोलबाला है यानि पुरुषत्व का अन्त है। इसी कारण आज कल के युवक तथा युवतियाँ कहते हैं कि बचपन है और बुढापा। जवानी का तो पता ही नहीं कब आई और कहाँ चली गई। इस से सिद्ध है कि वीर्य नाश ही मृत्यु है और ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

पृष्ठ १९ का शेषांक

स्वाध्याय के बिना हमारी चिन्तन और मनन शक्ति नही बढ़ सकती। बड़े बड़े कार्यालयों में महापुरुषों के वाक्यों को सुन्दर अक्षरों में लिखवाकर लगाया जाता है। उसका क्या प्रयोजन होता है ? हम प्रमाद से भी उन भूलों को न करें इसलिये यह परिपाटी चलायी गयी है। आज के युग में दैनन्दिनी तथा कैलेन्डर पर भी नोट करने की प्रथा है। जिसका अभिप्राय प्रमाद न करना है। 'स्वाध्यान्मा प्रमादः' आदि श्रुतियों का भी यही निष्कर्ष है।

जैसा कि उपर लिखा गया है कि भारत में जीवन का लक्ष्य मोक्ष ही रहा है वैसे ही युग-युग में मनीषियों ने इस मन्तव्य को उस समय की भाषा में प्रति पादित किया है। अज्ञान के आवरण को दूर करने के लिये दैनिक स्वाध्याय ही कए सफल कुंजी है। चिन्ता-मनन के बाद प्रज्ञा में स्थिरता और बाद में कर्म-चक्र से मुक्ति मिल सकती है। इसलिये गीता में कहा गया है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Glory of Satsang

—Shri Swami Sivananda

[Satsang encaurages the spritual ideas and feeling in man. Every body bomes fortunate and successfue through some moment of Satsang. There are so many examples of Rishis and Mahrishi whose life rautine was charged too, towards the path of truth righteousness and justice eg. Balmiki, Kabir, Tulsi and Sur. etc. —Editor]

This is a great need of the hour, Many people can gather togather. When people join togather and sing the Lord's Name and pray, a great spritual force is generated. That is the glory of Satsang. If you shut yourself up in your room and do Japa and mediation, you may not progress so fast, if you form a small Satsang group and all of you do Japa togather and mediate togather, the spritual force generated will help you all. You will make rapid and wonderful progress. When you attend a Satsang. You will forgett the worries of the world. You are in an entirely different atmosphere.

It is Satsang alone that can transform man in these days. Sublime ideas must be constantly dinned into the ears of man. Then only will his heart be transformed. But nowadays there is such dishonesty in business that every article is adulterated. Adulteration of foodstuffs is rampant every where Man is selfish and has no sense of duty. At the moment of death, your conscience will prick you. You will have no peace of mind either now or at the time of death or ever afterwards. Dishonesty, kills your conscience, it is worse than Atma-Hatya. It is like killing yourself. Be honest. Have a pure heart, clean mind and clear conscience. Even if you are poor, you will be happy. If you are honest, the whole wealth of the world will belong to you. The man is not rich because he has a lot of money in the bank. Only that man is really rich whose heart is rich. Each virtue is worth more than a crore of rupees. Cultivate a charitable heart. You are spending a lot of money on the clothes of your wife and children, give plenty of money in charity, for the construction of temples and Satsang Bhawanas. They are great assets of the whole world.

Through your charity, there must be Gita Bhawan in every town, in every Mohalla. What a wonderful thing it will be! There will be Satsang everywhere. In those Satsangs people will learn of Dharma. They will be transformed. The entire society will be transformed. Sublime ideas and ideals will enter the hearts of people. Dishonety will disappear. Dharma will reign supreme. Peaple will become "'Sarvabhutahitrath' (devoted to the welfare of all being) feeling that the entire world is one femily. One life one consciousness, one self, dwells in all, just as one sun and one moon

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

shine over the whole world. But the power of Maya shows every thing as different. The scavenger and the cobbler are your own-self. It is Maya that makes you feet "This man is inferior and the other man is superior." Vedanta speaks of unity. All are one. This truth has to permeate your entire being. That can be done only through Satsang.

You should constantly hear and dwell upon such sublime ideals. Some Vedantic students go about saying "There is no world in the three period of time". But, if there is a little less salt in their Dal or less sugar in their milk. They would be upset. This lip-Vedanta will not do. You have to be practical Vedantins. You can become practical Vedantins only through constant Satsang.

You must learn the principles of real life through Satsang. Real life is living for others. You beautify yourself by wearing dimond rings and Banareas Sarees. Is there beauty in dimond rings and Banarees Sareas ? Siva-Bhav, charity is real dimond. You dress youtself nicely and see yourself in a mirror a thousand times, does that gives you beauty ? Beauty is within. Infinite beauty dwell in the chembers of your heart. Jyotishamapi Tat Jyoti Tamasah Param uchyate Jananam Jnanagamyam Hridisarvasya Tishtitam. You spend all your time in beautifying this body ! Morning you have a shave, in the evening you have an another shave. This is all vaste of precious time, precious life. You must learn to utlise time properly through Satsang.

Love all. Embrance all. Be kind to all. Help the downtrocden brother. In steab of having six or seven shirt for yourself, give a shirt to the poor man Thus only can you evolve. Thus only can you realise the Atama which is the one self that deveels in all.

Try to see good in everybody. Do not develop the Dosha-Drishti fanct-finding nature. Your evil mind, your lower nature, will try to ignore the good qualities that are in man and try to see his only defects. You will have to cultivate the eye of discrimination. Human nature is such that man tries to see only defcts in others, yon will even superimpose evil upone persons in whom such evil qualities do not exist. Through Satsang and study, you will have to eradicate this nature. You will have to cultivate the habit of seeing only good in others. Then only will you be able to unite with all. You will be able to recognise the goodness in all. You wan't have Gharina, hatred etc. You will love to cultivate this habit

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

through Satsang.

What spritual benifit you can not get in five years of study, you can have in one Satsang. You have experienced it now. I am not deceiving you. You actually feet it. Aparksha-Anubhuti. When you sing Kirtan here, you have forgotten the world. What made you forget the world and rise above body-consciousness ? It is Kirtan of Lord's Name, it is Satsang.

Only in Satsang will you be vigilant You will enter into Bhav-Samadhi here But when you attempt to do Japa in your own room. You will get another kind of Samadhi-deep sleep ! One man wanted to know the easiest way of controlling and annibilating the mind The precptor said:—"Take rice and sour curd to your bellyful. Ly down on a good bed, soft and comfortable. Have good pillows for your head and feet. Relax. Breath deeply. You will go beyond the mind". That is deep sleep That is what you will get if you sit alone in your room and try to do Japa and madiation. When you are in Satsang You are vigilant, and you get the help of the spritual vibrations of entire gathering.

Amrit Bindu

Two things which awe me

Two things in the universe awe me the most The stars in the heavens, and the sens of moral responsibility in men.

–Long Fellow.

Lesson of Toleration

The best lesson of toleration is to tolerate intolerence.

Golden Ladder

Love is ever a golden ladder,
whereby the heart ascends to Heaven.

— Pope

Root of all evil.

The love of money is the root of all evil.

–Addison

Peace-maker and breaker

The peace-maker shall inherit the Kingdom of Heaven.

The peace breaker shall go to hell.

—B. Malbari

Weep not for......

Weep not for loved land lost,
Weep not for fair hopes crost.
Weep not for limbs wax old.
Weep not when friends grow cold.
Weep not when death must part.
Thine and the best loved heart.
Yet weep, wap all thou can.
Weep weep because thou art a
sin defiled man.

–Thomas Morre

Life itself is Service

Only through service can we ensure,
the Blessedness of self-respect.
Life itself is Service,
Do your duty come what may.
for that alone can give satisfaction
to the soul, and before that all
the pleasures of life pale into insignificance.

–Lord Budha

Two Enterna notes:-

The bird of life is singing on the bough.
Its two Eternal notes of I and Thou.

–Byron

Power of Truth

Think Truth, speak Truth, act Truth. Then only you shall acquire the power to know Truth, when you see it with a swift-intvition which is above all reason.

–Annie Besant

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

— व्यवस्थापकीय नियम —

१ साधारणतया 'राम सन्देश' प्रत्येक माह के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२ दस तारीख तक यदि किसी ग्राहक को 'राम सन्देश' न मिले तो अपने पोस्ट ऑफिस से पूँछताछ करने के उपरान्त उनके उत्तर के साथ कार्यालय को लिखना चाहिये।

३ 'राम सन्देश' का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है। यद्यपि ग्राहक किसी भी मास से बना जा सकता है परन्तु पिछले अंक भी ग्राहक को लेने होंगे।

४ कम से कम पाँच ग्राहक बनानेवाले असमर्थ बन्धु को 'राम सन्देश' वर्ष भर निःशुल्क भेंट स्वरूप ही प्राप्त हो सकेगा।

५ वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती। समय और धन दोनों की ही बचत देखते हुए कृपालु पाठक मनिआर्डर ही भेजने का कष्ट करें।

६ पूँछताछ के लिये हमेशा जवाबी कार्ड भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक— 'राम सन्देश', मासिक, राजपुर, देहरादून।

सूचना

किसी भी प्रकार की शिकायत सीधे कार्यालय को करनी चाहिये अथवा उसको दूर करने में हम इच्छा रखते हुए भी भी असमर्थ है।

प्रश्न-पिटारी

पाठकों के उत्साह को देखते हुए आगामी अंक से ही इस स्तम्भ को प्रारम्भ किया जा रहा है। यद्यपि प्रश्न पर्याप्त संख्या में हमारे पास पहुँचे हैं। तथापि पाठक-पाठिकायें शीघ्र ही अपने अपने प्रश्न सम्पादक के नाम भेजना प्रारम्भ करदें क्योंकि प्रश्नों का उत्तर क्रमशः दिया जायगा।

कृपया दो प्रश्न से अधिक भेजने का व्यर्थ कष्ट न करें।

——सम्पादक

पाठकों से

"राम सन्देश' में शीघ्र ही अन्य स्तम्भ भी प्रारम्भ करने के लिये अनेक आग्रहपूर्ण पत्र आ रहे हैं। अतः हम पाठकों को इस विषय में विचार करने का एक बार और अवसर दे रहे हैं।

कृपया अन्य स्तम्भों के सम्बन्ध में अपने विचार, सुझाव तथा मत कार्यालय में भेजें जिससे उन पर ध्यान दिया जा सके।

——सम्पादक

Printed and published K. L, Kapoor B. A. at the Bedi Printing Press 57 Dispensary Road Dehradun for the Ram Tirtha mission Rajpur, Dehradun U. P.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम समाचार :—

श्री रामतीर्थ मिशन, राजपुर

SAHARANPUR 9-3-55

मिशन द्वारा संचालित 'धर्मार्थ औषधालय' की प्रगति तीव्र गति से हो रही है। दूर दूर के रोगी यहां आकर आरोग्य लाभ उठा रहे हैं। गत माह में १२८९ (एक हजार दो सो नवासी) रोगियों ने यहां से आरोग्य लाभ प्राप्त किया।

स्वामी हरिओम जी बम्बई से बंगलौर होते हुए १९ फरवरी को कलकत्ता पहुँचे। इस बीच में अनेक स्थानों पर कार्यक्रम हुए जिनमें होनेवाले आपके प्रभावी, सरल और मधुर भाषण तथा विचारों ने जनता को काफी प्रभावित किया।

इसके उपरान्त प्रयाग और लखनऊ आदि स्थानों पर होते हुए मार्च के पहले या दूसरे सप्ताह तक आश्रम पर पहुंचेगें। लगभग एक सप्ताह आश्रम पर ठहर कर अप्रेल के प्रथम सप्ताह में देहली, जालन्धर और अमृतसर जाने का कार्यक्रम निश्चित हुआ है।

हरिओम सत्संग सभा

रायकोट, जिला लुधियाना

इस सभा को पंडित रामप्रताप भनोट, रिटायर्ड इंस्पैक्टर आर० ऐस० ऐस ने ५ फर्वरी सन् १९५० को स्थापित किया था और उस समय से अब तक इसके साप्ताहिक सत्सग प्रत्येक रविवार को प्रातः दो घंटे उनके मकान पर लगते हैं, जिन में भगवद्‌गीता, उपनिषद् और गुरुग्रन्थ साहब की बाणी का पाठ, व्याख्या और परस्पर विचार, कीर्तन भजन और स्वामी रामतीर्थ जी की पुस्तकों का स्वाध्याय होता है सभा का उद्देश्य सभासदों का अपना सुधार और आत्मोन्नति है। स्वामी रामतीर्थ के व्यावहारिक वेदान्त को जीवन का अंग बना कर आत्म-समर्पण, आत्मज्ञान और आत्म-चिन्तन के निरन्तर अभ्यास द्वारा दैवी जीवन प्राप्त करके जीवन मुक्ति की उपलब्धी करना है जो नक़द धर्म है। पंडित रामप्रताप जी ने बसन्त पंचमी २८ जनवरी १९५५ को सन्यास धारण कर लिया है और उनका नाम अब "स्वामी नित्य स्वरुपानन्द" है।

वर्ष १९५५ के लिये निम्नलिखित सज्जन सभा के अधिकारी चुने गये हैं :—

(१) प्रधान—ला० नन्दलाल थापर-रिटायर्ड हैडमास्टर।

(२) उप प्रधान—ला० दौलतराम अरोड़ा।

(३) मंत्री—मास्टर किशोरी लाल उप्पल।

(४) उपमंत्री { (१) मास्टर राम रतन। (२) सरदार दरबारासिंह-सैनिटरी इन्सपैक्टर।

(५) संचालक—स्वामी नित्य स्वरुपानन्द (जिनका नाम पहिले राम प्रताप था)

(६) संरक्षक—(१) डाक्टर गूरुबचनसिंह-इनचार्ज सरकारी हस्पताल, रायकोट

(२) सरदार सोहनसिंह, गुरुद्वारा कमेटी रायकोट।

सभा के मैंबर यद्यपि थोड़े हैं परन्तु सच्चे जिज्ञासु और चुपचाप साधन करनेवाले हैं।

समाचार सूचना

श्री रामतीर्थ मिशन की शाखाओं के व्यवस्थापकों को सूचित किया जाता है कि वे अपने अपने स्थानों के सत्संगों, सभाओं और उत्सवों की सूचना प्रकाशनार्थ भेजें।

आशा है भारत के सभी स्थानों के राम प्रेमी सज्जन समय समय पर होने वाले राम-प्रचार-यज्ञ की सूचना भेजकर हमें सेवा का सौभाग्य प्रदान करेंगे। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रामसन्देश-श्री रामतीर्थ मिशन, राजपुर-देहरादून (उ० प्र०)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ अङ्क १२

१९५७ दिसम्बर

वार्षिक मूल्य ४) एकप्रति ३८ नये पैसे

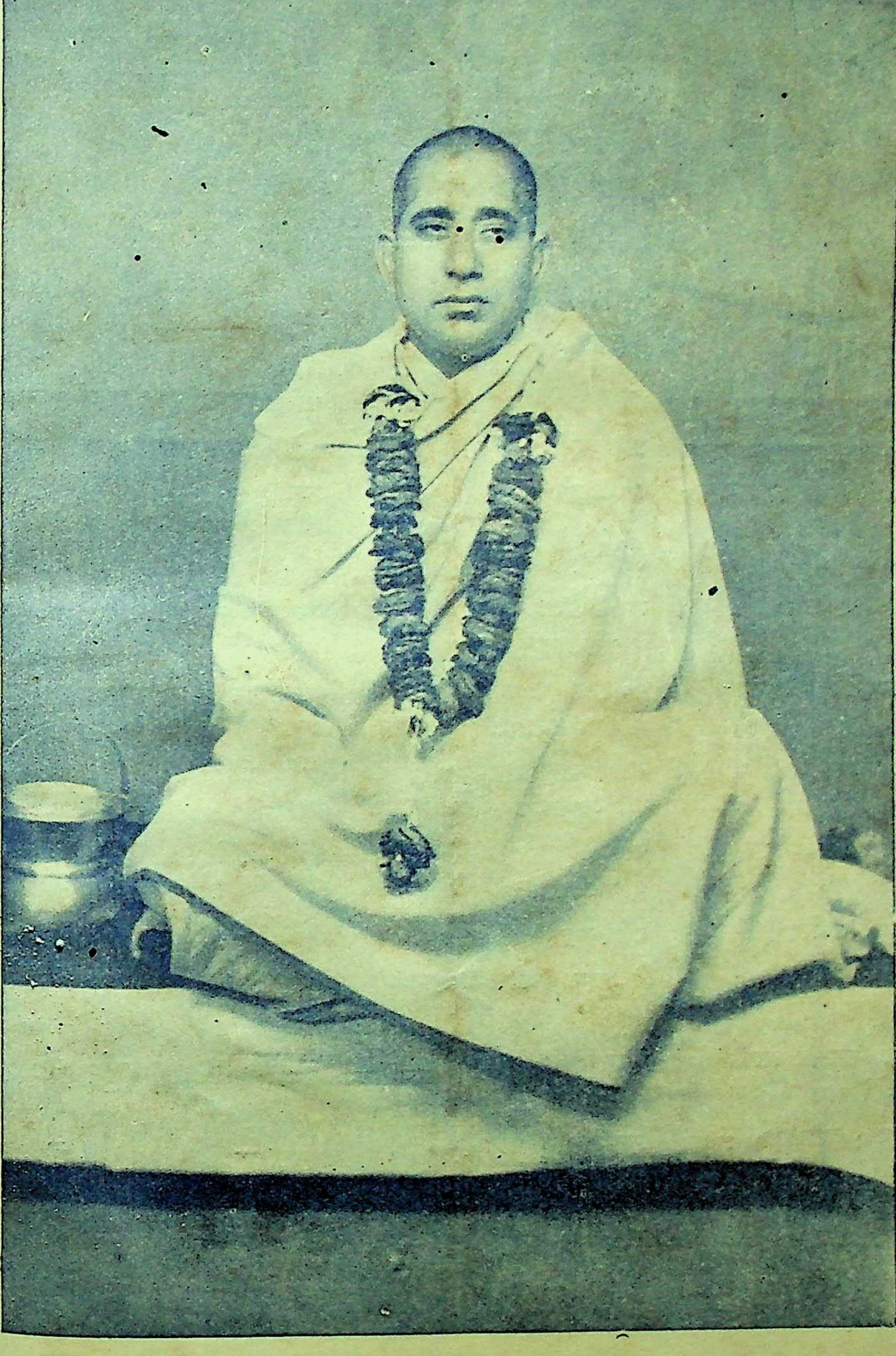

संस्थापक
ब्रह्मलीन स्वामी हरिॐ जी महाराज

सम्पादक तथा व्यवस्थापक
स्वामी गोविन्दप्रकाश "वेदान्ताचार्य"

सहायक सम्पादक
विष्णुदत्त पाण्डेय "शास्त्री"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-विज्ञान

सृष्टि	स्रष्टा	स्वरूप	पृष्ठ
भजन	संकलित	कविता	१
कुछ अपनी ओर से	सम्पादक	उद्बोधन	२
मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-विधाता है।	स्वामी राम	उच्च वेदान्त तत्त्व	३
उपदेश	स्वामी हरिॐ जी	भाषण	५
मानस सृष्टि	स्वामी सोमानन्द जी "परिव्राट्"	जनता ही जनार्दन	७
आत्म तत्त्व की ओर	पं० श्यामदत्त पन्त जी "कथावाचक"	आत्मोद्धार	११
ब्रह्माभ्यास	स्वामी वासुदेवानन्द जी "व्याकरणाचार्य"	तल्लीनता	१३
जीवन संग्राम	कार्ष्णि महानन्द जी "उदासीन"	चरित्र निर्माण	१५
सद्गुरु सर्वस्व है	हरिश्चन्द्र गुलाटी	भावुकता	१७
अन्त भले का भला	विष्णुदत्त पाण्डेय जी शास्त्री "विशारद"	कहानी	१८
मानस तथा मानस के भोले भक्त	देवराज जी बी० ए० "प्रभाकर"	वास्तविकता	२२
आश्रम समाचार	स्वामी वासुदेवानन्द जी	...	२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमन्त्रण पत्र

ब्रह्मनिष्ठं महात्मानं भेद-भ्रम विनाशकम् ।
निमग्नं परमानन्दे वन्दे ब्रह्मस्वरूपिणम् ॥

द्वितीय वार्षिक ब्रह्मयज्ञ

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्री १०८ स्वामी हरि ॐ जी महाराज का द्वितीय स्वरूपावस्थिति दिवस पौष कृष्णा-सप्तमी, अष्टमी, नवमी—तदनुसार दिनाङ्क १३, १४, १५ दिसम्बर १९५७ ई०, (शुक्र, शनि, रविवार) को मनाया जायगा।

अतः

इस महान् यज्ञ में—

बड़े-बड़े वीतराग तत्त्ववेत्ता महात्मा पधार रहे हैं, जो अपने अनुभवों द्वारा वेदान्त के गुह्य तत्त्वों पर प्रकाश डालेंगे।

रामप्रेमियों से सानुरोध निवेदन है, कि आप सब परिवार सहित पधार कर मानव-जीवन का लाभ उठाते हुए महाराज के श्री चरणों में—

अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—:कार्यक्रम:—

* प्रातः *

७ से ८ बजे तक—हवन, समाधि पूजन, आरति ।

८ से ११ ,, तक—उपनिषद्, गीता, अध्यात्मरामायण पाठ ।

११ से १२ ,, तक—कीर्तन, भजन, उपदेश ।

* सायङ्काल *

२॥ से ४॥ तक—आध्यात्मिक विषयों पर महापुरुषों के प्रवचन ।

४॥ से ५ तक—शान्ति पाठ, ध्यानयोग ।

नोट :—(क) १५ दिसम्बर को बृहद्भण्डारा, (समष्टि भोज) तथा प्रातः ७ से १२ बजे तक हवन, कीर्तन, भजन, प्रवचन, श्रद्धाञ्जलि ।

(ख) कृपया बिस्तर अपने साथ लायें। आश्रम पर पहुँचने के लिये स्टेशन से सीधी बसें मिलती हैं तथा प्रातः ८॥ और सायं ४॥ बजे घंटाघर के पास से बसें मिलती हैं ।

आपका अपना—

स्वामी गोविन्दप्रकाश

परमाध्यक्ष, रामतीर्थ मिशन आश्रम,

राजपुर (देहरादून)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ ओ३म् ❀

'राष्ट्र के हित के लिये प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना है'—स्वामीराम।

बेदान्त, आध्यात्म, संस्कृति, धर्म व भक्ति का सजग सन्देशवाहक तथा

स्वामी राम के आदर्शों का एक मात्र लोकप्रिय मासिक—

राम सन्देश

वर्ष ६ अङ्क १२	राजपुर-देहरादून, दिसम्बर १६५७.	वार्षिक भेंट ४) एक प्रति ।=)

❀ भजन ❀

सौदागर हूँ सौदा किया चाहता हूँ।
मैं देकर तुम्हें कुछ लिया चाहता हूँ॥

न दौलत मैं माँगूँ, न हशमत[1] मैं चाहूँ,
न राहत[2] मैं माँगूँ, मुसर्रत[3] न चाहूँ।
दो आलम[4] निछावर किया चाहता हूँ,
मैं चरणों में रहना पिया चाहता हूँ॥ सौदागर०॥

ये आँखों के मोती, ये हल्की सी आहें,
उम्मीदों कि कलियाँ जो खिलने न पायें।
नज़र ये हि लाया दिया चाहता हूँ,
मैं चरणों में रहना पिया चाहता हूँ॥ सौदागर०॥

ये हस्ती भि लेलो, ये तक़दीरें लेलो,
अजल[5] से जो बांधे व ज़ंजीरें लेलो।
मिटा कर ख़ुदी अब जिया चाहता हूँ,
मैं चरणों में रहना पिया चाहता हूँ॥ सौदागर०॥

(श्रुतांजलि से)

१-ख़ुशी २-आराम ३-प्रसन्नता ४-संसार ५-मृत्यु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

कुछ अपनी ओर से

संसार में मानव की महत्ता उसके ज्ञान राशि के आधिक्य के कारण ही मानी गई है। हमारे हृदय में ज्ञान का दीपक अहर्निश जलता ही रहता है, साथ ही साथ हमें आत्म निर्माण की प्रेरणा देता रहता है। प्रकाशमय, आनन्द स्वरूप प्रभु ! पथ प्रदर्शक बन कर अपने ओज और तेज से पूर्ण, अन्तरात्मा के रूप में हमें निरन्तर आत्म विकास की ओर बढ़ने का संकेत दे रहे हैं।

हमारे मन में अनेक बार सद्ज्ञान और सद्विवेक की दिव्य आभा जलती रहती है, जब हम गौर नहीं करते तो वह आभा अन्ततः विलुप्त हो जाती है। जब हमारे मन में अनेक सत संकल्प उठते हों, आत्म निर्माण की ओर बढ़ने की एक नूतन सी प्रेरणा मिलती हो, तब समझ लो कि ज्ञान रूपी दीपक प्रज्ज्वलित होने जा रहा है। यदि हमारे विचार सत्य-शिव और सुन्दर हों तो हम उस आनन्द कन्द को प्राप्त कर सकते हैं, जो "सत्यं शिवं सुन्दरम्" विशेषण से परिपूर्ण है। जिस पथ पर चलने के लिये हमारी आत्मा हमें सच्ची गवाही दे, वही पथ हमारे लिये कल्याण का हेतु हो सकता है।

जब तक मानव एक दूसरे के प्रति सद्भावना और आत्म विश्वास नहीं कर पाता, समझ लीजिये तब तक अपना वास्तविक हित (आत्म कल्याण) नहीं कर सकता। अज्ञान के स्थान पर ज्ञान का और अधर्म के स्थान पर धर्म का प्रयोग करना ही मानव की मानवता है।

इसके लिये मानव को अन्याय, आलस्य, हिंसा और असत्य व्यवहार को छोड़ना ही होगा।

सद्ज्ञान और सद्विचार ही आत्म कल्याण में सहायक होंगे।

मानव की महत्ता-उसका विचार और सत्य संकल्प है। यही वे गुण हैं, जो मानव को अन्य प्राणियों से ऊंचा उठाते हैं। मानव संसार का अधिनायक इसलिये है, कि उसके पास वास्तविक विकास पथ का ज्ञान संचित है। शारीरिक दृष्टि से अनेक पशु मानव को अतिक्रमण कर चुके हैं, परन्तु ज्ञान के अभाव में ही उन्हें मनुष्य का दासत्व स्वीकार करना पड़ता है। आज जिसे भी हम विद्या-बुद्धि, कीर्ति-ऐश्वर्यादि से सम्पन्न देखते हैं, ये सब उसके कुछ पूर्व जन्म कृत और कुछ ऐहलौकिक ज्ञान रूपी वृक्ष के ही पुण्य फल हैं। इतना सब कुछ जानते हुए भी हम दुःख रूपी अज्ञान और अविचार के अन्धकार को मिटाने का कोई प्रयत्न नहीं करते। यह कैसी बड़ी भारी विडम्बना है।

व्यक्ति की बुरी प्रवृत्तियां ही उसको आगे बढ़ने से रोकती हैं। हमारे घृणा, क्रोध, तथा विलास बढ़ते ही जा रहे हैं। जब तक हम उनमें काबू नहीं पा लेते तब तक वे बढ़ते ही जायेंगे। साथ ही साथ दुःख का कारण भी बनते चले जायेंगे। मानव स्वभाव से दैवी प्रकृति का है। कृत्रिम वस्तुओं के व्यवहार और असत्संगति के फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही आज मानव दुःखी अशान्त दिखाई दे रहा है। हमें यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये, कि हम ईश्वरीय अंश ही नहीं, बल्कि साक्षात् सगुण परमात्मा ही हैं। हम अवतारवाद को ईश्वर संज्ञा इसीलिये देते हैं, कि उन २ अवतारों के अन्दर वे गुण मौजूद थे, जो कि उनके मानव होने पर भी देवत्व को द्योतित कर सके। विज्ञ राम प्रेमी पाठकवृन्द ! आपका राम संदेश भी इन्हीं विचारों को लेकर चल रहा है। आशा है हम, अन्य पुस्तकों की भांति इसे केवल दृष्टिगोचर ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक व्यवहार में उतार कर अपने जीवन को उस प्रकाश की ओर ले जाने की चेष्टा करेंगे, जिससे कि जीव विलग हो नाना प्रकार से व्यथित होता हुआ संसार चक्र में चक्कर काट रहा है।

मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता है।

स्वामी राम

[गतांक से आगे]

जब इच्छित वस्तु सामने आती है, तब तुम रोना और खीजना शुरू करते हो। तुम स्वयं मृत्यु का आवाहन करते हो, और जब मृत्यु आती है तब तुम रोने लगते हो। किन्तु अन्यथा हो नहीं सकता, जब एक बार तुम नीलाम में सबसे ऊँची बोली बोल देते हो, तब तुम्हें चीज लेनी ही पड़ेगी। जब तुम घोड़े को दौड़ाते हो, तब गाड़ी उसके पीछे पीछे दौड़ेगी ही। इसलिये जब एक बार तुम इच्छा करते हो, तो तुम्हें परिणाम भोगना ही पड़ेगा। लोग सामान्यतः बुढ़ापे में मरते हैं और जवानी में बहुत कम मरते हैं—इसका क्या कारण है ? वेदान्त कहता है कि बूढ़े होने पर हमारे शरीर रोगी हो जाते हैं। बीमारी हमें सताती है और तब हम मौत की इच्छा करने लगते हैं। हम संकट से छुटकारा चाहने लगते हैं, और छुटकारा हमारे सामने आता है। इस तरह आपकी मृत्यु आपही के द्वारा प्रकट होती है। वेदान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य आत्महन्ता है। मृत्यु उसी क्षण आती है, जब तुम उसके आने की इच्छा करते हो। कुछ लोग भरी जवानी में क्यों मर जाते हैं ? इस समय शायद आप राम की बात पर विश्वास न करेंगे, किन्तु यदि आप ठीक-ठीक अवलोकन करेंगे तो आपको राम के इस कथन से सहमत होना पड़ेगा। राम ने बहुतेरों को चढ़ती जवानी में मरते देखा है। राम ने उनके निजी व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश किया, सारे मामले की जांच-पड़ताल की तो मालूम हुआ कि ये युवक दिलोजान से मृत्यु के इच्छुक थे, अपनी परिस्थितियों के मारे परेशान थे, अपने वातावरण को बदलना चाहते थे। सदा ऐसी घटनाओं का रहस्य इसी प्रकार का होता है। अब प्रत्यक्ष उदाहरण देने के लिये समय नहीं रहा, परन्तु है यह एक तथ्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष के किसी साम्प्रदायिक महाविद्यालय में एक होनहार युवक अध्यापक का काम करता था। एक सार्वजनिक सभा में उसने कहा कि मैं अपना जीवन इस सम्प्रदाय के निमित्त अर्पण कर दूँगा, उसने अपने आपको उसके प्रति अर्पण कर दिया। कुछ समय तक बड़ी सरगर्मी से वह वहां काम करता रहा किन्तु फिर उसकी राय बदली, उसके विचारों का प्रसार हुआ, उसका मस्तिष्क विस्तीर्ण हुआ, उसके विचार आगे बढ़े, उन सम्प्रदाय वालों के साथ मिल जुल कर काम करना उसके लिये कठिन हो गया, वे सम्प्रदायवादी भी दिल ही दिल में जलने लगे। फिर भी उसे उनके साथ किसी तरह मिलकर काम करना पड़ता था, क्योंकि वह बचन दे चुका था, क्योंकि वह उस लक्ष के प्रति अर्पण हो चुका था। इसलिये इस युवक के लिए छुटकारे का और कोई साधन न था। उसका मन तो दूसरी जगह था और तन दूसरी जगह, मन और तन भिन्न भिन्न हो गये थे। यह हालत कहां तक टिकती। विचारे की मृत्यु हो गई। मृत्यु के सिवाय अन्य उपायों से वह अपनी अवस्था को नहीं बदल सकता था। मृत्यु उसे बचाने वाली सिद्ध हुई। इस तरह पर मौत भी हौवा नहीं है जैसे कि लोग समझते हैं।

तुम अपनी परिस्थितियों के स्वामी हो, आपही अपने भाग्य के निर्माता हो। फिर लोग क्यों दुःखी कैसे हो जाते हैं? हम पर मुसीबतें क्योंकर आती हैं? उत्तर—इच्छाओं के संघर्ष से। तुम्हें एक प्रकार की इच्छा होती है, जो तुमसे एक विशेष प्रकार का काम करवाती है, और फिर तुम्हें दूसरी इच्छा होती है, जो तुमसे दूसरे प्रकार का काम करवाती है। दोनों इच्छायें मौजूद हैं। एक इच्छा तुम्हें लेखक, वक्ता, अध्यापक, व्याख्याता, या प्रचारक के पद पर आसीन करना चाहती है, साथ ही दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है कि तुम इन्द्रियों के दास बने रहो। ये परस्पर विरोधी इच्छायें हैं, जो साथ साथ नहीं चल सकतीं। ऐसी हालत में क्या होता है? दोनों की पूर्ति आवश्यक है। जबकि एक की पूर्ति होती है तब दूसरी को ठेस पहुँचती है और तुम्हें व्यथा का अनुभव होता है। जब कि दूसरी की पूर्ति होती है तो पहली को ठेस पहुँचती है और तुम्हें दुःख होता है। इस प्रकार लोग अपने आपको क्लेश में डालते रहते हैं। तुम्हारी पीड़ायें भी यह प्रकट करती हैं कि तुम अपने भाग्य के आप ही स्वामी हो। अब एक बड़ी सुन्दर कहानी से राम इस बात का दृष्टान्त देगा—

एक भारतवासी के दो स्त्रियाँ थीं। आप जानते हैं कि हिन्दू बहुविबाह में विश्वास नहीं करते किन्तु मुसलमान उसे मानते हैं। वह मुसलमान था, उसके दो स्त्रियां थीं। उनमें से एक कोठे पर रहती थी और एक नीचे। एक दिन एक चोर घर में घुसा। वह सारा माल असबाब चुराना चाहता था, किन्तु घर के आदमी जाग रहे थे, और चोर को चुराने का कुछ भी अवसर हाथ नहीं लगा। सवेरा होते ही घर के लोगों ने चोर को देख लिया और वे उसे पकड़ कर मजिस्ट्रेट के सामने ले गये। कोई चीज चोरी नहीं गई थी, फिर भी चोर ने घर में सेंध तो लगाई ही थी। यह भी एक अपराध है। मजिस्ट्रेट ने चोर से कुछ प्रश्न पूछे। उसने तुरंत स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी करने की नियत से ही घर में सेंध लगाई थी। मजिस्ट्रेट उसे कुछ दंड देने वाला ही था कि वह मनुष्य बोला "जनाब! आप जो चाहें दंड मुझे दें, आप मुझे कारागार में भेज दें, आप मुझे कुत्तों के सामने फेंक दें, आप मेरे शरीर को जलवा दें, किन्तु एक दण्ड मुझे न दीजियेगा।" (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन् स्वामी श्री हरि ॐ जी महाराज के उपदेश ।

[श्रीमती सुशीला कपूर के सौजन्य से प्राप्त]

एक परमात्मा ही सब भूतों में पूर्ण है। वही देव जब प्रकृति से अपना सम्बन्ध बना लेता है, तो जीव रूप से कहलाने लगता है। दृष्टा—दृश्य का ध्यान करते-करते दृश्य रूप हो जाता है। इसी प्रकार प्रकृति और अन्तरात्मा। यानी जीव दृष्टा है। जीव रूपी दृष्टा प्रकृति रूपी दृश्य का ध्यान करते-करते अपने आपको प्रकृति, अर्थात् शरीर ही समझने लग जाता है। उस चेतन परमात्मा का जब अन्तःकरण में आभास पड़ता है तो जीव बन जाता है। जैसे कि शुद्ध जल में सूर्य का आभास पड़ता है तो प्रतिबिम्ब बन जाता है। यदि जल मैला होता है, तो प्रतिबिम्ब नजर नहीं आता। इसी प्रकार यह जीव है तो परमात्म स्वरूप ही, परन्तु मलीनता के कारण मालूम नहीं पड़ता। मलीनता नाम अविद्या का है। अविद्या क्या है? जब जीव अपनी शक्ति तथा अपनी प्रकृति में अवतीर्ण हो जाता है तो मायिक दृश्य प्रपंच शरीर का ध्यान करते-करते जीव अपने को शरीर समझने लग जाता है, तो यही अविद्या है। इसी अवस्था में वह शुद्ध अन्तरात्मा जीव कहलाता है।

जीव जब अविद्या में जकड़ा हुआ मनुष्य देह धारण करता है, तो सत्संग द्वारा अपने आपको प्रकृति से पृथक समझता है, अपने को साक्षी समझता हुआ परब्रह्म स्वरूप हो जाता है। जब अपने आपको दृश्य यानी प्रकृति समझता है, तो जीव कहलाता है।

परन्तु जब वेद शास्त्रों का विचार करता है और सत्संग करते-करते यह देखता है कि मैं यह प्रकृति नहीं, बल्कि अन्तर आत्मा सुखरूप हूँ। जैसे-सन्त तुलसीदास जी ने भी लिखा है—

"चेतन जीव सहज सुखराशी"

जब ऐसा विचार करता है कि मैं बदलने वाला शरीर नहीं, जड़ नहीं, चेतन हूँ। वास्तविक स्वरूप अन्तर आत्मा सहज ही सुखरूप है, तो मैं अपने आपको शरीर क्यों समझता हूँ। वेद में जीव के लक्षण सत्, चित्, आनन्द कहे हैं। इसी प्रकार परब्रह्म परमपिता के लक्षण भी सत्, चित्, आनन्दपूर्ण ही कहे हैं। जब प्राणी यह विचार करता है, कि मैं जीव-कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ हूँ, तो ऐसे जीव के प्रति वेद शास्त्र कहते हैं—कि हे जीव? तू सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, तू साक्षी है, तो मैं सत्य होता हुआ भी अपने को असत्य समझता हूँ। चेतन होता हुआ भी अपने आपको जड़ शरीर समझता हूँ। मैं शरीर नहीं, बल्कि साक्षी हूँ। मैं दुःखरूप पाञ्चभौतिक नहीं, बल्कि आनन्द स्वरूप अन्तर आत्मा हूँ। जब प्राणी ऐसा विचार करने लग जाता है, कि वास्तव में "मैं" साक्षी ही हूँ, तो वह ज्ञानी कहलाता है।

स्वप्नावस्था में नाना प्रकार के दृश्य को देखना लीलाधारी, शक्तिशाली बनना, यह सब शरीर का धर्म नहीं; बल्कि उसी ज्ञानी (अन्तरात्मा) का धर्म है। स्वप्नावस्था की सृष्टि जागृतावस्था में झूठी प्रतीत होती है। इसी प्रकार तुरीयावस्था में जागृत् ज्ञानी इस जागृत् सृष्टि प्रपंच को स्वप्न की सृष्टि की तरह झूठी ही देखता है। जैसे-कि जागृत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था में स्थित मनुष्य को स्वप्न सृष्टि याद तो रहती है। परन्तु उसका विचार नहीं करता, बल्कि वह समझता है, कि यह तो मेरे मन के विचारों का ही परिणाम है। इसी प्रकार तुरीयावस्था में पहुँचे हुए ज्ञानी को जागृतावस्था की याद तो रहती है; परन्तु उस पर असर नहीं कर सकती। जिस प्रकार स्वप्न जागृत् अवस्था में झूठा मालूम पड़ता है, इसी प्रकार तुरीयावस्था में स्थित महात्मा को जागृत मायिक-प्रपञ्च झूठा ही प्रतीत होता है। जब दृश्य रूप शरीर से अपने को पृथक समझने लगता है, तो वह विवेकी कहलाता है। मानव कोई भी कार्य सीखता है, जिसकी कि इस संसार को आवश्यकता है तो वह मान-प्रतिष्ठा का पात्र होता है, जैसे कि कोई डाक्टरी या इन्जिनियरी ही सीखा हो तो वह संसार में कितना धन कमाता व प्रतिष्ठा लाभ करता है। परन्तु यह अभी प्रकृति के अन्दर ही है। जैसे-कार एक मशीनरी है, इसी प्रकार यह स्थूल शरीर भी एक मशीनरी है। जैसे-कार बिना पैट्रोल के जड़ है, यानी चल नहीं सकती। कार की सूक्ष्म मशीनरी व स्थूल बाडी विराजमान है, परन्तु बिना पैट्रोल के किसी काम की नहीं। इसी तरह प्राणी की सूक्ष्म मशीनरी सूक्ष्म शरीर और स्थूल बाडी स्थूल शरीर भी बिना जीव के जड़ है। इस प्रकृति के कार्यों को जानने वाले (मैट्रिलेजम) के अन्दर ही हैं। परन्तु ज्ञानी इस दुनियाँ से उठ कर जानना चाहता है कि मेरी फोर्स क्या है? मैं क्या हूँ। ऐसा विचार कर समझने लगता है, मैं इस जगत् का दृश्य व आधार हूँ, तो यही विवेक है।

प्रेम परीक्षा

एक दिन श्रीकृष्ण ने सोचा-कि राधा और रुक्मिणी में से किसका प्रेम मेरे प्रति अधिक है। उन्होंने पेट-पीड़ा का बहाना कर खटिया में लेटे-लेटे चिल्लाना शुरू कर दिया। इस दृश्य को देख कर नाना प्रकार का औषधोपचार किया गया, पर कृष्ण की पीड़ा किसी प्रकार शान्त न हो सकी। राधा और रुक्मिणी दोनों जो उचित समझतीं सेवा करने लगीं। छलिया के बहाने का किसी को भी पता न लग सका। अन्त में कृष्ण स्वयं ही बोल पड़े और कहने लगे-यदि राधा या रुक्मिणी में से एक अपने चरणामृत को मुझे पिला दे तो मेरा पेट दर्द तुरन्त ठीक हो सकता है। इस बात को सुन कर रुक्मिणी ने कहा-मैं अपने पैरों का जल अपने प्रियतम को पिलाऊँगी तो मेरा नरकवास होगा। यह सुन राधिका ने कहा-यदि मेरे स्वामी बच सकते हों, तो मेरा नरकवास ही सही। उसने अपने पैरों का चरणामृत बनाया और ज्योंही कृष्ण के मुख के पास ले जाना चाहती थी, कि श्री कृष्ण खिल-खिलाकर हँस पड़े और राधिका से कहने लगे। प्रिये! राधे! तुम्हारा प्रेम निःस्वार्थ होने से अनन्य है, वास्तविक प्रेम ऐसा ही होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस सृष्टि

[ले०—स्वामी सोमानन्द "परिव्राट्" वाराणसी]

जनरव से शून्य उत्तराखण्ड का घोर जंगल अपनी सम्पूर्ण प्राकृतिक सौंदर्य छटाओं से विलसित, विश्व को शान्ति का पुनीत संदेश प्रदान कर रहा था। उसी उत्तराखण्ड के हजारों फिट ऊँचे हिमालय के उच्च शिखर पर सुन्दर रम्य गुफा के अंदर मन्मथ की सौंदर्यता को भी लज्जित करने वाला गौराङ्ग वर्ण का महाकान्तिमय तपः पुञ्ज एक तरुण समाधिस्थ था।

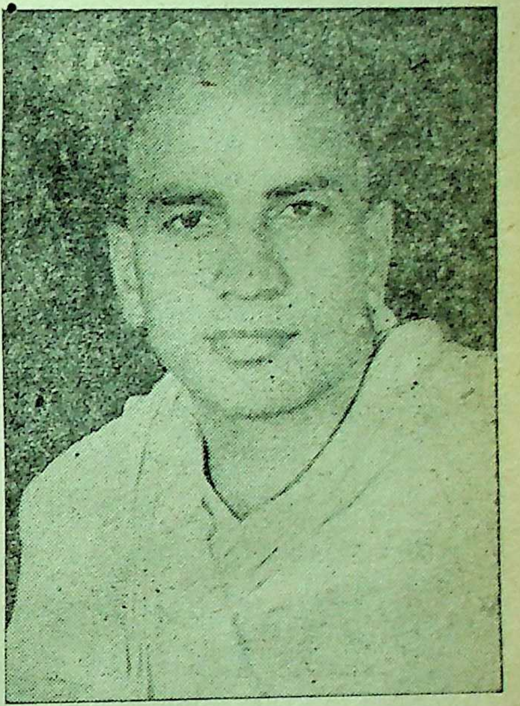

तरुण अभी अपने सम्पूर्ण अङ्गावयवों के विकास पथ पर से ही गुजर रहा था, भरे यौवन के आभास की प्रथम अँगड़ाई ही अभी आ रही थी; तरुण के रक्ताभ-अधरोष्ठ रह-रह कर फड़क रहे थे। विशाल चंचल आँखों की मादकता को निरख वृक्ष की पत्तियाँ भी विना वायु के उन्मत्त सी झूम रही थीं।

अहा! इस अनुपम सौंदर्य-राशि की सौंदर्यता का रस प्रकृति अकेले ही पान कर रहीं थी।

समाधिस्थ तरुण की आँखें कुछ खुली और कुछ बन्द सी थीं, पर उसके आभ्यन्तर, मन के विशाल चित्र पट पर नाना रंग-विरंगे मोहक, आकर्षक, चित्र रह-रह कर उत्पन्न और विलीन हो रहे थे। अंतर के मानस चित्रपट पर प्रत्येक आकर्षक चित्र आने के बाद तरुण का मन उस पर रुकता, कुछ सोचता और समझता, पर कुछ निश्चय न कर पाने पर वह चित्र लुप्त हो जाता तथा पट पर दूसरा चित्र अंकित हो मन के विचार का विषय बन जाता। तरुण के मन की विचारधारा इसी अबाध गति से चल रही थी। प्रयत्न करने पर भी तरुण का मन परमात्मा की ओर से विमुख सा हो रहा था।

चित्त-वृत्तियाँ आभ्यन्तर जगत् के चित्रपटों पर बिखर चुकी थीं। इसी कारण सतत प्रयत्नशील होता हुआ भी तरुण अपने मन को अखण्ड-ब्रह्माण्ड-नायक-परब्रह्म-परमात्मा की ओर न लगा सका।

तरुण के मानस पट पर मोहासक्त कुटुम्बीजनों के चित्र उत्पन्न और विलीन हो रहे थे। कभी जन्म-दात्री माता का चित्र मानस पटल पर आकर अङ्कित होता, तो कभी पालक पिता का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी बहन का प्रेम हृदय को उद्वेलित करने लगता, तो कभी अपने सहोदर भाइयों का। किन्तु चित्र-पट पर आई हुई नवोढा प्रिय-पत्नी पर ही मन का ठहराव कुछ देर के लिये अवश्य रहता। इस परिस्थिति पर समाधिस्थ तरुण का मन और भी गहरी विचारधारा में उतर, रति क्रीडोन्मुख सर्वांग-सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो; चंचल हो उठता। तरुण का हृदय विक्षुब्ध हो उठता, ओंठ फड़कने लगते। अकस्मात् आँखें भी खुल जातीं और नवयुवक समाधि से उठ खड़ा हो—गुफा द्वार पर टहलने भी लग जाता, पर उसके हृदय में शांति का कोई भी चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था।

तरुण पुनः समाधिस्थ हो मन की एकाग्रता का भरसक प्रयत्न करता, किंतु फिर भी उसके मानस-पटल पर अन्तर्जगत् के आकर्षक चित्र अङ्कित हो २ तिरोहित से होते जा रहे थे, बराबर यही क्रम चल रहा था।

तरुण की बेचैनी और भी बढ़ी, वह पुनः उठा और पुनः समाधिस्थ भी हुआ। पर, वाह रे आभ्यंतर जगत्! तेरे मोह का बन्धन कितना दृढ़ है, कि बाह्य-जगत् भी इसके सामने लज्जित सा हो रहा है।

वास्तव में साधक के लिये "बाह्य सृष्टि" उतनी बाधक नहीं, जितनी कि आभ्यन्तर सृष्टि है।

समाधिस्थ नवयुवक की आँखें ऊपर से बन्द थीं, किन्तु अन्तर्चक्षु आभ्यंतर जगत् के आकर्षक पदार्थों में बिखरे हुए थे, तथा चंचल मन रह-रह कर उन प्रिय पदार्थों की ओर दौड़ लगा रहा था। इस तीव्रगामी गति से हृदय की धड़कन बढ़ती ही जा रही थी, कि अचानक गुफा द्वार पर पग ध्वनि सुनाई पड़ी। तरुण को आश्चर्य हुआ, कि इस हजारों फिट ऊँचे हिमालय के उन्नत शिखर पर आने का साहस किसे और कैसे हुआ। आश्चर्यान्वित तरुण की आँखें ज्योंही खुलीं, कि सामने ही गैरिक वेश से विभूषित ओजस्वी तपःपुञ्ज एक महापुरुष मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए मुस्करा रहे हैं। उनकी मुस्कान से विकसित अधरोष्ठों के बीच स्वच्छ दन्तपंक्तियों की शुभ्र किरणों द्वारा अपने सम्पूर्ण अवयवों के सहित गुफा प्रकाशित हो उठी। तरुण उस अपूर्व तेज के सामने और अधिक देर तक बैठ न सका, शीघ्र उठ खड़ा हुआ, तथा श्रद्धा-पूर्ण विनम्रता के साथ बोला, भगवन्? आपने यहाँ पर पधारने की कृपा और कष्ट कैसे किया; क्या वास्तव में आप मेरा उद्धार करने के लिये ही आये हुए हैं? काषायाम्बरधारी महापुरुष ने कहा-ओ तरुण? तेरा उद्धार कैसा, क्या तू भयङ्कर सागर के बीच डूब रहा है? अथवा किसी आततायी या किन्हीं हिंसक पशुओं द्वारा आक्रान्त है जिनसे तेरा उद्धार किया जाय, किंतु यहाँ ये सब बातें तो दिखाई नहीं पड़ रहीं, जिससे तेरा उद्धार किया जाय।

जगत् के सम्पूर्ण बन्धनों को भी तू तोड़ कर इस गगन गुफा में आकर बैठा है, अतः उसका भी तेरे लिये कोई भय नहीं; फिर आखिर तेरा उद्धार कैसा और किससे किया जाय।

तरुण बोला, भगवन्? इन सभी भयों से तो उन्मुक्त हूँ, जगत् के सम्पूर्ण आकर्षक पदार्थों के मोहों से भी नाता तोड़ इस ऊँचे आकाश में आकर धूनी रमाई है। किन्तु...

महापुरुष ने कहा—ओ भोले पागल? जब तू इन सारे आकर्षक—मायिक पदार्थों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृङ्खलाओं को तोड़ ही चुका, तब फिर किन्तु और परन्तु कैसा ?

तरुण ने कहा—भगवन् ? बाह्य जगत् का बन्धन तोड़ने के बाद भी अन्तःकरण में बसी कौटुम्बिक मोहक आकृतियाँ मानस-पटल पर आ-आ कर हृदय को व्यथित और उद्वेलित करती रहती हैं। अतः इस परिस्थिति पर मन का झुकाव परमात्मा की ओर कैसे हो सकेगा, जब कि रमणीय सुन्दर आकृतियाँ मन के खिलौने बन चुकी हैं। महापुरुष ने कहा—ओ नादान तरुण ? तब तो तेरा हिमालय के इस उत्तुङ्ग शिखर पर आना ही व्यर्थ हुआ, इससे तो अच्छा यही होता कि गृह-त्याग के पूर्व ही तू किन्हीं सन्त सद्गुरु महापुरुष की शरण में जाकर मन, बुद्धि को पवित्र और संस्कृत कर, मन से अनन्त काल की वासनाओं और संस्कारों को प्रताड़ित कर आज तक तो तू अमरत्व का अधिकारी भी बन गया होता। तरुण ने कहा-भगवन् ? मेरे परम सौभाग्य से आप यहाँ पधार चुके हैं। अतः अब आप मेरे सद्गुरुदेव हैं और अब मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण हूँ। मेरा तन-मन-धन तथा मैं स्वयं आपके पावन चरणों में समर्पित हूँ। आप इस सन्तप्त हृदय को शान्ति प्रदान करें। महापुरुष ने कहा—ओ शान्ति के जिज्ञासु ! यदि तेरा सर्वस्व मेरे प्रति समर्पित है, तो अब इस दशा में तू और तेरा कुछ भी नहीं रहा। मेरी आज्ञा बिना तू शरीर से कुछ नहीं कर सकता, मन से कुछ सोच नहीं सकता। तथा तू स्वयं बोल भी नहीं सकता। सम्पूर्ण बाह्य और अन्तर्जगत् का सम्बन्ध अब तेरा न होकर मेरा हो चुका। ओ सर्वस्व न्यौछावर करने वाले तरुण ? अब बतला तो सही मन की स्थिति कैसी है ? मूल के नष्ट होने पर वृक्ष, डाली, शाखा और पत्ते कैसे पुष्पित और पल्लवित हो सकते हैं ? तरुण देख, तेरी अनन्तकाल की वासनाओं और संस्कारों से परिपूर्ण मन की, विशाल रूप से मानस सृष्टि का विस्तार-मन मूल के नष्ट होने पर उसी प्रकार धराशायी हो चुके, जिस प्रकार विशाल हरे-भरे वृक्ष की जड़ काट देने पर वह अनन्त पुष्पों और फलों के सहित धराशायी हो सूख जाता है। यह सम्पूर्ण हरी-भरी मोहक तथा आकर्षक अन्तर्सृष्टि मन पर आधारित अपनी विशालता की चरम-सीमा तक पहुँचने पर भी ओ तरुण ? तेरे मन के न रहने पर उसकी सारी सुन्दरता शुष्क हो चुकी। महापुरुष के इन एक-एक शब्दों से तरुण का हृदय एक विचित्र आनन्दातिरेक में विभोर हो रहा था, उसे एक अपूर्व शान्ति का अनुभव हो रहा था, वह अपने को सुस्थिर और नाना संकल्प विकल्पादिकों से शून्य देख रहा था; उसे एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो रही थी। महापुरुष कहते जा रहे थे, कि—ओ शान्ति के जिज्ञासु ! "विषैले-विषधर (सर्प) के जहरीले दाँत उखाड़ देने पर उसे गले का हार बना सकते हो"। जब तक सर्प के जहरीले दाँत नहीं उखड़ेंगे, तब तक वह प्रत्येक प्राणी का प्राण घातक बना रहेगा, किन्तु विषैले दाँतों के उखड़ते ही वही भयंकर सर्प एक व्यक्ति के लिये जीविका स्वरूप हो जाता है।

ओ सशङ्क तरुण ? इसी प्रकार यह संसार रूप सर्प तभी तक जन्म और मृत्यु कारक है, जब तक मैं और मेरे रूप जहरील काँटे (दाँत) नहीं निकलते। सद्गुरु चरणों पर मैं और मेरा समर्पण कर देने के बाद वही संसार और सांसारिक पदार्थ गले का हार बना कर हृदय से भी लगा सकोगे। यह सांसारिक पदार्थ तो बच्चों के खिलौने हैं, खिलौने ! जिस प्रकार छोटा बालक खिलौनों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटने पर रोता है और उनकी प्राप्ति पर प्रसन्न होता है, पर एक वृद्ध व्यक्ति उन खिलौनों के शोक और हर्ष से रहित ही देखा जाता है। इसी प्रकार सांसारिक पदार्थों को अविवेकी पुरुष सत्य समझ आसक्त हो दुःखी और सुखी होता रहता है। पर विवेकी (तत्त्वज्ञ) व्यक्ति इन जगत्पदार्थों को नाशवान्, क्षण-भंगुर समझ, इन पर अनासक्त हो, इनके सुख दुःखों से सदा के लिये परे ही रहा करता है।

तरुण? तू यह दृढ़ निश्चय कर कि मैं शरीर नहीं और शरीर मेरा नहीं, शरीर जड़ है और मैं चेतन हूँ। शरीर नाशी है और मैं अविनाशी आत्मा हूँ। यह सम्पूर्ण बाह्य और अन्तर सृष्टि मेरा ही आभास मात्र है।

तरुण! गीता की उद्घोषणा भी सुनता चल आनन्द कन्द भगवान् श्री कृष्ण के शब्दों में—

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति॥

गीता अ० ६ श्लो० ३०

ओ सुख स्वरूप नौजवान्? तू इस गीता के तत्त्वको समझ और इसी आध्यात्म शक्ति कोस्वीकार कर अज्ञानान्धकार से विमूढ़ विश्व के मानव हृदय को प्रकाशित करता हुआ विश्व के अखिल राष्ट्रों के कर्णधारों को इस आध्यात्म विद्या के पावन सन्देश को सुना, शाश्वत शान्ति की आवाज को भी बुलन्द करता हुआ तब तक के लिये गुफा में बैठना स्थगित कर दे जब तक विश्व के कोने २ में सोऽहं शिवोऽहं की घोर गर्जना न गूँज उठे।

बस, यही मेरा आदेश है और यही मेरा आशीर्वाद। महापुरुष के ये शब्द समाप्त होते ही तरुण दण्डे की भाँति महापुरुष के पवित्र चरणों में गिर पड़ा, किन्तु महापुरुष उससे पहले ही अदृश्य हो चुके थे।

तरुण उठा कुछ सोचा और कुछ समझा भी। उसकी एक दृष्टि शून्य आकाश की ओर गई। उसे ऐसा लगा मानो करोड़ों भूखे, नंगे अस्थिपंजर-शेष-नर कंकाल उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहे हों। वह अधिक देर तक उस दृश्य को न देख सका। उसने अपनी दृष्टि को उस हिमालय के उच्च शिखर पर से विश्व के तमाम विप्लवित राष्ट्रों की ओर दौड़ायी। इसके बाद मन की स्थिति को सँभालते हुए आध्यात्मिक शक्ति को साथ ले सोऽहं शिवोऽहं तथा हरि ओम् की घोर ध्वनि के साथ विश्वप्राङ्गण में कूद पड़ा।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

विचार तरंग

आप भविष्य की चिन्ता करते हैं, पर वर्त्तमान से उदासीन रहते हैं। वर्त्तमान ही तो भविष्य का निर्माण करने वाला है। फिर भी आप अपने को बुद्धिमान् कहते हैं। इन शब्दों पर विचार कर व्यवहार में लाने का प्रयत्न कीजिये।

केवल ज्ञानी बनने से काम नहीं चला करता, यदि कर्म के आचरण की आवश्यकता न होती तो प्रभु बुद्धि के साथ इन्द्रियाँ क्यों देते? इससे सिद्ध होता है कि कर्म करना आवश्यक है, पर कौनसा कर्म? वही गीता का निष्काम (कर्म)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म तत्त्व की ओर

[ले०—पं० श्यामदत्त पन्त जी]
("कथावाचक" ज्वालापुर)

विशाल वैभव सम्पन्न महलों में अत्यन्त प्यार से पला हुआ बालक भी अपने दिल में एक कमी अनुभव करता है, एक विचित्र सा अभाव। यद्यपि उसकी जरा सी आह पर सैकड़ों दास-दासियाँ अपना बलिदान करने के लिये हर समय तैयार रहती हैं। मनोभिलषित कोई भी भूगर्भ से पैदा होने वाली वस्तु अप्राप्य नहीं। माता-पिता का प्यार, भाई-बहनों का स्नेहादि। सब कुछ सुलभ होते हुए भी अभाव किसका? किसलिये मन रिक्त, सूना, उदास। मन का अन्तरतम प्रदेश किसकी चाह में, किसके वियोग में, अथवा किसकी याद में एक सूक्ष्म तड़फन का अनुभव कर रहा है, यह बताया नहीं जा सकता, समझाया नहीं जा सकता। देखते देखते शैशव की सारी रंग-रेलियां अदृश्य की गोद में सदा के लिये अन्तर्हित हो गयीं। यौवन ने हाथ फैला कर अपनी गोद में लिया। जवानी की उमंगें मस्त हाथी की तरह उत्तरोत्तर बढ़ती गईं। अपने मन से, अपनी इच्छा से, एक के बाद एक आवश्यक पदार्थों का संचय किया। अपने पराये का, शत्रु मित्र का, हित-अहित का, ज्ञान हुआ। कामादियों के नव जात अंकुरों ने सुन्दर-सुन्दर रमणियों का मोह उत्पन्न किया। विषय जाल के विस्तार का दिन पर दिन सोच हुआ, तृप्ति के लिये सुन्दरियों का समागम। पर यह क्या! तृप्त होते हुए भी तृप्ति का अनुभव अत्यन्त दूर। जैसी-जैसी इच्छा वैसे-वैसे साधन प्राप्त किये गये इस तृप्ति के लिए, धन-यौवन की उत्तंग तरंगों में अठखेलियां खेलते हुए भी मन के अनुकूल समस्त अभिलषित कामनाओं की पूर्ति होते रहने पर भी वही आह, वही एक टीस सी, एक कसक सी, मीठी-मीठी पीड़ा सी, तथा अलभ्य लाभ की एक चाह सी। एवं बिछुड़े हुए से मिलन की आकाँक्षा सी हृदय में छिपी हुई है।

सब कुछ देखा-सुना, खाया-पिया, जाना-पहिचाना, पर यह अभाव न देखा न सुना। न जाना न पहिचाना। यही तो है वह, जिसके लिये श्रुति कहती है:—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

अर्थात्-वह आत्मतत्त्व चलता भी है, नहीं भी चलता। वह अत्यन्त समीप भी है, अत्यन्त दूर भी! अज्ञानान्धकार से आवृत जीव संसार के समस्त सुखों का अनुभव करता हुआ भी इस आत्मतत्त्व के लिये ही बाल-युवा-वृद्ध अवस्थाओं में हर समय तड़फता ही रहा है। एक कमी, एक अतृप्ति, एक प्यास, एक भूख, एक मिलन की सी अकांक्षा इस जीव को सताये जा रही है। वह इसी की है। इसी के लिये पूज्यपाद् गोस्वामी जी महाराज ने लिखा:—

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं।

तथा गीता में भी कहा:—

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये,

आदि। इसी आत्मतत्त्व की विस्मृति ही तमाम भय की जननी एवं दुःख की खान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप की भूल ही तो विरूप को अपना रूप मान कर दुःख का कारण बनती है। देवर्षि नारद जैसे वीतरागी भी इस बिरूप के चक्कर में फँस कर दुःखी हो गये। प्राणिमात्र ही स्वरूप का अनुभव न होने से विशाल वैभव सम्पन्न होने पर भी अभाव ग्रस्त हो रहा है। इसी के लिये तो है सोच विचार। यही तो है अनुभव गम्य। इसी की तो खोज में है भटकना। इसी की प्राप्ति से समाप्त होती हैं, समस्त कामनाएँ। यही तो है अलभ्य लाभ, अदृश्य दर्शन, अप्राप्य प्राप्ति, अकल्प्य कल्पना। जिसके बाद सारे सुख-दुःख, विषय वासनाएँ, काम क्रोध-लोभ-मोह-शीत-ऊष्ण, आदि विकार भस्मसात् हो जाते हैं। इसी आत्मतत्त्व से ही तो व्याप्त है, समस्त मायिक प्रपञ्च। इसी के ज्ञान से तो होता है शोक का अन्त। यही तो है शरीरों में अशरीर, अनित्यों में नित्य, एवं दुर्विज्ञेय होते हुए सुविज्ञेय। इसी के लिये कहा गया है:—

अशरीरं शरीरेष्व नवस्थेष्वनवस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

इसी आत्म तत्त्व को जान कर बुद्धिमान् किसी प्रकार का शोच नहीं करता, अर्थात्-समस्त शोकों से दूर होकर वास्तविक परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

समालोचना

(अणुव्रत का निर्माण -अंक)

अणुव्रत कार्यालय (३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता १) से प्रकाशित पाक्षिक पत्र अणुव्रत का यह अक्टूबर १९५७ का ३०० पृष्ठों का निर्माण अंक है। इस अंक का मूल्य केवल १) रु० है। अंक में मानव जीवन को आदर्शमय बनाने के लिये सुगम साधनों पर प्रकाश डालने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण लेख और कविताएँ हैं। अनेक स्थलों पर आचार्य तुलसी एवं विश्व के सुप्रसिद्ध विद्वानों और भारतीय नेताओं के वचनामृत भी उद्धृत् किये गये हैं। भाषा सौष्ठव एवं लेखों की सुघड़ता अच्छी निखरी है। आज के अधिकांश व्यक्ति अपनी संस्कृति, सभ्यता, एवं सच्चरित्र से विमुख होते जा रहे हैं। ऐसे समय में इस निर्माण अंक के लेख जन समुदाय को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करेंगे, ऐसी हमें पूरी २ आशा है। सुन्दर छपाई एवं अत्युत्तम सम्पादन के लिये हम श्री सत्यनारायण जी मिश्र का हार्दिक धन्यवाद सहित अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे साधारण से साधारण कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिये विधि का ज्ञान आवश्यक है, वैसे ही अपने आपको जानने की विधि का ज्ञान आवश्यक है। अतः यदि आपको ब्रह्म के अभ्यास की विधि जानकर जीव से ब्रह्म, अल्पज्ञ से सर्वज्ञ भाव अपनाना है तो पढ़िये:—

ब्रह्माभ्यास

[ले०:—श्री स्वामी वासुदेवानन्द जी व्याकरणाचार्य]

संसार रूपी अटवी में विचरते समय नाना भांति के मानव मिले। ऐसे भक्त मिले जो चराचर में मुरली मनोहर की पवित्र झांकी के दर्शन करते हैं। वज्र के समान कठोर हृदय वाले निठुर, निर्दयी, क्रूर राक्षस मिले। चोटी के विद्वान् तथा चोटी के मूर्ख मिले। अपने आपको विद्याधरों के शिरोमणि मानने वाले अभिमानी भी मिले, पर मिले अनेक ऐसे भी भोले भूत, जो योग्यता रूप अजीर्ण रोग से घिरे थे। मेरे वचन भक्तों को तो प्यारे लगने ही थे। परन्तु मूर्ख और निठुर भी अपनी अज्ञता और कठोरता पर पश्चात्ताप किये बिना न रह सके एक दिन वेदान्त की चर्चा में मैंने कहा कि पढ़ना वही अच्छा है जिसमें मन एकाग्र हो कर ब्रह्म के अभ्यास में लग जाय, तो विद्या के अहङ्कार में चूर और योग्यता के मद में उन्मत्त व्यक्ति ऊंचे स्वर में चिल्लाकर हँसते हुए बोले—स्वामी जी ??? महाराज ??? कहीं ब्रह्म का भी अभ्यास किया जाता है यह तो आज आपके मुख से नयी बात सुनने को मिली है। उनके ये शब्द सुनकर पहले तो मुझे हँसी आयी, फिर दया आई उनकी दशा पर और मेरे दुःखी हृदय से निकले ये शब्द मुख में व्यक्त हो गये। हे अन्तर्यामिन् प्रभो ? रक्षा करो इन हठियों की जो वेद पढ़ने और सत्संग करने की डींगें मारते हैं किन्तु जानते कुछ भी नहीं। हम सब कुछ जानते हैं, इस वृथा अभिमान में ही मत्त रहना था तो पढ़ने में अमूल्य समय नष्ट क्यों किया इन लोंगो ने।

ऐसे मानव सर्वथा दया के पात्र हैं। क्या ऐसे नरों से वे राक्षस उत्तम नहीं हैं? जो उठते बैठते चलते फिरते, खाते पीते, प्रत्येक दशा में ईश्वर का चिन्तन करते थे और सारे संसार को ईश्वररूप में देखते थे। मेरे विचार में मित्र भाव की अपेक्षा वह शत्रुभाव उत्तम है, जो जगत् के ईश्वर रूप में दर्शन कराता है। चाहे किसी प्रकार से हो तदाकार वृत्ति हुए बिना मुक्ति दुर्लभ है। मित्र, इष्ट एवं स्व स्व-रूप भाव में स्थित रह कर व्यक्ति यदि तदाकार वृत्ति बना लेता है तो वह जगत् के लिये अनुकरणीय हो जाता है। अतः यह कहना होगा कि उन प्रेमी भक्तों से वे बहुत श्रेष्ठ हैं जो प्रेमा भक्ति के पात्र तो बनते हैं परन्तु आचरण से सर्वथा हीन पाये जाते हैं। धधकती हुई विद्वेषरूपी अग्नि की विकराल लपटें उनके हृदय के सद्भावों को जलाकर भस्म कर डालती हैं। यह सत्य है कि सद्भावना से शून्य प्राणी अपने लक्ष्य से दूर जाकर गाढ़ अन्धकार में गिर जाता है। हमारा वेदान्त हमें रागद्वेष से बचाकर चराचर में आत्म दर्शन की शिक्षा देता है। प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि पड़ते ही अपना ही रूप भासने लगे ऐसे साँचे में ढलने की आज्ञा देता है। जब तक हम वेदान्त को व्यवहार में नहीं लाते, तथा मन-वाणी-कर्म से वह आचरण नहीं करते जो सब में आत्म दर्शन करवादे, तब तक हम हिरण्य कशिपु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भी हीन हैं। प्रायः मानव हिरण्यकशिपु के नाम को सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लग जाते हैं, तथा उससे अपने को श्रेष्ठ समझ कर गौरव की गरिमा में भर जाते हैं। किन्तु प्रातः स्मरणीय महर्षि व्यास जी ने उसकी दशा का जो चित्र-चित्रण किया है, उसकी समता में हम दूध के समुद्र में गिरी काँजी की बूँद के बराबर भी नहीं हैं। देखो भागवत् १०।२।२४ तथा १०।४४।३६ श्लोकों को, जिनसे ब्रह्मज्ञान का अभिमान करने वालों के मान मर्दित हो जाते हैं। यथाः—

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन्महीम्।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत्॥२४॥

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं,
पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपन्स्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतोयतः,
तदेवरूपं दुरवापमाप॥३६॥

यह है उस व्यक्ति की वृत्ति, जिसको अनेक अज्ञानी मनुष्य राक्षस कहते हैं। वह बैठा, चलता, खाता, पीता, बोलता, विचरता, सोता और स्वास लेता हुआ चक्रायुध को ही सामने देखता था। अतः उसको उसी दुर्लभ रूप की प्राप्ति हुई। क्या कोई यह कह सकता है, कि हम वार्तालाप करते हैं तो ब्रह्म से। चलते, खाते, विचरते सर्वदा ध्यान करते हैं ब्रह्म का और स्वास प्रस्वास से जपते हैं ब्रह्म को। इसी को मेरे आराध्यदेव नन्द-नन्दन ने ब्राह्मी स्थिति कथन किया है। चाहे किसी भी दशा में क्यों न हो यदि वह ब्रह्म का उस दशा में अभ्यास करता रहता है, तो उसकी मुक्ति अवश्य होगी। माता श्रुति की आज्ञा है, कि सर्वदा ब्रह्म का चिन्तन करो। यथाः—

तमेवधीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनं हितत्॥
(बृहदारण्यक ४।४।२१)

बुद्धिमान् उस आत्मतत्त्व को जाने, उसका ही विचार करे, वाणी से भी उसकी ही चर्चा करे, बहुत न बोले। अधिक बोलना वाणी का व्यर्थ व्यायाम करना है। अर्थात्-वाणी की सफलता तभी है जब वाणी ब्रह्म विचार का कथन करे और सब में ब्रह्म भावना करने का उपदेश दे।

जिनकी कृति से अनेकशः प्राणियों का उद्धार हुआ, हो रहा है, तथा होगा। दार्शनिक तथ्यों की प्राप्ति कामना करने वाला जिज्ञासु वर्ग जिनका सर्वदा ऋणी रहे गा, उन ब्रह्मभूत विद्यारण्य स्वामी जी ने पञ्चदशी में ब्रह्म का अभ्यास लिखा किः—

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योऽन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदु र्बुधाः॥१०६॥
(पञ्चदशी तृप्तिदीप प्रकरण ७)

उस ब्रह्म का ही चिन्तन करना, उसी का कथन करना, परस्पर उसी का प्रबोधन करना रूप जो एक ब्रह्म में ही तत्पर होना है, उसी को मनीषी महापुरुष ब्रह्माभ्यास कहते हैं।

जैसे-गोपियाँ कृष्ण के मार्ग में अपने नेत्र-बिछाये बाट जोहती रहती थीं। आपस में कृष्ण की ही चर्चा में अपना दिन बिताती थीं। एवं द्वारका से चले जाने पर आठों याम श्याम का ही मनन करती रहती थीं। दूध दुहते समय, दही बिलोते समय, लेपन-गृहमार्जन करते समय, रोते बच्चों को चुप करवाते समय, तथा यमुना से जल लाते समय आदि कृत्यों में कृष्ण का स्मरण करती रहती थीं। जब साधक भी अपनी साधना से इतना ऊँचा उठ जायगा, उसको सर्वत्र सब कार्यों के करने में ब्रह्म का ही ध्यान रहेगा, तब उसका ब्रह्माभ्यास परिपक्व होकर उसको ब्रह्म बना देगा।

ॐ शान्तिः! ॐ शान्तिः!! ॐ शान्तिः!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-संग्राम

[ले०:—कार्ष्णि महानन्द उदासीन "वाराणसी"]

संसार में वह व्यक्ति अभागा है, जिसको जीवन में संग्राम नहीं करना पड़ा। संग्राम व्यक्ति की कसौटी है। भयंकर अग्नि में तपाने पर ही सुवर्ण की शुद्धता का परिचय मिलता है। मन्थन के अनन्तर ही दूध या दही से मक्खन सम्भव है। घानी में कठिन पेरण के बाद ही तिल या सरसों से तेल निकल सकता है। कठिन तपश्चर्या, त्याग, संयमादियों में ही ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज निहित है। संग्राम स्थल पर ही क्षत्रियों का क्षत्रियत्व प्रमाणित होता है। काँटों से डर कर कमल का मिलना कभी सम्भव नहीं। संग्राम से डरते हुए सफल जीवन की कल्पना करना बालु की भित्ति पर अट्टालिका निर्माण की भांति है। जीवन की मौलिकता न केवल भौतिक धन सम्पत्ति पर निर्भर है, अपितु विचार तथा धारणा पर आधारित है। प्राणी इस संसार में पदार्पण करने के साथ ही सर्व प्रथम "सुख–दुःख रूप ताज" को अपने मस्तक पर धारण करके अवतीर्ण होता है। व्यक्ति सुख को गले से लगाता है, लेकिन उसकी दृष्टि ताज पर नहीं जाती। वह सुख से सम्बन्ध जोड़ता है और दुःख से विरोध। परन्तु दुःख ने तो सुख के मस्तक पर ही रहना है। सुख सब कोई चाहता है, दुःख को कोई भी नहीं चाहता। यदि सुख की तरह दुःख का भी व्यक्ति हृदय से स्वागत करे, तो दुःख का अनुभव ही न करना पड़े। सुख या दुःख कोई बाहरी वस्तु नहीं है, यह अपने ही हृदय का आरोपण मात्र है, न कि बाहरी वस्तुओं की देन। संसार का प्रत्येक अंग दुःख रूप है, इसलिये हमें दुःख होता है। वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है, अपितु हमारे हृदय के प्रत्येक अंग कलुषित हैं। इसलिये हमें संसार के सभी वस्तुओं में दुःख रूपता प्रतीत होती है।

प्राणियों का सुख की ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त जीवन में सुख की प्रवृत्ति बनी रहती है। इस प्रवृत्ति के अपनाने मात्र से व्यक्ति सर्वाङ्गीण सुखी नहीं हो सकता। यही कारण है कि भौतिक सब साधनों की उपस्थिति में भी व्यक्ति हृदय से दुःखी पाया जाता है।

जीवन को सर्वाङ्गीण सुखी बनाने के लिये व्यक्ति को जीवन से सम्बन्धित सभी द्वन्द्वों में समन्वय की स्थापना करना नितान्त आवश्यक होगा और इस समन्वय के लिये वैयक्तिक, सामाजिक तथा आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय संग्राम अपेक्षित है। संसार की बड़ी–बड़ी विभूति, जैसे महात्मा कबीर, भगवान् बुद्ध, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, सुकरात, ईशामसी तथा महात्मा इब्राहीम, लिंकन आदि महान् आत्माएँ जिनका संसार सदा आभारी रहेगा. कितने भयंकर मानसिक तथा सामाजिक संघर्षों के साथ उनका जीवन बीता। एक महात्मा वाशिंगटन का जीवन संग्राम ही विशाल राष्ट्र अमेरिका के असंख्य जन समुदाय का स्वतन्त्र भाग्य विधाता बना। स्वतन्त्र भारत अपनी स्वतन्त्रता के लिए महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोष, पं० जवाहरलाल नेहरू, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि अनेकों महात्माओं के जीवन संग्राम का चिर कृतज्ञ रहेगा। एक व्यक्ति का जिवन संग्राम यदि एक विशाल राष्ट्र में आमूल परिवर्तन ला सकता है, तो क्या कारण है कि हम अपने में परिवर्तन न ला सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें एक मात्र हेतु यह है, कि हम संग्राम से दूर भागते हैं। संग्राम से न घबराने वालों के लिये किसी प्रकार गरीबी आदि विषम परिस्थिति अपने मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकती। संसार के बहुत बड़े-बड़े महापुरुष नितान्त शोचनीय परिस्थितियों से ही आगे बढ़ कर विश्व के पथ-प्रदर्शक बने हैं। संग्राममय जीवन का एक प्रमुख अंग त्याग है। व्यक्ति को किसी ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचने के लिये उसके बहुत से अवान्तर प्रतिद्वन्दियों से लड़ना पड़ता है। लक्ष्य अपनी रुचि के सर्वथा प्रतिकूल न होना चाहिये। अन्यथा अपने निश्चित लक्ष्य प्राप्ति हेतु किया हुआ संघर्ष व्यक्ति के लिये महान् घातक बनेगा। एक समय भगवान ब्रह्मा जी ने मनुष्यों के लिये "द" शब्द का उपदेश किया था। "द" शब्द का साधारण अर्थ है-दान। दान शब्द का अर्थ केवल कुछ धन-सम्पत्ति को किसी को देना ही नहीं, बल्कि इसका अर्थ है जीवन यात्रा सम्बन्धी सभी साधनों से अपना ममत्व हटा लेना। यही आत्म शान्ति का सर्वोत्तम साधन है। "द" शब्द से ब्रह्मा जी का केवल दान में ही तात्पर्य नहीं था, अपितु अहंकार के दमन में ही तात्पर्य था। अहंकार के दमन में व्यक्ति मन माना नहीं हो सकता। उसको सामाजिक बन कर रहना पड़ेगा। वैयक्तिक भावना ही व्यक्ति का हृदय संकीर्ण बनाती है और उसके विपरीत सामाजिक भावना व्यक्ति को विशाल हृदय बनाती है। व्यक्तिवाद और समाजवाद में इतना ही अन्तर है, कि व्यक्तिवाद अपने एक व्यक्ति के लिये राष्ट्र के साथ धोखा देकर विशाल जन-समुदाय को विपत्ति में डाल सकता है और एक समाजवादी, समाज के किसी एक अंग के हित के लिये अपने जीवन को भी दे देगा। यहाँ पर समाजवाद कहने से मेरा तात्पर्य किसी अधुनिक प्रचलित समाजवादी दल से नहीं, अपितु सामाजिक भावना तथा विश्वबन्धुत्व की भावना से तात्पर्य है। इस प्रकार की भावना वाला व्यक्ति चाहे किसी दल विशेष में हो या न हो, वह संसार के लिये महान् हितकारी है। यद्यपि संघर्ष समाजवाद और व्यक्तिवाद दोनों में समान है, परन्तु व्यक्तिवाद पर संघर्ष, व्यक्ति को निकृष्ट, स्वार्थी और तुच्छ बनाता है और समाजवाद पर संघर्ष व्यक्ति को महान् बनाता है। जीवन संग्राम में परमात्म तत्त्व पर विश्वास नितान्त आवश्यकीय है। आज का संसार चाहे इस सत्ता पर विश्वास न करे, परन्तु इस विश्वास के बिना व्यक्ति शान्ति का भागी कदापि न बन सकेगा। दार्शनिकों के मतानुसार यदि यह विश्व मन की कल्पना मात्र है और काल्पनिक संसार यदि जीवन को दुःखी बनाने में समर्थ है, तो क्या ईश्वर की कल्पना करके जीवन को सुखी बनाना सम्भव नहीं? प्रगति के मार्ग पर यह विश्वास व्यक्ति को उत्साह तथा बल देता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः।

धर्म की उत्कृष्टता

हृदय में धर्म (न्याय) का निवास होने से,
चरित्र में सौन्दर्य का निवास होगा।
चरित्र में सौन्दर्य का निवास होने से,
घर में सामञ्जस्य का वास होगा।
घर में सामञ्जस्य का निवास होने से,
राष्ट्र में व्यवस्था का विस्तार होगा।
राष्ट्र में व्यवस्था का विस्तार होने से,
विश्व में शान्ति का प्रसार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्‌गुरु सर्वस्व है

(ले०:—हरिश्चन्द्र गुलाटी, कक्षा-६, सहारनपुर)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

संसार में प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है, कि मैं सुखी हो जाऊँ । इसी इच्छा वश मानव कभी धन, कभी पुत्र, कभी परिवार, कभी विद्या और कभी अन्य चमक-दमक एवं कृत्रिम वस्तुओं की ओर भागता है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए शारीरिक आरोग्यता मिलने पर भी सुख की उपलब्धि असम्भव हो जाती है। यदि इन सब में सुख नहीं तो सुख कहाँ मिलेगा ? यह एक स्वाभाविक प्रश्न हो जाता है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है, कि सुख श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु की शरण में जा कर प्राप्त होता है।

किन्तु जब तक हमारे अन्तःकरण में अहंभाव का अस्तित्व विद्यमान रहेगा, तब तक हमें वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब हम अपने अहंभाव "मैं" इस पद को छोड़ने का अभ्यास करेंगे, तभी हमारे ऊपर सदुपदेशों द्वारा गुरु कृपा हो सकेगी। जिससे हमारी रुचि धार्मिक कृत्यों की ओर लग जायगी। सद्‌गुरुदेव आप निर्भय होते हैं और दूसरों को भी अज्ञानान्धकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार गुरु कृपा से शिष्य परमानन्द में हिलोरे लेने लगता है।

गुरु की शरण में जाने वाले व्यक्ति के लिये संसार के भोग-पदार्थ बाधक न बन कर साधक बन जाते हैं। जैसे-सर्प एक ही है, हम तो उससे डर कर दूर भाग जाते हैं, पर मदारी अपनी सम्मोहन विद्या के द्वारा उसी को अपने वश में कर अपनी आजीविका का साधन बना लेता है। इसी प्रकार मानव भी सद्‌गुरु के वाक्यों (सदुपदेशों) द्वारा जीव-जगत और परमात्मा का ज्ञान कर लेने पर नर से नारायण बन सकता है। जब एक भील मिट्टी की मूर्ति में गुरुभाव रख कर धनुष-विद्या सीख सकता है, तो क्या हम सद्‌गुरु के पास जाकर मनुष्य ही रहेंगे ? कदापि नहीं। व्यक्ति जब ईश्वर को भूल जाता है; तब भगवान् गुरु रूप से प्रकट होकर शिष्य का कल्याण करते हैं। अत-एव हमें चाहिये कि ज्ञानचक्षु प्रकट करने के लिये सद्‌गुरु की शरण में जाएँ। महापुरुषों का सत्संग करते हुए उनका सदुपदेश ग्रहण करें, उस पर चलें इसी में हमारा वास्तविक हित है। शास्त्र कहता है-जो व्यक्ति जिस वस्तु के लिये प्रयत्न करता है, उसे वही वस्तु मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

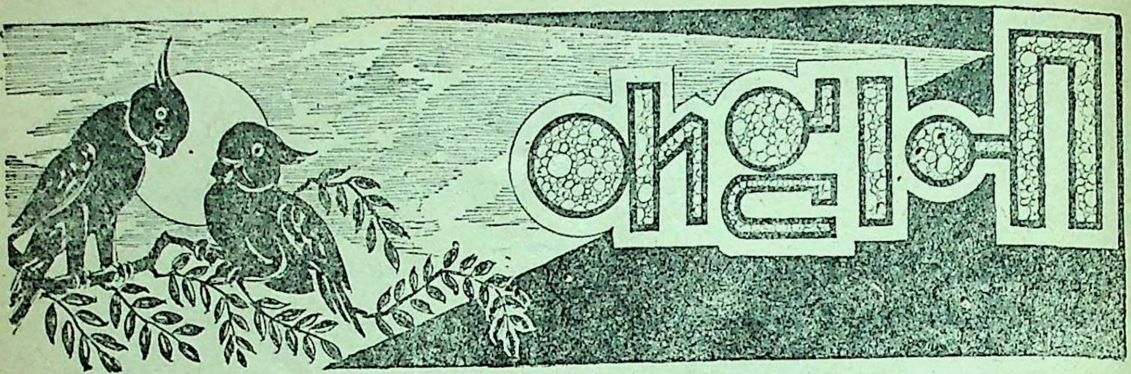

क्या धर्माचरण पूर्वक कर्म करते रहने पर भी आपत्तियों के बादल नहीं मँडराते ? पर अन्त में शुभ परिणाम किसके हाथ, यदि वह जानने की इच्छा है, तो पढ़िये:—

"अन्त भले का भला"

[ले०:—विष्णुदत्तपाण्डेय शास्त्री "विशारद"]

पण्डित आत्मदेव जी यथा नाम तथा गुण वाले व्यक्तियों में से थे। वे आत्मा को देवता तुल्य समझते थे। "अयमात्मा ब्रह्म" यह अनुभूति उन्हें चिरकाल से ही हो गयी थी। ज्ञानी होते हुए भी नित्य नियम के अनुसार लोक संग्रहार्थ सन्ध्योपासनादि कृत्य भी अहर्निश बड़ी तल्लीनता के साथ किया करते, साथ ही साथ उदरदरी की पूर्ति के लिये घरेलू काम धन्धों से भी जी न चुराते थे। लोक मर्यादा का उन्हें बराबर ध्यान बना रहता था। यद्यपि उनके विवाह किये बिना भी सांसारिक सृष्टि चलती ही रहती, फिर भी उन्होंने सांसारिक व्यक्तियों की तरह विवाहादि गृहस्थोचित सभी कृत्य किये। उनके एक पुत्र रत्न की उत्पत्ति हुई। जिसका नाम करण आत्मदर्शी किया गया। आत्मदर्शी धीरे-धीरे बढ़ने लगा, जब आठ वर्ष का हुआ तो उसका उपनयन संस्कार आत्मदेव जी ने बड़े विधि-विधान से किया। पुत्र को थोड़ा बहुत लिपि का ज्ञान तो करा दिया था, फिर शीघ्र ही बारह वर्ष की ही अवस्था में आत्मदर्शी की शादी एक अल्पवयस्का बालिका से कर दी, जिसकी उम्र केवल पाँच वर्ष की थी। उन दिनों विवाह करने के बाद शीघ्र ही लड़के को काशी पढ़ने के लिये भेज दिया जाता था। रेल-मोटर के कुछ भी साधन न थे। यात्रा पैदल ही नापनी पड़ती थी। आत्मदेव जी ने सोचा—लड़का कुछ योग्य तो हुआ। इतनी पढ़ाई से ही पेट तो भर ही लेगा, पर हमने जो इसका नाम आत्मदर्शी रखा, वह बात तो बनी नहीं। क्या कोई सम्पन्न व्यक्ति अपने पुत्र का नाम भिखारीदास रख दे, तो वह पुत्र वास्तव में भिखारी (भिक्षुक) तो नहीं बन जाता। इसी प्रकार कोई निर्धन पिता अपने पुत्र का नाम करोड़ीमल रख दे, तो वह पुत्र करोड़पति तो नहीं कहला सकता, जब तक कि अपने आप योग्य न बन जाय। अतएव वास्तविक आत्मदर्शी हुए बिना आत्मदर्शी नाम करण झूठा ही है, लोक संज्ञा का कारण मात्र है। इन सब बातों को सोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर आत्मदर्शी काशी विद्याध्ययन के लिये भेज दिया गया। बालक आत्मदर्शी विश्वनाथ गुरुकुल काशी में गुरु चरणों में रह कर विद्या धन संचय करने लगा। यद्यपि उसका विवाह हो गया था, पर उसे वैवाहिक सुख-भोग का कुछ भी ज्ञान न था। अतएव उसका चित्त निर्मल था, पढ़ने में खूब मन लगता था। इधर आत्मदेव जी अपनी पुत्र बधू को पुत्रवत् पालन करने लगे। वधू भी १० वर्ष की हो चुकी थी। अपने सास-श्वसुर को पितृ-तुल्य समझती थी। जो बन पड़ता निःसंकोच छोटे-छोटे कामों से उनकी सेवा कर, पुत्र वियोग जन्य दुःख से मन भुलाया रखती थी। मानो सास-श्वसुर उसके सास-श्वसुर न होकर माता-पिता ही हों। इस प्रकार आत्मदेव जी सन्तोष पूर्वक जीवन यात्रा चलाते रहते थे। आत्मदर्शी को काशी में विद्याध्ययन करते हुए पूरे बारह वर्ष हो गये। आत्मदर्शी वास्तव में आत्मदर्शी विद्वान् हो चुके थे। अब उनकी अवस्था २४ वर्ष की हो गई थी। घर में धर्मपत्नी भी सत्रहवें वर्ष में पदार्पण कर रही थी। विद्वान् आत्मदर्शी गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर पच्चीसवें वर्ष की समाप्ति पर पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर गृहस्थोचित धर्म को स्वीकार करने के लिये घर को चले। वे अब पूर्ण विद्वान् थे। आज कल के विद्वानों की तरह पठन-पाठन का ज्ञान तो उन्हें होना ही था, पर साथ ही साथ मन्त्र-तन्त्र विद्या व पशु विद्या में भी पारंगत हो चुके थे।

जब वे घर को चले आ रहे थे, तो रास्ते में उन्हें एक पीपल का वृक्ष दिखाई दिया, उसकी जड़ में एक सुन्दर चबूतरा बना था। आत्मदर्शी जी थके माँदे तो थे ही, उन्होंने देखा पास ही में एक स्वच्छ झरना बह रहा है। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु शरीर की थकान को दूर किये जा रही है। स्नान-ध्यान और विश्राम करने की ठानी। स्वच्छ जल में स्नान कर चबूतरे के ऊपर आसन बिछा पद्मासन लगा, गायत्री जप करने लगे।

थोड़ी दूर में एक ग्वाला कुछ गायों को चरा रहा था, साथ ही में वह लकड़ी भी फाड़ता जाता था। वह लकड़ी फाड़ने में तल्लीन था। इतने में क्या होता है, कि एक काला अजगर (साँप) उधर से चला आया। वह चला जा रहा था कि अकस्मात् ही उसके शरीर में एक गाय का पैर पड़ गया। अजगर ने पीछे मुड़कर देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने पास में स्थित ३,४ गायों को डस दिया। गायें चित हो कर गिर पड़ीं। इतने में ग्वाला देखता क्या है, कि गायें मरी पड़ी हैं। ग्वाले ने पास आकर अच्छी प्रकार देखा, तो उसने अनुमान लगाया कि यह अवश्य ही किसी भयङ्कर अजगर का किया हुआ राज है। वह कुल्हाड़ी ले कर चल पड़ा और कहने लगा-कि उस अजगर को आज मैं जिन्दा नहीं छोड़ सकता, जिसने कि मेरी गायों को सदा के लिये धरती पर धराशायी कर दिया। उधर अजगर ने भी देखा कि ग्वाला अत्यन्त क्रोधित फरसा लिये चला आ रहा है, अब प्राणों की खैर नहीं। अजगर अपने प्राणों को बचाने के लिये अपनी टेढ़ी-मेढ़ी चाल से भयाकुल होता हुआ चला तो देखता क्या है, कि पीपल के पेड़ के नीचे एक व्यक्ति अपने ध्यान में मग्न है। अजगर वहाँ पर गया और बड़ी करुणा से ध्यान मग्न व्यक्ति से कहने लगा—मेरी रक्षा करो? मेरी रक्षा करो? ध्यान मग्न आत्मदर्शी जी के नेत्र खुले। देखते क्या हैं, कि पास में एक भयंकर विषधर अपना फन फैलाये इधर उधर रेंग रहा है। करुणार्द्र हृदय सर्पराज की विनम्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना को आत्मदर्शी जी ने सुना और समझा। आत्मदर्शी जी कहने लगे—भाई नागराज ? यद्यपि जो मैं हूँ सो तू है और जो तू है सो मैं हूँ, पर व्यावहारिक अवस्था में आखिर तू दुष्ट है।

"शठे शाठ्यं समाचरेत्"

अर्थात्-धूर्त्त के साथ धूर्त्तता का व्यवहार करना चाहिये। इस उक्ति के आधार पर इस वक्त तेरी रक्षा करना महापाप है।

सर्पराज ने कहा—हे महाराज ? दुष्ट भी यदि निःशस्त्र हो कर शरण में आ जाय तो उसकी रक्षा करना, उसको अभय-प्राण दान देना, क्या धर्म नहीं ? फिर आप तो अपनी संज्ञा के अन्वर्थक आत्मदर्शी हैं।

इस प्रकार करुणार्द्र हृदय अजगर की प्रार्थना को सुन कर आत्मदर्शी कहने लगे। भाई ? तेरी रक्षा का उपाय तो हम कर दें, पर इस वक्त तेरी रक्षा करने पर बाद में तू हमारा ही घातक सिद्ध होगा, क्योंकि कुटिल हृदय प्राणी कृतज्ञता को न समझते हुए समय पड़ने पर कृतघ्न बन जाया करता है। नाग ने कहा—प्रभो ! जिस प्रकार आप मुझे अभय दान देकर प्राणों की रक्षा करने को उद्यत हो रहे हैं, उसी प्रकार मैं भी आपको अभय-दान देते हुए कहता हूँ, कि मैं भविष्य में आपके लिये अनिष्ट-कारक कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

हिंसक द्विजिह्व (सर्प) की विनयावनत वाणी का आत्मदर्शी जी के दिल पर प्रभाव पड़े बिना न रहा, अखिर आत्मदर्शी जो ठहरे। उन्होंने अपनी पाशविक विद्या के प्रभाव से शीघ्र ही उस नागराज को हाथ में लेकर जमीन में से थोड़ी सी मिट्टी की चुटकी ली और नागराज के शिर पर घुमा कर छूमन्तर किया, कि वह एक मक्खी की शक्ल में परिवर्त्तित हो गया और उस मक्खी को पास में रखी हुई पोथी के पन्नों में अन्तर्हित (छिपा) कर दिया। उधर जब ग्वाला इधर-उधर अजगर की खोज में कोपाग्नि से जलता हुआ पण्डित जी के पास से गुजरना ही चाहता था, कि उसकी दृष्टि सहसा पण्डित जी (आत्मदर्शी) पर पड़ी। वह कहने लगा—पण्डित जी महाराज ? क्या आपने इधर से जाते हुए एक अजगर को तो नहीं देखा ? पण्डित जी की माला अधूरी थी, इसलिये वे बोले नहीं उन्होंने सोचा यदि बात को प्रकाशित कर दें तो नागराज की खैर नहीं, यदि झूठ बोल कर कह दें, कि हमने यहाँ से चलते हुए किसी सर्प को नहीं देखा, तो असत्य भाषण के अनाचार का भय है। अस्तु उन्होंने हाथ को घुमा कर इशारा मात्र कर दिया, जिसका मतलब होता था हमें मालूम नहीं। ग्वाला तो निराश हो कर वापिस लौट गया। पण्डित जी ने उस पोथी के अन्दर छिपायी मक्खी को निकाल कर पुनः एक मिट्टी की चुकटी ले छू-मन्तर किया तो वह मक्खी पुनः पूर्ववत् अजगर हो गया और वह आत्मदर्शी जी को निगलने की सोचने लगा। आत्मदर्शी जी कहने लगे—भाई ? विचारो तो सही, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी। नाना प्रकार से बहुत समझाने पर भी अजगर ने एक न मानी और वह कहने लगा—मैं ऐसी वैसी कुछ नहीं जानता, मुझे तो बड़ी जोर की भूख लगी है। आत्मदर्शी जी व्यावहारिक जगत् में थे, सोचा प्राणों की भिक्षा मिलनी कठिन है। किसी प्रकार धैर्य धारण कर कहने लगे—अच्छा मैं तीन जगह पूछ कर आता हूँ, कि क्या अजगर ने मुझे खा लेना चाहिये। विषधर ने कहा—अच्छा हम इतनी तेरे ऊपर कृपा कर सकते हैं, तू पूछ कर आ। पण्डित जी पास में चरती हुई एक गाय के पास में गये। गौमाता को प्रणाम कर अपनी सारी राम कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनाई, कि इस-इस प्रकार मैंने उस अजगर की जान बचाई, अब वह उल्टा मुझे ही निगल जाना चाहता है। गौमाता ने कहा—बेटा ? तुम्हें तो कच्चा ही निगल जाना चाहिये था, अस्तु तुम अभी तक बचे हुए हो "अन्त भले का भला"। गौमाता के इस कथन को सुन कर पण्डित जी बड़े उदास हुए उन्हें तो पूर्ण विश्वास था, कि गौमाता अवश्य ही न्याय करेगी। वे चले आ रहे थे, तो उन्हें मार्ग में ही एक सियार टकर (मिल) गया। उससे भी बीती राम कथा सुनाई। सोचा पशुओं में सियार बुद्धिमान् होता है, वास्तविक निर्णय देगा।

उसने भी यही कहा—कि तुम जैसे व्यवहार शून्य को न जाने अभी तक किस परमात्मा ने बचा रखा है। तुम्हें तो कच्चा ही निगल जाना चाहिये था। पण्डित जी लौट पड़े, नागराज से कहा—कि दो जगह से तो आपकी जीत हुई। इसलिये अब मेरा अन्तिम समय है, तीसरी बात अपने माता, पिता जी से पूछ लूँ तथा उनका दर्शन तो करलूँ। क्योंकि मैं बारह वर्ष में काशी से आ रहा था, वे मेरी बाट जोहते होंगे। सर्प ने कहा—कितनी देरी लगेगी, क्योंकि मेरे पेट की आग प्रचंड होकर बढ़ती ही जा रही है। आत्मदर्शी जी ने कहा—यहाँ से मेरा घर एक दिन का रास्ता है। कल शाम तक मैं वापिस लौट कर अवश्य आ जाऊँगा। नागराज ने आज्ञा देदी। पण्डित जी घर पहुँचे। उदास चित्त घर में जाकर पलंग पर लेट गये। माता-पिता को मौन रूप में प्रणाम किया, पर कुछ बोले नहीं। माँ बोली—बेटा ? बहुत दूर से आये हो, थकाई काफी होगी। क्या कुशल पूर्वक तो आये न, पर पण्डित जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मां ने भी सोचा-चलूँ बेटे के लिये भोजन बनालूँ। अब तो घर आगया है, ज्यादा बातें तो कल से करती रहूँगी। पिता भी आये, पर आत्मदर्शी उनसे भी अवाक् ही रहे। भोजन बन गया। माँ ने बधू से कहा—जाओ ? बेटे से भोजन के लिए कहो। बधू पतिदेव के चरणों में गई। पैर छुए, शिर रखा, फिर कुछ मुस्कराती हुई सी बोली-भोजन के लिए माता जी... दो तीन बार कुछ टूटे शब्दों में कहा, पर पतिदेव ने कुछ भी उत्तर न दिया। धर्मपत्नी कुछ सिसकने लगी, तब आत्मदेव जी बोले—प्रिये ? आज के खाने मात्र से क्या होगा। कल को तो मैं ने काल कवलित हो जाना है। यह कर उन्होंने संक्षेप में अपनी राम कहानी कह डाली। बधू ने सास के पास जाकर सब वृत्तान्त कह दिया। आत्मदेव जी को खबर लग गई। अब तो माता पिता धर्मपत्नी तीनों व्यक्ति मिल कर आत्मदर्शी के पास आ गये और कहने लगे कि वह अजगर पहले हमें खायेगा। हमारे जीते जी वह तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता। इस प्रकार नाना-भाँति समझाया और कहा-कि तुम्हें उस अजगर के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं। दूसरे दिन शाम को अजगर प्रतीक्षा करता रहा, पर आत्मदर्शी जी उसके पास नहीं पहुँचे। अजगर मारे गुस्से के रात में ही चल पड़ा। सबेरा होते ही आत्मदर्शी जी के घर के पास आ डटा। उसके फुफकारों से उस वक्त बड़े जोर की विषैली हवा चल रही थी। बूढ़े आत्मदेव ने बाहर झांका तो भयंकर अजगर को देखा, वह घर की ओर बढ़ा चला आ रहा था। आत्मदेव ने कहा—खबरदार ? पहले हमको खाना होगा, तब आत्मदर्शी को। नागराज ने बूढ़े से कहा—आखिर तुम चाहते क्या हो ? आत्मदेव जी ने अपने वात्सल्य की सारी कथा कह डाली। नाग ने कहा लो तुम्हें सम्पत्ति की आवश्यकता मालूम पड़ती है। एक उल्टी की और बूढ़े आत्मदेव के पास अशर्फियों का ढेर लगा दिया। आत्मदेव जी तो अशर्फियों को समेटने लगे, अजगर आगे बढ़ा,

(शेष पृष्ठ २४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस तथा मानस के भोले भक्त

[ले०—देवराज B. A. प्रभाकर-देहली]

रामचरित-मानस भारत का वह महान् ग्रन्थ है, जिसको कि भगवान् ने भारतीय जनता पर महान् उपकार स्वरूप पूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रकाशित करवाया। आज यह ग्रन्थ जितना मानव जीवन के समीप है, उतना अन्य कोई नहीं। प्रथम तो यह हिन्दी में लिखा गया है, दूसरे मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का सारा जीवन वर्णन कर मानव जीवन के प्रत्येक भाग पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे अधिक समझ रखता हो, अथवा कम। इससे लाभ उठा सकता है। मानस के अध्ययन से यह पता लगता है, कि राम इस महाकाव्य के लोक नायक हैं। शेष पात्र, जैसे-भरत, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, अंगद, आदि, राम के चारों ओर ही घूमते प्रतीत होते हैं। तुलसी का राम साक्षात् परमात्मा है और उपर्युक्त पात्र भी उनके प्रति अनन्य भक्ति-भावना रखते हैं। अथवा यों कहना चाहिये, कि वे पात्र राम को केवल शरीरधारी न समझ विश्वात्मा समझते हुए पूजा तथा स्तुति के द्वारा महान् प्रेम प्रकट करते हैं।

मानस-मानव को समाज में रखकर सभी कर्म करवाताहुआ आध्यात्मिक सुख-शान्ति की ओर ले जाता है। वास्तव में मानस का यह सब से बड़ा रहस्य है। अत एव यह एक महान् आध्यात्मिक ग्रन्थ माना गया है। प्राचीन ऋषियों ने मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया है, वह आध्यात्मिक शान्ति तथा सुख को दृष्टिकोण में रख कर ही किया है। गोस्वामी जी भी मानस में उसी प्रणाली को लेकर चले हैं। किन्तु मानस के भोले भक्तों ने इस की वास्तविकता को न जान कुछ और ही समझ लिया है, तथा इसको सांसारिक मर्यादा तक ही सीमित मान लिया है। भरत के निम्न शब्दों का अर्थ उन्होंने सर्वथा विपरीत लिया है :—

अर्थ न धर्म न काम रुचि,
पद न चहहुँ निर्वान।
जन्म-जन्म रति राम पद,
यह वरदान न आन॥

प्रस्तुत दोहे से वह समझते हैं, कि भरत जन्म-जन्मान्तर तक अपने बड़े भाई का दास बना रहना चाहता है। उन्होंने भरत की पावन भक्ति-भावना को दासता का रूप दे दिया है। वे राम को केवल एक शरीर मात्र समझ भरत को उसका उपासक समझते हैं। इसी निश्चय को सन्मुख रखते हुए वे स्वयं भी वैसा ही आचरण करते हैं। वे अपने बड़ों तथा छोटों में आत्मदर्शन न कर उनको केवल शरीर समझ क्रमशः सेवक तथा स्वामी बन बैठते हैं।

रामचरित मानस का उद्देश्य-प्राणियों में परस्पर छोटे-बड़े की भावना लाकर द्वैत उत्पन्न करना नहीं; अपितु सब में आत्म सत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समभ्ह एकता लाना है। मानस का अभिप्राय ऐसे समाज का निर्माण करना नहीं है, जिसमें स्वामी तथा सेवक हों। बल्कि ऐसा समाज निर्माण करना है, जिसमें न स्वामी हों, न सेवक ही। केवल एक आध्यात्मिक एकता हो। जैसा कि निम्न पद्य से स्पष्ट है :—

प्रभु तरु तर कपि डार पर, किये ते आप समान।
तुलसी कहा न राम से, साहिब शील निधान॥

तुलसीदास जी तो यहाँ उन जंगल में रहने वाले पशुओं को भी भगवान् की समता दे रहे हैं, तो फिर वे मानव समाज में किस प्रकार स्वामी तथा सेवक बनाने का अभिप्राय रख सकते हैं। भरत की राम के प्रति पावन तथा उज्ज्वल भक्ति को दासता का नाम कदापि नहीं दिया जा सकता। वह तो भरत की विश्वात्मा श्री राम के साथ एकता प्रकट करती है। भक्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं हुआ करता। सूर्य तथा धूप एक ही वस्तु के दो नाम हैं। भरत के सैया राम, केवल एक शरीर तक ही सीमित नहीं; बल्कि असीम प्रेम, सौंदर्य, ज्ञान, सत्य, अहिंसा, तेज, धर्म तथा दया की मूर्त्ति और प्राणिमात्र का अपना आप हैं। यह है, श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का मत। अब देखिये भगवान् शंकर क्या कहते हैं :—

उमा जे राम चरण रत, विगत काम-मद-क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत्, कासों करहिं विरोध॥

वास्तव में सच्चे भगवत् अनुरागी वही हैं, जो समग्र संसार को राममय देखते हैं। भरत सभी स्थानों पर सत्य-मार्ग का अनुसरण करते हैं। वे किसी बात को इसलिये नहीं मानते, कि वह किसी अपने से बड़े शरीर द्वारा कही गई है, बल्कि प्रत्येक बात को अपने स्वतन्त्र तथा सत्य निश्चित किये गये विचार के तराजू पर तोल कर क्रिया में लाते हैं। निम्न चौपाइयाँ भरत के प्रति भगवान् श्री राम ने स्वयं कही हैं :—

भरत हंस रविवंश तड़ागा,
जनमि कीन्ह गुण दोष विभागा।
गहि गुन पय तजि अवगुन वारी,
निज जश कीन्ह जगत् उजियारी॥

राम के वन गमन के पश्चात् उन्होंने अपने गुरुजनों तथा परिवार द्वारा दी गई राज्य करने की अनुमति को ठुकरा कर श्रीराम को वन से लौटा लाने को वन की ओर प्रस्थान किया।

भगवान् राम जो इस महान् काव्य के नायक हैं, वे भी विषमता को दूर कर स्थान-स्थान पर समता पर ही जोर देते हैं। बन से वापिस अयोध्या आने पर वह अपने साथ लाये हनुमान, सुग्रीव आदि साथियों का अपने गुरु श्री वशिष्ठ जी से परिचय कराते समय इस प्रकार कहते हैं :—

ये सब सखा सुनो गुरु मेरे,
भये समर-सागर कँह बेरे।

श्री राम यहाँ उनको अपने अनुचर या सेवक न कह सखा कहते हैं। उत्तरकाण्ड में एक स्थान पर और, जब कि वे निषाद राज को अयोध्या से वापिस घर जाने की अनुमति देते हैं तो कहते हैं :—

तुम मम सखा भरत सम भ्राता,
सदा रहहु पुर आवत जाता।

यहाँ वे एक छोटी जाति से सम्बन्ध रखने वाले निषाद को भी सखा कह कर पुकारते हैं, तो स्थान-स्थान पर मानस में देहाध्यास से ऊपर उठने तथा आध्यात्मिक एकता को प्राप्त करने का ही आदेश तथा उपदेश दिया गया है।

किन्तु केवल इस बात को जान लेने से हमारा कार्य्य समाप्त नहीं हो जाता। बल्कि इस को जीवन में लाना होगा। प्राचीन ऋषियों द्वारा निर्माण किये गये चारों आश्रम इस एक को प्राप्त करने का साधन प्रदान करते हैं।

गृहस्थ जीवन का लक्ष्य केवल सन्तान उत्पन्न करना नहीं है, अपितु अपने आप को दूसरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080458

देखना है। अत एव प्रत्येक पति-पत्नी को अपने मध्य में खड़ी द्वैत की दीवार को गिरा कर एक ही आत्मा को दो तथा अनेक शरीरों में देखना चाहिये। गोस्वामी जी भगवान् राम और माता सीता के पारस्परिक सम्बन्ध को इस प्रकार लिखते हैं :—

गिरा अर्थ जल बीच सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीता-राम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

जल और जल की लहर की भाँति सीता और राम दो नहीं, वास्तव में एक ही हैं। केवल कहने में दो प्रतीत होते हैं।

गृहस्थ हमारा एक छोटा समाज है। यहाँ इस आध्यात्मिक एकता के पाठ को पढ़ आगे बढ़ना है और फिर सारे देश तथा विश्व में आध्यात्मिक एकता स्वतन्त्रता और प्रेम का अनुभव करना है। आत्मा में सदैव स्थित रहने वाले मानव की सेवा में प्रकृति की सब शक्तियाँ झुक जाया करती हैं। रामचरित मानस में भी इस का सुन्दर वर्णन आता है। जरा निम्न चौपाइयों को तो देखिये :—

मंगल रूप भयो बन तब ते,
कीन निवास रमापति जब ते।
सुन्दर बन कुसुमित अति शोभा,
गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कन्द मूल फल पत्र सुहाये,
भये बहुत जब ते प्रभु आये।
जहाँ जहाँ जावहिं देव रघुराया,
करहिं मेघ नभ तहाँ-तहाँ छाया॥

इसलिये गृहस्थ जीवन को केवल शारीरिक सुख तथा सन्तान उत्पत्ति का मात्र साधन न समझ आध्यात्मिक उन्नति का साधन समझते हुए, सदैव आध्यात्मिक सुख-शान्ति, जो कि कभी नाश नहीं होती, उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसी भावना को ले यदि गृहस्थ का उपयोग किया जायगा तो दुःखी गृहस्थ अवश्य सुखी हो जायगा।

(पृष्ठ २१ का शेष)

बुढ़िया सामने आई। उसने अपनी करुण कहानी सुनाई और कहा—कि पहले मुझे खा, तब आत्मदर्शी को छूना। नागराज ने कहा-मालूम पड़ता है,कितुम भी अपने स्वार्थ के लिये रोती हो। इतना कहना था, कि एक उल्टी बुढ़िया के सामने भी की और अशर्फियों का ढेर लगा दिया। अब बुढ़िया को भी अशर्फियों की सूझी, वह भी उन्हें समेटने लगी।

अजगर आगे बढ़ा, तो पुत्र बधू सामने दिखाई दी। नागराज फुफकार छोड़ रहा था, बधू ने हाथ जोड़ दिये। नागराज ने वधू को आशीर्वाद दिया-सौभाग्यवती रहो। इतना कहते ही आगे बढ़ने लगा। वधू ने कहा—पहले मुझे खाना होगा, तब मेरे पतिदेव को। नागराज ने बधू के सामने भी एक उल्टी की और अशर्फियों का ढेर लगा दिया। तथा आगे बढ़ने लगा। वधू ने कहा-इस धन से मैं क्या करूँ, इससे तो मेरी वासनाएँ और बढ़ेंगी। मेरे सतित्व की रक्षा तो धन से न होकर पतिदेव से ही होगी। फिर आपने मुझे आशीर्वाद दिया, कि सौभाग्यवती रहो। क्या मेरे पतिदेव आपके भक्षण किये जाने पर, मैं सौभाग्यवती रह सकती हूँ। यह तो आप स्वयं ही अपनी प्रतिज्ञा भंग कर रहे हैं। नागराज ने कहा-अच्छा यदि तुझे अपनी सतित्व रक्षा का ही भय है, तो ले यह बूटी। इसे जो तेरे सतित्व को नष्ट करने आयेगा, उस के सिर पर फेंक देना, वह जलकर भस्म हो जायगा। इतना कहकर नागराज आगे बढ़ने लगा। बधू ने कहा-ठहरिये महाराज ? इतना कहते ही उसने सोचा—इस अजगर से बढ़कर मेरे सतित्व का हरण करने वाला कौन हो सकता है, उसने वह बूटी उसी अजगर के ऊपर फेंक दी। अजगर जलकर देखते ही देखते भस्म का ढेर हो गया। आत्मदर्शी की जान बची। घर में अशर्फियों का ढेर लग गया। बूटी रूँगे में ही मिल गई। गौ माता ने ठीक ही तो कहा था, अन्त भले का भला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम समाचार

देहली में दि० ३-११-५७ रविवार का सत्संग राजेन्द्र नगर सलवान स्कूल में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। पूज्य परमाध्यक्ष श्री स्वामी गोविन्द-प्रकाश जी "वेदान्ताचार्य", श्री स्वामी वासुदेवानन्द जी "व्याकरणाचार्य", श्रीमती राजकरणी जी खन्ना तथा संगीतरत्न हीरालाल जी, आदि के आत्म-ज्ञान प्राप्ति के साधनों पर प्रवचन तथा भजन, कीर्त्तन हुए।

श्री परमाध्यक्ष जी ने देहली से दि० ४-११-५७ को शिवपुरी के लिये प्रस्थान किया। शिवपुरी में रामप्रेमी दीवान दौलतराम जी के बंगले पर और जल मन्दिर में एक सप्ताह तक स्वामी राम के उपदेश और स्वामी हरि ॐ जी महाराज के सन्देशों का विस्तार पूर्वक आकर्षण जनक भाषण देकर वहाँ की जनता को मानवता की ओर प्रेरित किया।

श्री श्रद्धेय बाई जी श्रीमती दीवानरानी जी द्वारा संचालित मातृमण्डल के सत्संग में भी दो बार भाषण हुए।

शिवपुरी के प्रसिद्ध स्थानों का दर्शन किया, जिनमें से वीरतत्त्व प्रकाशक मण्डल, भूराखोह-छत्री विशेष महत्त्वशाली हैं।

श्रीमान दीवान दौलतराम जी द्वारा संचालित कत्थामिल का निरीक्षण किया, जहाँ कि आधुनिक यन्त्रों द्वारा कई प्रकार से कत्थे का अनुसन्धान किया जा रहा है। वहाँ के मैनेजर प्रभृति सर्व कर्मचारियों ने पूज्य स्वामी जी का भव्य स्वागत किया। श्रीमती माता दीवानरानी द्वारा शिवपुरी की जनता को आध्यात्मिक प्रवचनों का श्रवण तथा महात्माओं के दर्शन का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। शिवपुरी से ग्वालियर पधारे और महाराजा ग्वालियर के अतिथि गृह में तीन दिन निवास किया।

दि० ११-११-५७ को सायं ६॥ से ८॥ बजे तक राजमहल में वेदान्त विषय पर श्री स्वामी-वासुदेवानन्द जी तथा परमाध्यक्ष जी का प्रभावशाली प्रवचन हुआ। दि० १२-११-५७ को बिरलानगर के प्रधान मैनेजर सेठ दुर्गादास मण्डेलिया के यहाँ और विक्टोरिया कालेज एवं हिज हाईनेस महारानी सिन्धिया द्वारा संस्थापित कन्या महाविद्यालय में भारतीय संस्कृति पर परमाध्यक्ष जी ने प्रकाश डाला। सायंकाल सनातन धर्म-मण्डल के संचालकों ने श्री सनातन धर्म की संस्था तथा मन्दिर और विद्यालय के दर्शन कराये। श्री परमाध्यक्ष जी के प्रवचन की व्यवस्था "चेम्बर-मध्यभारत व्यापारी मण्डल" में की गई। जहाँ स्वामी जी का सत्य-सनातनधर्म के स्वरूप का समन्वयात्मक निरूपण दो घंटे तक प्रभावशाली तथा हृदयग्राही शब्दों में हुआ।

हिज हाईनेस महारानी सिन्धिया ने स्वयं भी कई बार अतिथि भवन में पधार कर वर्त्तमान देश की परिस्थिति को सुलझाने के लिये "आध्यात्मिक-वाद" किस प्रकार सुख शान्ति दे सकता है। इस विषय पर विचार-विमर्ष किया।

दि० १३-११-५७ को ग्वालियर से प्रस्थान कर दि० १४-११-५७ को कलकत्ता पहुँचे। वहाँ दि० १५-११-५७ को डा० सूद के यहाँ प्रवचन हुआ तथा सायंकाल श्री शान्ति आर० एम० बख्शी की सुपुत्री कुमारी उर्मिला के शुभ विवाह पर वर-बधू को शुभाशीर्वाद दिया।

दि० २४ नवम्बर ५७ को कलकत्ते से "पञ्चदेव महायज्ञ" में भाग लेने बम्बई को प्रस्थान किया। वहाँ यज्ञ की पूर्णाहुति होते ही दिसम्बर ५७ के प्रथम सप्ताह तक आश्रम में पहुँच जायेंगे।

निवेदक :—स्वा० वासुदेवानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्र निवेदन

—"रामसन्देश" का छठा वर्ष दिसम्बर १९५७ में समाप्त होने जा रहा है, अतः जिन ग्राहक सज्जनों ने चन्दा नहीं भेजा है, वे शीघ्र ही भेजने की कृपा करें।

—ग्राहक प्रेमियों से निवेदन है, कि वे अपने साथियों को भी "रामसन्देश" की ओर प्रेरित करें, ताकि राम का सन्देश—उन्हें भी मिल सके।

—जो सज्जन "रामसन्देश" के ग्राहक बनना चाहते हों, वे ४) चार रुपया मात्र चन्दा भेज कर ग्राहक बन सकते हैं। उन्हें साल भर तक "रामसन्देश" मिलता रहेगा।

—जो सज्जन "रामसन्देश" के उपयुक्त गद्य या पद्यमय लेख देना चाहते हों, वे महीने की १५ ता० से पूर्व ही लेख भेज दें; लेख छपने पर लेखक की सेवा में एक प्रति निःशुल्क भेज दी जायगी।

नोट—कृपया लेख शुद्ध, स्पष्ट तथा एक ही ओर लिखा हो।

—सम्पादक

Printed and Published by Swami Govind Prakash, at the S. S. Press, Rajpur Dehra Dun. for the Rama Tirtha Mission, Rajpur Dehra Dun. (U.P.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar